में ही था, जिसे अद्भुत समर्थन, जैसा हम देख चुके है, पुरातत्व विभाग द्वारा करायी गई इस क्षेत्र की खुदाई से भी मिला है। भारतीय विद्या के अध्ययन के प्रारम्भिक युग में गिरिव्रज को गिर्यक् मान लिया गया था। परन्तु आज इस गलती को दुहराने की आवश्यकता नही है। गिर्यक् पर्वत राजगिर से छह मील पूर्व दिशा में स्थित है और वह गिरिव्रज नही है।[1] जैसा कनिंघम ने कहा है, गिर्यक् पर्वत राजगृह की बाहरी दीवारों के बाहर ही था।[2]

जैसा हम ऊपर कह चुके है, प्राचीन राजगृह या गिरिव्रज पाँच पहाडियों से घिरा था, जिनके नाम हम सुत्त-निपात की अट्ठकथा के आधार पर इस प्रकार दे चुके है, पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत। परमत्थजोतिका[3] में इन नामों का क्रम इस प्रकार दिया गया है, पण्डव पब्बत, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल। विमानवत्थु-अट्ठकथा में इस क्रम में और उलट-फेर कर इस प्रकार नाम दिये गये है, इसिगिलि, वेपुल्ल, वेभार, पण्डव और गिज्झकूट। मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में यह क्रम इस प्रकार है, इसिगिलि, वेभार, पण्डव, वेपुल्ल और गिज्झकूट। इसी सुत्तन्त मे कहा गया है कि प्राचीन काल मे इन पर्वतों के नाम विभिन्न थे। महाभारत के सभा-पर्व मे गिरिव्रज को परिवृत करने वाले पाँच पर्वतो का उल्लेख है, परन्तु नामो मे विभिन्नता है। महाभारत के सभा-पर्व के अनुसार ये पाँच पर्वत थे, (१) वैहार (२) बराह (३) वृषभ, (४) ऋषिगिरि, और (५) चैत्यक। चूँकि इन पाँच पर्वतों का पालि विवरण अधिक स्पष्ट और साक्षात् अवेक्षण पर आधारित है, इसलिये हम उसे ही अधिक महत्व देंगे। अब हम पालि परम्परा के अनुसार क्रमश पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत का भौगोलिक परिचय देगे।

अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद शाक्यकुमार जब राजगृह में आये तो सुत्त-निपात के अनुसार राजगृह मे भिक्षाचर्या के बाद वे नगर से बाहर पाण्डव

---

१. मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १११, पद-संकेत १।

२. एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३३-५३४।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८२।

पर्वत पर निवास करने के लिये गये। "स पिंडचारं चरित्वान निक्खम्म नगरा मुनि। पण्डवं अभिहारेसि एत्थ वासो भविस्सति।" यहीं बिम्बिसार उनसे मिलने गया।[१] मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में भी पाण्डव पर्वत का उल्लेख है। पाण्डव पर्वत को आधुनिक रत्नगिरि या रत्नकूट पर्वत से मिलाया गया है।[२] रत्नगिरि या रत्नकूट पर्वत विपुल गिरि के ठीक दक्षिण मे स्थित है। इसके पूर्व में पहले छट्ठ गिरि या छठा गिरि है और बाद में शैलगिरि। रत्नगिरि के पश्चिम में वैभार गिरि है। वैभार गिरि और पाण्डव (रत्नकूट पर्वत) के बीच हम एक बार बिजली गिरते देखते हैं जबकि स्थविर सिरिवड्ढ वहाँ पास में किसी गुफा में बैठे ध्यान कर रहे थे।[३]

गिज्झकूट पब्बत उपर्युक्त पाँच पहाड़ियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य बुद्धघोष ने बताया है कि इस पहाडी का नाम गिज्झकूट (गृध्रकूट) इसलिये पड़ा कि इसकी चोटी का आकार गृध्र पक्षी की चोंच के समान था, अथवा इसकी चोटी पर गृध्र निवास करते थे।[४] दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में गृध्रकूट पर्वत का उल्लेख है और उसे 'रमणीय' बताया गया है। "रमणीयो गिज्झकूटो पब्बतो।" मज्झिम-निकाय के चूल-दुक्खक्खन्ध-सुत्त तथा इसिगिलि-सुत्तन्त में गिज्झकूट पब्बत का उल्लेख है। इसी निकाय के छन्नोवाद-सुत्तन्त में हम धर्म-सेनापति सारिपुत्र, महाचुन्द और महाछन्न भिक्षुओं को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते है। विनय-पिटक[५] में कई बार इस पर्वत का उल्लेख आया है और भगवान् वहाँ विहार करते दिखाये गये है। मगध के ८०,००० गाँवों के

---

१. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ५० (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८६-८७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. कनिंघम: एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।

३. थेरगाथा, पृष्ठ १९ (भिक्षु धर्मरत्न-कृत हिन्दी अनुवाद)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३; समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८५।

५. पृष्ठ २०२, ३९६ (हिन्दी अनुवाद)।

मुखिया यहीं भगवान् के दर्शनार्थ गये थे और यहीं सोण कोटिविंश की प्रव्रज्या हुई थी। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्यो ने जिस पाषाण चैत्य पर जाकर भगवान् के दर्शन किये थे, वह सम्भवतः गिज्झकूट पब्बत पर ही स्थित था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त, उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त तथा आटानाटिय-सुत्त का उपदेश भगवान् ने गृध्रकूट पर निवास करते समय ही दिया था और इसी प्रकार सुत्त-निपात के माघ-सुत्त का भी। संयुत्त-निकाय के पासाण-सुत्त में हम भगवान को काली अंधियारी रात मे, जब रिमझिम पानी पड़ रहा था, गृध्रकूट पर्वत पर ध्यान करते देखते हैं। इसी निकाय के अभय-सुत्त से हमें पता लगता है कि अभय राजकुमार यहीं भगवान् से मिलने आया था। संयुत्त-निकाय के चंकमं-सुत्त में हम भगवान् को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं और इसी सुत्त में यह सूचना मिलती है कि धर्मसेनापति सारिपुत्र, महाकात्यायन आदि बुद्ध-शिष्य उस समय गृध्रकूट के आसपास ही विहार कर रहे थे। महाकात्यायन के गृध्रकूट पर्वत पर विहार करने की सूचना हमें संयुत्त निकाय के अट्ठिपेसि सुत्त में भी मिलती है। वक्कलि को उपदेश देकर भगवान् को गृध्रकूट की ओर जाते हम संयुत्त-निकाय के वक्कलि-सुत्त में देखते हैं। इसी निकाय के देवदत्त-सुत्त यजमान-सुत्त, पुग्गल-सुत्त, सक्क-सुत्त, वेपुल्ल-पब्बत-सुत्त और पक्कन्त-सुत्त का उपदेश भगवान् ने गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते समय ही दिया था। अंगुत्तर-निकाय[1] में भी हम कई अवसरों पर भगवान् को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। गृध्रकूट पर्वत पर अन्तिम निवास करने के बाद ही हम भगवान् को परिनिर्वाण प्राप्त करने के हेतु वहाँ से कुसिनारा की ओर प्रस्थान करते देखते है।

स्थविरवाद बौद्ध धर्म में ही नही, महायान बौद्ध धर्म में भी गृध्रकूट पर्वत की महिमा भगवान् बुद्ध के निवास-स्थान के रूप में प्रभूत रूप से सुरक्षित है। चीनी परम्परा के अनुसार, जिसका उल्लेख फा-ह्यान और यूआन् चुआङ्ग ने किया है, सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र (फ-हुअ-चिग्) और सूरागमसमाधिसूत्र (शोउ-लेंग्-येन्) का उपदेश भगवान् बुद्ध ने गृध्रकूट पर्वत पर ही दिया

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २३६, २३७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १; जिल्द चौथी, पृष्ठ १७-२१।

था।[1] महायानी परम्परा के अनुसार सुखावती-व्यूह तथा कई अन्य महत्वपूर्ण सुत्तों का उपदेश भी गृध्रकूट पर्वत पर ही दिया गया था।

चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने राजगृह से १४ या १५ 'ली' (अर्थात् करीब ढाई मील) उत्तर-पूर्व में चलकर गृध्रकूट पर्वत के दर्शन किये थे।[2] इसकी चोटी पर आकर गृध्रों के बैठने की बात यूआन् चुआङ ने भी कही है,[3] जो बुद्धघोष द्वारा निर्दिष्ट परम्परा का, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, समर्थन करती है। फा-ह्यान ने एक विभिन्न अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस पर्वत की एक गुफा में, जो बुद्ध की गुफा के समीप ही थी, एक बार, आनन्द ध्यान कर रहे थे जब कि मार ने गृध्र का रूप धारण कर उन्हें प्रलोभित करने का प्रयत्न किया। भगवान् बुद्ध ने इस बात को जानकर अपने हाथ को बढ़ाकर गुफा में एक छेद के द्वारा उससे आनन्द की पीठ ठोंकी। चूंकि उस गृध्र और गुफा के अन्दर उस छेद के चिन्ह अभी विद्यमान है, इसलिये यह पर्वत गृध्रकूट कहलाया।[4] युआन् चुआङ ने इस पहाड़ के नीचे से ऊपर चोटी तक बिम्बिसार द्वारा निर्मित एक सीढ़ीनुमा सड़क का उल्लेख किया है, जिसकी लम्बाई ५ या ६ 'ली' (करीब एक मील) बताई है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आधुनिक मणियार मठ के करीब ६ फर्लांग दक्षिण से जो सड़क गृध्रकूट पर्वत तक गई है, वह बिम्बिसार के द्वारा ही बनवाई गई थी। उसे हम आज भी 'बिम्बिसार-मार्ग' कह सकते है। इस मार्ग के बीच में अवस्थित दो स्तूप यूआन् चुआङ ने देखे थे, जिनमें से एक उस स्थान को सूचित करता था जहाँ बिम्बिसार ने यान छोड़कर पैदल चलना आरम्भ किया था और दूसरा उस स्थान को जहाँ उसने और लोगों को विसर्जित कर अकेले गृध्रकूट की गुफा की ओर चढ़ना आरम्भ किया था। इन

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५१।

३. वहीं, पृष्ठ १५१।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५०।

स्तूपों के चिह्न आज भी इस रास्ते में मिलते है। अजातशत्रु ने अपने पिता राजा श्रेणिक बिम्बिसार को जिस बन्दीगृह मे बन्द किया था, वह आज करीब २०० फुट लम्बे और प्रायः उतने ही चौडे वर्गाकार पत्थरों के क्षेत्र के रूप में विद्यमान है, जिसकी स्थिति मणियार मठ से करीब ६ फर्लांग दक्षिण में है। यही से बिम्बिसार पूर्व की ओर गृध्रकूट पर्वत को देखा करता था जब उसे कभी-कभी काषाय वस्त्रधारी बुद्ध के दर्शन पर्वत मे नीचे आते या उस पर चढते हो जाया करते थे। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि आधुनिक शैलगिरि ही गृध्रकूट पर्वत (गिज्झकूट पब्बत) है। राजगृह से गृध्रकूट की करीब २॥ मील की दूरी, जो यूआन् चुआङ ने लिखी है वह इससे मिल जाती है। कनिंघम को यही पहचान मान्य थी।[1] इसे थॉमस वाटर्स ने भी स्वीकार किया है।[2] डा० विमलाचरण लाहा ने कनिंघम का अनुसरण कर ठीक ही शैलगिरि को गृध्रकूट पर्वत माना है, परन्तु उनका साथ ही यह कहना कि यही गिर्यक् पर्वत भी कहलाता है,[3] भ्रमोत्पादक है। गिर्यक् या गिरियक् राजगृह से ६ मील पूर्व में है और गृध्रकूट पर्वत-शिखर से भिन्न है जो राजगृह से केवल ढाई मील दूर है। जैसा हम आगे देखेंगे, गिर्यक् पर्वत को वेदिक या वेदियक पर्वत से मिलाना अधिक ठीक होगा, जिसमे इन्दसाल गुहा थी। आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द इक्यावनवी (कलकत्ता १९३१) के पृष्ठ ११६ मे गृध्रकूट पर्वत को छट्ट गिरि या छटा गिरि से मिलाया गया है। उसका आधार यहाँ यही जान पड़ता है कि यूआन चुआङ ने जिस ५ या ६ 'ली' (करीब १ मील) लम्बी बिम्बिसार द्वारा निर्मित सड़क का उल्लेख किया है, उसे यहाँ नाक्वे बाँध से प्रारंभ हुआ मान लिया गया है और फिर दूरी का विचार कर छट्ट या छटा गिरि को ही गृध्रकूट मान लिया गया है, क्योंकि यह नाक्वे बाँध से प्रायः १ मील की ही दूरी पर पूर्व दिशा मे स्थित है। वस्तुतः ५ या ६ 'ली' की दूरी जो यूआन् चुआङ ने बिम्बिसार द्वारा निर्मित मार्ग की दी है, वह पहाड के नीचे से ऊपर तक की है। अतः 'आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया' मे जो नाक्वे

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३४-५३५।

२. औन् यूआन् चुआङ स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ४१।

बाँध से उसे प्रारंभ कर माना गया है, वह ठीक नही जान पडता। इसका एक कारण यही है कि यदि इसे ठीक मान कर छट्ट या छटा गिरि को ही गृध्रकूट मान लिया जाय तो इसकी दूरी राजगृह मे यूआन् चुआङ के वर्णनानुसार ही, जैसा हम पहले देख चुके है, १४ या १५ 'ली' अर्थात् करीब २॥ मील होनी चाहिये। परन्तु राजगृह से छटा गिरि की दूरी इससे बहुत कम है, अर्थात् केवल करीब १॥ मील। इसलिये छट्ट या छटा गिरि से और पूर्व मे बढकर हमे शैलगिरि को ही गृध्रकूट पर्वत मानना चाहिये, जिसकी दूरी राजगृह मे ठीक करीब २॥ मील अर्थात् यूआन् चुआङ के विवरणानुसार ठीक ही है और सडक की लम्बाई को भी, जैसा हम पहले भी कह चुके है, इस पर्वत के नीचे से ऊपर तक की लम्बाई मान सकते है। इस प्रकार शैलगिरि को गृध्रकूट पर्वत मानना चाहिये। यूआन् चुआङ ने गृध्रकूट पर्वत के पश्चिमी भाग पर स्थित ईटो के बने एक भवन का उल्लेख किया है, जिसमे बुद्ध की एक मानवाकार मूर्ति प्रतिष्ठित थी।[1] इसे बुद्ध के काल के बाद का बना हुआ ही माना जा सकता है। इस भवन के पूर्व मे भगवान् बुद्ध की चंक्रमण-भूमि थी और उसकी बगल मे करीब १४ फुट ऊँची वह चट्टान थी, जहाँ से देवदत्त ने एक शिला-खण्ड भगवान् बुद्ध पर गिराया था।[2] विनय-पिटक मे हम देखते है कि एक बार जब भगवान् बुद्ध गृध्रकूट पर्वत के नीचे टहल रहे थे तो उन्हे जान से मारने के लिये देवदत्त ने गृध्रकूट पर्वत पर चढकर एक बडी शिला फेकी थी, जो दो पर्वत-कूटो से टकरा कर रुक गई थी, परन्तु एक पत्थर का टुकडा भगवान् के पैर मे लग गया था और उससे रुधिर बहने लगा था।[3] चीनी यात्री उसी चट्टान की स्थिति का परिचय दे रहा है, जहाँ से खडे होकर देवदत्त ने अपना कुकृत्य किया था। यूआन् चुआङ ने एक विशाल गुफा का परिचय दिया है, जो गृध्रकूट पर्वत के नीचे दक्षिण की ओर स्थित थी, जहाँ भगवान् समाधिस्थ होकर बैठते थे। आनन्द और सारिपुत्र के ध्यान करने की गुफाओ का भी उल्लेख चीनी यात्री ने किया है। हम पहले पालि विवरणो के आधार पर देख ही चुके है कि भगवान्

---

१. उपर्युक्त पद-सकेत २ के समान।

२. उपर्युक्त के समान।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८५।

बुद्ध अपने प्रधान शिष्यों को साथ लेकर कभी-कभी गृध्रकूट पर्वत पर निवास किया करते थे।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सूकरखता नामक एक गुफा गिज्झकूट पब्बत मे अवस्थित थी। आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि सूकरखता एक गुफा थी, जिसे काश्यप बुद्ध के समय में बनवाया गया था। कालान्तर में यह धरती के अन्दर दब गई। एक शूकर ने इसके समीप धरती खोदी और वर्षा होने पर गुफा साफ दिखाई देने लगी। एक वनवासी (वनचरक) आदमी ने इसे साफ किया और दरवाजे आदि लगाकर उसके चारों ओर एक बाड़ा बाँध दिया। बाद में उसने इसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया। चूँकि एक शूकर के द्वारा धरती खोदने के कारण इस गुफा का पता लगा था, इसलिये इसका नाम सूकरखता पड़ा।[१] मज्झिम-निकाय के दीघनख-सुत्तन्त का उपदेश भगवान् ने गिज्झकूट की सूकरखता गुफा में विहार करते समय ही दिया था। संयुत्त-निकाय के सूकरखता-सुत्त में हम उन्हें इसी गुफा में धर्मसेनापति सारिपुत्र के साथ विहरते और धार्मिक संलाप करते देखते हैं।[२]

वेभार पब्बत (जिसे महाभारत[३] मे वैहार और जैन अभिलेखों में बैभार और व्यवहार कह कर पुकारा गया है तथा विविधतीर्थकल्प[४] में जिसका नाम वैभार ही है) आज भी बैभार गिरि के रूप में अपने नाम और रूप को सुरक्षित रक्खे हुए है। मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में वेभार पब्बत का उल्लेख है। विनय-पिटक के वर्णनानुसार वेभार पब्बत के पास ही सत्तपण्णि गुहा (सप्तपर्णी गुफा) थी।[५] यही बात महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी कही गई है।[६] महावंस में सत्तपण्णि गुहा को स्पष्टतः वेभार पब्बत के पार्श्व में (वेभारपस्से) स्थित गुफा

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४९।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७३०।

३. १।११३।२७; २।२१।३४; ३।८४।१०४।

४. पृष्ठ २२।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।

६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनवाद), पष्ठ १३४।

बताया गया है और कहा गया है कि यहीं प्रथम धर्मसंगीति की कार्यवाही स्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई थी।[१] पालि विवरणों में यह स्पष्टतः नहीं कहा गया है कि सप्तपर्णी गुफा वेभार पर्वत के किस ओर थी। परन्तु महावस्तु[२] में इसे स्पष्टतः इस पर्वत के उत्तरी भाग में बताया गया है और, जैसा हम अभी देखेंगे, चीनी यात्रियों के वर्णनों से भी यही ज्ञात होता है। कनिघम ने सत्तपण्णि गुहा को वर्तमान सोन भंडार गुफा से मिलाया था,[३] जो ठीक नहीं माना जा सकता। यह गुफा वैभार गिरि की दक्षिणी तलहटी में गरम सोतों के कुण्ड से करीब एक मील दक्षिण में और जरासन्ध की बैठक से भी करीब इतनी ही दूर दक्षिण में, स्थित है। यूआन् चुआङ ने एक विशाल गुफा को वेणुवन (जिसकी स्थिति के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे) के करीब ५ या ६ 'ली' (एक मील या उस से कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम में, दक्षिणागिरि के उत्तरी भाग में, अवस्थित देखा था, जिसे उसने आर्य महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई प्रथम संगीति का स्थान माना था।[४] तिब्बती परम्परा में प्रथम संगीति की बैठक के स्थान को न्यग्रोध गुहा भी बताया गया है। न्यग्रोध गुहा को कनिघम ने सत्तपण्णि गुहा का ही तिब्बती दुल्व में प्रयुक्त नाम बताया है। फा-ह्यान ने पिप्पल या पीपल-गुहा से पाँच या छह 'ली' पश्चिम में पहाड़ के उत्तरी भाग की छाया में प्रथम संगीति के स्थान 'सतपर्ण' गुहा को देखा था।[५] पिप्पळ या पीपल गुहा की स्थिति के सम्बन्ध में, जिसके समान पिप्पलि (पिप्फलि) गुहा का भी वर्णन हमें पालि परम्परा में मिलता है, हम अलग से आगे विवरण देंगे। सत्तपण्णि गुहा की स्थिति के सम्बन्ध में यहाँ हम कुछ और मतों का उल्लेख कर दें। डा० स्टीन ने सत्तपण्णि गुहा को वैभारगिरि के उत्तरी भाग में मानते हुए उसे आधुनिक 'सथरणी' नामक गुफा से

---

१. महावंस ३।१८-१९।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ ७०।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९-१६०।

५. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२।

मिलाया था, जो जैन आदिनाथ के मन्दिर के पास स्थित है। महावस्तु और चीनी यात्रियो के विवरणानुसार यह ठीक है और 'सयरणी' शब्द मे 'सत्तपण्णि' की पूरी ध्वनि भी विद्यमान है। सर जोन्ह मार्शल ने सत्तपण्णि गुहा को एक 'मण्डप' मानते हुए (इस परिच्छेद के आरभ मे हम 'महावश' के साक्ष्य पर देख ही चुके है कि राजा अजातशत्रु ने सत्तपण्णि गुहा मे एक मण्डप बनवाया था) उसकी स्थिति को वैभार गिरि के उत्तर की ओर 'जरासन्ध की बैठक' से करीब डेढ मील पश्चिम मे माना है।[1] कुछ भी हो, हमे सत्तपण्णि गुहा की स्थिति को वेभार गिरि के उत्तरी ढलान पर ही कही मानना पडेगा।

इसिगिलि (महाभारत मे जिसे ऋषिगिरि कह कर पुकारा गया है और जिसका ठीक सस्कृत प्रतिरूप भी यही है) पब्बत का उल्लेख मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त मे है ओर वहाँ इसके नामकरण का कारण भगवान् ने स्वय इस प्रकार बताया है, "पूर्व काल मे इस इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत पर ५०० प्रत्येक-बुद्ध रहते थे। वे इस पर्वत मे प्रवेश करते दिखाई देते थे, परन्तु प्रविष्ट हो जाने पर फिर नही दिखाई पडते थे। यह देख कर मनुष्य कहते, "यह पर्वत इन ऋषियो (इसि) को निगलता है (गिलि)।" इस प्रकार इस पर्वत का नाम "इसिगिलि" (इसियो-ऋषियो को निगलने वाला) पडा।" आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका[2] मे 'इसिगिलि' नाम की व्याख्या इस बुद्ध-वचन के आधार पर ही की है। इसिगिलि पब्बत के बगल मे स्थित एक चट्टान कालसिला (कालशिला) कहलाती थी। काले रग की होने के कारण इस चट्टान का यह नाम पडा था।[3] महापरि-निब्बाण-सुत्त[4] तथा विनय-पिटक[5] मे इसिगिलि के पार्श्व मे स्थित काल-

---

**१. डा० स्टीन और सर जोन्ह मार्शल के मतो के विवरणो के लिए देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द इक्यावनवीं, (कलकत्ता, १९३१), पृष्ठ १२७-१२९।**

**२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३७।**

**३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३।**

**४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।**

**५. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।**

शिला का उल्लेख है। मज्झिम-निकाय के चूलदुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त में हमें यह सूचना मिलती है कि इसिगिलि पब्बत की कालसिला पर निगण्ठ (निर्ग्रन्थ) साधु कड़ी तपस्या करते थे। इसिगिलि पब्बत की काल सिला पर ही भगवान् बुद्ध के परम तपस्वी और स्वस्थ शिष्य बक्कुल ने भिक्षु-संघ के बीच बैठे-बैठे परिनिर्वाण प्राप्त किया था, ऐसा हमें मज्झिम-निकाय के बक्कुल-सुत्तन्त से विदित होता है। बीमार भिक्षु वक्कलि ने इसिगिलि की कालसिला पर जाकर ही प्राण छोड़े थे या आत्महत्या करली थी, ऐसा संयुत्त-निकाय के वक्कलि-सुत्त का साक्ष्य है। बीमार भिक्षु गोधिक ने भी इसिगिलि की कालसिला पर आत्महत्या की, ऐसा संयुत्त-निकाय के गोधिक सुत्त में कहा गया है। फा-ह्यान ने एक लम्बी वर्गाकार वाली चट्टान देखी थी जिस पर एक बुद्धकालीन भिक्षु की आत्महत्या का वर्णन किया है[1]। निश्चयतः यह पालि की काल-सिला ही थी। इसिगिलि-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।२।६) का उपदेश भगवान् ने इसिगिलि पर्वत पर विहार करते हुए ही दिया था। कनिंघम ने महाभारत के ऋषिगिरि की स्थिति को पुराने राजगृह की पूर्वी ओर से रत्नगिरि तक जाने वाले मार्ग के बीच में कहीं माना है।[2] उसे ही हम पालि परम्परा के इसिगिलि की स्थिति भी मान सकते है।

वेपुल्ल पब्बत को इतिवुत्तक के वेपुल्ल-पब्बत सुत्त मे गिज्झकूट के उत्तर में अवस्थित बताया गया है। "सो खो पनायं अक्खातो वेपुल्लो पब्बतो महा। उत्तरो गिज्झकूटस्स मगधानं गिरिब्बजे।"[3] संयुक्त-निकाय के वेपुल्ल-पब्बत सुत्त में यह कहा गया है कि इस पर्वत का प्राचीन काल में नाम पाचीनवंस (प्राचीन वंश) पर्वत था। "भिक्षुओ! बहुत ही पूर्व काल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम पाचीनवंस पड़ा था।"[4] चेदि जनपद के विवरण में हम आगे देखेंगे कि वहाँ बुद्ध के जीवन-काल में पाचीनवंस दाय नामक वन था। उससे इसे भिन्न

---

**१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव् फा-ह्यान, पृष्ठ ५२-५३।**

**२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।**

**३. इतिवुत्तक, पृष्ठ १६ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।**

**४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २७४।**

समझना चाहिये। संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त में ही हमें यह सूचना मिलती है कि वेपुल्ल पब्बत के प्राचीन काल में वंकक पर्वत और सुपस्स पर्वत भी अन्य नाम थे।[1] "राजगृह के पहाड़ों में विपुल सबसे श्रेष्ठ है" ऐसा संयुत्त-निकाय का उद्धरण मिलिन्दपञ्हो में दिया गया है।[2] यूआन् चुआङ ने विपुल (पि-पु-लो) पर्वत को प्राचीन राजगृह (गिरिव्रज) के उत्तरी दरवाजे के पश्चिम में देखा था।[3] संभवतः यही हमारा पालि परम्परा का वेपुल्ल पब्बत है। विपुल पर्वत के ऊपर एक बौद्ध चैत्य का उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है जो उस स्थान को अंकित करता था जहाँ एक बार भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था। यूआन् चुआङ के समय में कुछ दिगम्बर जैन साधु यहाँ निवास करते हुए तपस्या करते थे।[4] यूआन् चुआङ के द्वारा वर्णित विपुल पर्वत के ऊपर बौद्ध चैत्य की पहचान पर कनिंघम ने महाभारत के चैत्यक पर्वत से इसे मिलाने का प्रस्ताव किया है।[5] यदि यह ठीक हो तो आज का विपुल गिरि ही महाभारत का चैत्यक, पालि का वेपुल्ल और यूआन् चुआङ का 'विपुल' पर्वत है।

उपर्युक्त पाँच पहाडों के अतिरिक्त पालि साहित्य मे वेदियक पब्बत का उल्लेख है, जो राजगृह से पूर्व अम्बसण्ड नामक ग्राम के उत्तर मे स्थित था। वेदी के आकार की नीली चट्टानों से परिवृत होने के कारण इस पर्वत का यह नाम पड़ा था।[6] इस पर्वत मे एक प्रसिद्ध गुफा थी जिसका नाम 'इन्दसाल गुहा' था। भगवान् यहाँ एक बार गये थे और दीघ-निकाय के सक्कपञ्ह-सुत्त का उपदेश दिया था। भगवान्

---

१. वहीं, पृष्ठ २७५।

२. मिलिन्दप्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २९५; मिलाइये संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ६६।

३. वाटर्स: औन् युआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५३।

४. वहीं, पृष्ठ १५४।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१-५३२।

६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

बुद्ध के शिष्य स्थविर चूलक को भी हम इस गुफा मे ध्यान करते देखते है।[१] आचार्य बुद्धघोष ने हमे बताया है कि यह गुफा दो लटकती हुई चट्टानों के बीच मे थी और इस गुफा के प्रवेश-द्वार पर एक इन्द्रशाल का पेड खडा था, जिसके कारण इस गुफा का यह नाम पडा था।[२] यूआन् चुआङ ने राजगृह के समीप इन्द्रशाल गुहा को देखा था।[३] फा-ह्यान ने भी एक अनाथ के समान 'अलग स्थित' पर्वत का उल्लेख किया है, जिसे उसने नालन्दा और राजगृह दोनो से एक योजन की दूरी पर बताया है।[४] इसी विवरण के आधार पर कनिघम ने फा-ह्यान के इस 'अलग स्थित' पर्वत को गिर्यक् से मिलाया है, जिसकी दूरी बडगॉव (नालन्दा) और राजगिरि (राज-गृह) दोनो से मिल जाती है, अर्थात् प्राय. सात या आठ मील (करीब एक योजन) ही है।[५] कनिघम का कहना है कि जिस पर्वत के अन्दर इन्द्रशाल गुहा को यूआन् चुआङ ने देखा था, वह फा-ह्यान के द्वारा वर्णित 'अलग स्थित' पर्वत ही था, जो दोनो आज गिर्यक् के रूप मे विद्यमान है।[६] वाटर्स ने कनिघम की इस दुहरी पहचान के सम्बन्ध मे सन्देह प्रकट किया है, परन्तु यूआन् चुआङ की इन्द्रशाल गुहा को विदेह मे स्थित होने का सुझाव देकर[७] उन्होने स्वय बडी अहेतुक बात कही है। हम साधारणत कनिघम की पहचान को ठीक मान सकते है। स्वय गिर्यक् (गिरि एक) पर्वत के नाम मे यह ध्वनि विद्यमान है कि वह एक अलग स्थित पर्वत है, जैसा कि वह वास्तव मे है भी। अत कनिघम का फा-ह्यान के 'अलग स्थित' पर्वत

---

१. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ७८ (भिक्षु धर्मरत्न का हिन्दी अनुवाद)।

२ सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्म् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७३।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४८-४९; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७-५४१।

६. उपर्युक्त के समान।

७. औन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७३-१७४

को गिर्यक् मानना हमें ठीक जान पड़ता है। चूँकि पालि विवरण के अनुसार इन्दसाल गुहा वेदियक पर्वत में थी, इसलिये वेदियक पर्वत ही आधुनिक गिर्यक् है, इतना केवल हम जोड़ देना और चाहेंगे। इन्द्रशाल गुहा की ठीक स्थिति का पता लगाते हुए कनिंघम ने उसे वर्तमान गिद्धद्वार बताया है,[1] जो ठीक जान पड़ता है। यह गुफा गिर्यक् पर्वत के दक्षिणी भाग में स्थित है।

सप्पसोण्डिक पब्भार (सर्पशौण्डिक प्राग्भार) एक अन्य झुके हुए आकार का पर्वत था जो राजगृह के समीप स्थित था। सर्प के फण के आकार का यह पर्वत था, इसलिये इसका यह नाम पड़ा था। आचार्य बुद्धघोष ने सारत्थप्पकासिनी[2] में इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा है, "सप्पसोण्डिकपब्भारे ति सप्पफणसदिसताय एवं लद्धनामे पब्भारे।" यह पर्वत सीतवन में स्थित था।

सीतवन एक श्मशान-वन था। "सीतवने ति एवं नामके सुसानवने।"[3] हम पहले देख चुके हैं कि एक श्मशान के समीप ही बिम्बिसार (या फा-ह्यान के द्वार। निर्दिष्ट परम्परा के अनुसार अजातशत्रु) ने नवीन राजगृह को बसाया था। वह श्मशान-वन (सुसान-वन) 'सीतवन' ही था। कई अवसरों पर हम भगवान् को सीतवन में विहार करते देखते हैं। जिस समय आयुष्मान् सोण साधना में अत्यधिक परिश्रम करते हुए सीतवन में विहार कर रहे थे, तो भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया।[4] अनाथपिंडिक प्रथम बार भगवान् के दर्शनार्थ राजगृह के सीतवन में ही गया था। वह काफी प्रातः वहाँ पहुँच गया था और उस समय भगवान् उस श्मशान-वन में टहल रहे थे।[5] कई साधक भिक्षु-भिक्षुणियों को हम समय-समय पर सीतवन में विहार करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के उपसेन-सुत्त में हम देखते हैं कि धर्मसेनापति सारिपुत्र और स्थविर उपसेन सीतवन में सप्पसोण्डिक पब्भार के पास धार्मिक संलाप करते घूम

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४१।
२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६८।
३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६९।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०१।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५९।

रहे हैं। अचानक स्थविर उपसेन को साँप काट जाता है, जिससे उनका शरीर मुट्ठी भर भुस्से की तरह बिखर जाता है। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त[१] तथा विनय-पिटक[२] में भी सीतवन और उसके सप्पसोण्डिक पब्भार का उल्लेख है। चीनी यात्री फा-ह्यान ने करण्ड-वन से २ या ३ 'ली' उत्तर में एक श्मशान को देखा था।[३] सम्भवतः यह सीतवन की स्थिति पर ही था। आज राजगिर कस्बे के पश्चिम में एक पुराना श्मशान है। कदाचित् उसे बुद्धकालीन 'सीतवन' माना जा सकता है।

राजगृह के इन्दकूट (इन्द्रकूट) नामक पर्वत का उल्लेख संयुत्त-निकाय के इन्दक-सुत्त में है। यहाँ भगवान् बुद्ध गये थे और इन्दक यक्ष से उनका संलाप हुआ था। इन्द (इन्द्र) नामक यक्ष के नाम पर इसका यह नाम पड़ा, ऐसा सारत्थप्पकासिनी[४] में कहा गया है।

राजगृह के समीप स्थित पटिभान कूट का उल्लेख संयुत्त-निकाय के पपात-सुत्त में है। यहाँ एक भयंकर प्रपात था। संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त में हम भगवान् को गृध्रकूट पर्वत से प्रतिभान कूट पर दिन के विश्राम के लिये जाते देखते है। एक भिक्षु ने प्रतिभान कूट पर भयंकर प्रपात को देखकर भगवान् से कहा, "भन्ते ! यह एक बड़ा भयानक प्रपात है। भन्ते ! इस भयंकर प्रपात से भी बढ़कर क्या कोई दूसरा बड़ा भयंकर प्रपात है ?"[५]

चोरपपात (चोर प्रपात) एक भयंकर प्रपात था, जिसका उल्लेख महापरिनिब्बाण-सुत्त[६] तथा विनय-पिटक[७] में है। जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, और धम्मपदट्ठकथा में भी कहा गया है, चोर यहाँ से नीचे गिरा दिये जाते थे। यह

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।
२. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।
३. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३००।
५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८१९।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।
७. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।

एक पहाड़ था, जिसके एक ओर चढ़ने का मार्ग था और दूसरी ओर किनारा कटा हुआ था। वहीं से मृत्यु-दंड-प्राप्त चोर नीचे गिरा दिये जाते थे।

राजगृह के समीप स्थित गौतम कन्दरा और कपोत कन्दरा का उल्लेख विनय-पिटक[1] में है। ये दोनों प्राकृतिक गुफाएँ थी। गौतम कन्दरा सम्भवतः गौतम न्यग्रोध के समीप थी। गौतम न्यग्रोध के समीप अपने विहार करने की बात भगवान् बुद्ध ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में कही है।[2] तिब्बती परम्परा की न्यग्रोध गुफा वस्तुतः पालि परम्परा के गौतम न्यग्रोध के समीप की स्थिति को ही प्रकट करती है, यद्यपि गलत रूप से उसे वहाँ (तिब्बती परम्परा में) प्रथम संगीति का स्थान मान लिया गया है, या उसे उसके साथ एकाकार कर दिया गया है।[3] कपोत कन्दरा कबूतरों का प्रिय स्थान थी।[4] इसी के पास बनवाया गया विहार भी "कपोत कन्दरा" कहलाता था। एक बार हम आयुष्मान् सारिपुत्र और महा-मौद्गल्यायन को कपोत कन्दरा में विहार करते देखते है।[5] पालि परम्परा की कपोत कन्दरा वही स्थान मालूम पड़ती है, जिसका उल्लेख 'कपोत' या 'कपोतक' (क-लन्) विहार के रूप में यूआन् चुआङ ने किया है और उसे इन्द्रशाल गुहा से १५० या १६० 'ली' अर्थात् करीब २५ या २७ मील उत्तर-पूर्व में बताया है।[6]

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६०।

४. उदानट्ठकथा, पृष्ठ २४४।

५. उदान, पृष्ठ ५४ (हिन्दी अनुवाद)।

६. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७५; डा० लाहा ने कपोत कन्दरा से इन्द्रशाल गुहा की दूरी यूआन् चुआङ के आधार पर ९ या १० मील बताई है। हिस्टोरियल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५; पता नहीं १५० या १६० 'ली' को उन्होंने ९ या १० मील किस आधार पर मान लिया है?

राजगृह से बाहर 'तिन्दुक कन्दरा' नामक एक अन्य गुफा थी। यहाँ भिक्षुओं के लिये निवास आदि का प्रबन्ध था।[1]

वैभारगिरि के नीचे गरम पानी के सोते (तपोदा) 'तप्तोदका' होने के कारण ही 'तपोदा' कहलाते थे, ऐसा आचार्य बुद्धघोष ने कहा है।[2] मज्झिम-निकाय के महाकच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्तन्त में हम आयुष्मान् समिद्धि को तपोदा में स्नान करते देखते हैं। तपोदा (गर्म कुण्ड) के समीप ही तपोदाराम नामक विहार था, जहाँ हम भगवान् को कई बार विहार करते देखते हैं। मज्झिम-निकाय के महा-कच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के समिद्धि-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी भगवान् ने अपने एक बार यहाँ विहार करने का उल्लेख किया है।[3] वैभारगिरि के नीचे आज भी बुद्ध-काल के समान गरम पानी के सोते (तपोदा) पाये जाते हैं। इनमें सबसे बड़े सोते का नाम सातधारा है। यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत पर भी गर्म पानी के सोतों का उल्लेख किया है,[4] जो भी ठीक है। इस पर्वत पर भी उस समय के समान आज भी गर्म पानी के सोते पाये जाते हैं।

गृध्रकूट पर्वत के नीचे 'सुमागधा' नामक एक सुरम्य पुष्करिणी थी। इस पुष्करिणी के किनारे पर 'मोर निवाप' नामक स्थान था और उसके समीप ही 'उदुम्बरिका' नामक परिब्राजकाराम था। दीघ-निकाय के उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को गृध्रकूट पर्वत से उतर कर सुमागधा पुष्करिणी के

---

१. विनय-पिटक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५९ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)। विनय-पिटक के हिन्दी अनुवाद की नाम-अनुक्रमणी में इस कन्दरा का उल्लेख नहीं है और न पुस्तक के अन्दर ही मैं इसे अभी तक खोज सका हूँ।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४-५।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५४।

किनारे पर 'मोर निवाप' के खुले स्थान में टहलते देखते हैं।[1] संयुत्त-निकाय के चिन्ता-सुत्त में भी सुमागधा पुष्करिणी का उल्लेख है। जैसा हम अभी कह चुके हैं, सुमागधा पुष्करिणी के तीर पर ही मोरनिवाप नामक खुला मैदान था। यह स्थान 'मोर-निवाप' इसलिये कहलाता था, क्योंकि यहाँ मोरों को भोजन दिया जाता था और वे स्वच्छन्द रूप से यहाँ विचरते थे।[2] मोरनिवाप में ही, गृध्रकूट पर्वत और राजगृह के बीच में, सुमागधा के तीर से कुछ ही दूर, उदुम्बरिका-परिब्राजकाराम था जहाँ न्यग्रोध नामक परिब्राजक तीन हजार परिब्राजकों की बड़ी मंडली के साथ रहता था। इस उदुम्बरिका परिब्राजकाराम में ही भगवान् के द्वारा दीघ-निकाय के उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त का उपदेश दिया गया था। मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त से पता लगता है कि उस समय के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध परिब्राजक अक्सर उदुम्बरिका परिब्राजकाराम में आया करते थे और ठहरा करते थे। एक ऐसे ही अवसर पर जब वहाँ काफी प्रसिद्ध परिब्राजक ठहरे हुए थे, भगवान् वहाँ गये थे और मज्झिम-निकाय के महासुकुलुदायि-सुत्तन्त का उपदेश उन्हे दिया था। उदुम्बरिका नामक देवी के द्वारा यह बनवाया गया था, इसलिये इसका नाम उदुम्बरिका परिब्राजकाराम पड़ा था।[3]

एक अन्य परिब्राजकाराम भी राजगृह के समीप था। यह सप्पिनी या सप्पिनिका नदी (आधुनिक पंचान नदी) के तट पर स्थित था। यहाँ अन्नभार नामक एक प्रसिद्ध परिब्राजक रहता था। उसके साथ वरधर और सुकुलुदायि नामक परिब्राजक भी रहते थे। एक बार भगवान् ने परिब्राजकों के इस आश्रम में जाकर चार धम्मपदों का उपदेश दिया था।[4] एक अन्य अवसर पर उन्होंने उन्हें ब्राह्मण-सत्यों (ब्राह्मण-सच्चानि) पर भी उपदेश दिया था।[5]

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २२७।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८३५; पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६९४।

३. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८३२।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९-३१।

५. वहीं, पृष्ठ १७६-१७७।

'मणिमालक' नामक एक चैत्य भी राजगृह में था। यहाँ मणिभद्र नामक यक्ष निवास करता था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये थे और मणिभद्र यक्ष से उनका संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के मणिभद्द-सुत्त में निहित है। यह पर्याप्त रूप से सिद्ध हो चुका है कि वर्तमान मणियार मठ ही बुद्धकालीन 'मणिमालक' चैत्य है।

ऊपर हम राजगृह और उसके चारों ओर स्थित पर्वतों या पहाड़ियों, कन्दराओं, पुष्करिणियो और प्रासंगिक रूप से उनसे सम्बन्धित कुछ अन्य स्थानों का परिचय दे चुके है। वस्तुतः राजगृह भगवान् बुद्ध के जीवन-कार्य से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद के अपने तीसरे, चौथे, सत्रहवें और बीसवें वर्षावास राजगृह में किये। एक बार तो निगण्ठ नाटपुत्त, मक्खलि गोसाल आदि आचार्यों ने भी बुद्ध के साथ-साथ राजगृह में वर्षावास किया, ऐसा साक्ष्य मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त में है।

इतनी अधिक बार भगवान् बुद्ध विभिन्न स्थानों से राजगृह आये और यहाँ से अन्य स्थानों को गये कि उनकी गणना करना या विस्तृत विवरण उपस्थित करना कठिन है। अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद ही शाक्य-कुमार कपिलवस्तु से अनूपिया होते हुए राजगृह आये थे और यहाँ के पाण्डव पर्वत पर ठहरे थे जहाँ बिम्बिसार उनसे मिलने गया था। इस घटना का उल्लेख हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक विवरण को प्रस्तुत करते समय कर चुके है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भगवान् उरुवेला मे तीन जटिल साधु-बन्धुओं को बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित करने के बाद गया होते हुए राजगृह की ओर पधारे और यहाँ के लट्ठिवनुय्यान (लटिठवन उद्यान) के सुप्रतिष्ठ (सुप्पतिटठ) नामक चैत्य में ठहरे। "तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरति लटिठवनुय्याने सुप्पतिट्ठे चेतिये।"[1] यह लट्ठिवनुय्यान (यष्टिवन उद्यान) राजगृह के समीप, राजगृह और गया के मार्ग में, स्थित था। इसी के अन्दर सुप्पतिट्ठ चेतिय (सुप्रतिष्ठ चैत्य) था। जैसा लट्ठिवन (लट्ठिवन—यष्टिवन) नाम से स्पष्ट है, यह एक बाँसों का वन था। इसमे, जैसा राजगृह के आसपास प्रायः आज भी चारों ओर पाये जाते हैं,

---

१ महावग्गो (विनय पिटकं), पृष्ठ ५४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

ताड़ के वृक्ष भी काफी रहे होंगे। इसीलिये आचार्य बुद्धघोष ने इसे 'तालुय्यान' अर्थात् ताड़ वृक्षों का उद्यान भी कहा है।[१] परन्तु अधिकता तो बाँसों के वृक्षों की ही थी, जैसा आज भी वहाँ देखा जा सकता है। यूआन् चुआङ ने "बुद्धवन" पर्वत (वर्तमान बुधाइन) से ३० 'ली' (करीब ५ मील) पूर्व में चलकर यष्टिवन के दर्शन किये थे, जिसे उसने बाँसों के घने वन के रूप में पाया था।[२] यह हमारा पालि परम्परा का लट्ठिवनुय्यान ही था। पालि परम्परा के लट्ठिवनुय्यान तथा यूआन् चुआङ के यष्टिवन जो दोनों एक है, की पहचान आधुनिक राजगिरि से करीब १३ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित जेठियन नामक गाँव के पास वन के रूप में की गई है,[३] जो पूर्णत विनिश्चित कही जा सकती है। यह वन आज वैभार गिरि और सोनगिरि के बीच, सोनभण्डार की गुफाओं से दक्षिण-पश्चिम दिशा मे, स्थित है। यष्टिवन के १० 'ली' (करीब १⅔ मील) दक्षिण-पश्चिम मे यूआन् चुआङ ने दो गर्म सोते देखे थे[४], जिन्हे कनिंघम ने आधुनिक तपोवन (तप्त जल) नामक स्थान के पास गर्म सोते माना है, जो आज भी जेठियन से दो मील दक्षिण मे विद्यमान है।[५] आजकल इन्हे 'तप्पो' भी कहा जाता है।

विनय-पिटक के वर्णनानुसार राजा बिम्बिसार लट्ठिवन-उद्यान मे भगवान् से मिलने आया और दूसरे दिन उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को भोजन से संतृप्त कर अपना वेणुवन उद्यान उन्हे अर्पित कर दिया।[६] यह वेणुवन उद्यान बाद में

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९७२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५, पद-संकेत ४; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८-५२९;

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८।

५. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८-५२९।

६. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५-९८।

राजगृह और सम्पूर्ण मगध के लिये प्रचार-केन्द्र बना और इस दृष्टि से उसका स्थान केवल श्रावस्ती के जेतवनाराम के बाद है जो बुद्ध-काल में सद्धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र था। वेणुवन उद्यान की स्थिति के सम्बन्ध में विनय-पिटक में यह कहा गया है कि यह स्थान, "न गाँव से बहुत दूर है, न बहुत समीप, एकान्तवास के योग्य है।"[1] इससे प्रकट होता है कि यह वन 'अन्तोनगर' के बाहर था। फा-ह्यान ने वेणुवन उद्यान को, जिसे उसने करण्ड-वेणुवन कह कर पुकारा है, गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह की उत्तरी दीवार से करीब ३०० कदम पश्चिम की दिशा में देखा था।[2] इसी से मिलती जुलती स्थिति यूआन् चुआङ ने वेणुवन की बताई है। उसने इसे गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह की उत्तरी दीवार से १ 'ली' (करीब २९३ गज) की दूरी पर स्थित देखा था।[3] जैसा हम पहले देख चुके है, इसी चीनी यात्री के वर्णनानुसार 'नवीन राजगृह' की स्थापना वेणुवन की उत्तर-पूर्व दिशा में कुछ दूर पर की गई थी।[4] इसका अर्थ यह है कि 'नवीन राजगृह' के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर पर यह उद्यान स्थित था। अतः वेणुवन उद्यान का गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह के उत्तरी दरवाजे के अनतिदूर पश्चिम दिशा में और 'नवीन राजगृह' के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर पर होना निश्चित है। इस स्थिति पर आज जंगल है। आधुनिक डाक बँगले के २०० गज दक्षिण में स्थित तालाब को यदि हम यूआन् चुआङ का करण्ड ह्रद मान सकें तो इस तालाब के २०० कदम दक्षिण की ओर के स्थान को हमें वेणुवन की स्थिति मानना पड़ेगा, क्योंकि करण्ड ह्रद को इस चीनी यात्री ने वेणुवन विहार के २०० कदम उत्तर दिशा में देखा था।[5]

---

१. वहीं, पृष्ठ ९७-९८।

२. लेजे : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८४-८५; गाइल्स: ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।

३. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५८।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२।

'वेणुवन' के साथ 'कलन्दक निवाप' शब्द लगा कर अक्सर 'वेणुवन कलन्दक निवाप' के रूप में पूरे नाम का प्रयोग पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में किया गया है। इसके पीछे एक इतिहास या ठीक कहें तो अनुश्रुति निहित है, जो इस प्रकार है। मगध का एक राजा प्राचीन काल में इस उद्यान में शिकार खेलने गया और थकने के बाद शराब पीकर सो गया। उसके मुख से शराब की दुर्गन्ध को सूँघकर एक सर्प उसके पास आ गया और उसे काटना ही चाहता था कि एक वन-देवता ने वृक्ष पर गिलहरी का रूप धारण कर जोर से शब्द करना शुरू कर दिया। राजा जाग पड़ा और उसने देखा कि एक गिलहरी ने उसको जान बचाई है। उसी दिन से उसने आदेश दिया कि गिलहरियों (कलन्दक) को वहाँ नित्य चारा (निवाप) दिया जाय। इसीलिये इस स्थान का नाम 'कलन्दक निवाप' पड़ गया और यहाँ निरन्तर गिलहरियों को चारा दिया जाता था और वे निर्भय होकर यहाँ विचरती थीं। इस अनुश्रुति का उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका[1] (विनय-पिटक की अट्ठकथा) और पपंचसूदनी[2] (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा) में किया है। इसी से मिलती-जुलती अनुश्रुति चीनी और तिब्बती परम्परा में भी पाई जाती है।[3] पालि विवरण में वेणुवन उद्यान को निश्चयतः बिम्बिसार की सम्पत्ति बताया गया है। उसे हम यह संकल्प करते देखते हैं, "इदं खो अम्हाकं वेलुवनं उय्यानं. . . बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स ददेय्यं ति" (यह हमारा वेणुवन. . .क्यों न मैं इसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को प्रदान करूँ)" और बाद में दान करते समय भी वह कहता है, "एताहं भन्ते वेलुवनं उय्यानं बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स दम्मी ति।"[4] (भन्ते! मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को देता हूँ)। यूआन् चुआङ के अनुसार वेणुवन कलन्द या कलन्दक नामक राजगृह के एक धनी व्यक्ति की सम्पत्ति थी, जिसे पहले उसने तीर्थिकों

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७५।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३४।

३. जिसके विवरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९-१६०।

४. महावग्गो (विनय-पिटकं), पृष्ठ ५९ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

(अन्य सम्प्रदाय वालों) को अर्पित कर दिया था, परन्तु बाद में बुद्ध के प्रभाव में आने पर यक्षों की सहायता से उसे वापिस लेकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया।[1] यह अनुश्रुति काफी उत्तरकालीन मालूम पड़ती है और बुद्ध-काल के सम्बन्ध में प्रामाणिक नही मानी जा सकती।

जैसा हम पहले कह चुके है, वेणुवन कलन्दक निवाप का बुद्ध-धर्म के प्रचार की दृष्टि से बुद्ध-काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन की उपसम्पदा यही हुई थी।[2] स्मृति-विनय आदि छह विनय-नियमों का विधान वेणुवन कलन्दकनिवाप में ही किया गया था।[3] अन्य कई विनय-नियम भी यहाँ प्रज्ञप्त किये गये। वेणुवन कलन्दक निवाप मे भगवान् ने कितनी बार निवास किया, इसका विवरण देना कठिन है। दीघ-निकाय के महा-परिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् ने वेणुवन कलन्दक निवाप में अपने एक बार विहार करने का उल्लेख किया है (तत्थेव राजगहे विहरामि वेलुवने कलन्दकनिवापे) और उसे 'रमणीय' वताया है (रमणीयो वेलुवने कलन्दकनिवापो)। "वेलुवने कलन्दकनिवापो" कहने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेणुवन का एक भाग ही कलन्दक निवाप कहलाता था, न कि वेलुवन कलन्दक निवाप में था, जैसा भी कुछ विद्वानों ने कहा है। वेणुवन कलन्दक निवाप में या वेणुवन के कलन्दक निवाप में निवास करते हुए ही भगवान् ने दीघ-निकाय के सिगालोवाद-सुत्त का उपदेश दिया था। सुत्त-निपात के सभिय-सुत्त का भी उपदेश यही दिया गया था। इसी प्रकार मज्झिमनिकाय के रथविनीत-सुत्तन्त, चूल-वेदल्ल-सुत्तन्त, अभय राजकुमार-सुत्तन्त, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त, महासकुलुदायि-सुत्तन्त, चूल-सकुलुदायि-सुत्तन्त, भूमिज-सुत्तन्त, धानंजानि-सुत्तन्त, दन्तभूमि-सुत्तन्त, छन्नोवाद-सुत्तन्त तथा पिंड-पात-पारिसुद्धि-सुत्तन्त यही उपदिष्ट किये गये थे। संयुत्त-निकाय के जो अनेक सुत्त वेणुवन कलन्दक-निवाप में उपदिष्ट किये गये या जिनमे इसका उल्लेख है,

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५६-१५७।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९८-१००।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९५-४२८।

उनका परिचय हम प्रथम परिच्छेद में संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय दे चुके हैं और यहाँ पुनरुक्ति करना इष्ट न होगा। इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय तथा अन्य पूर्वकालीन पालि साहित्य में इतनी अधिक बार वेणुवन कलन्दक-निवाप का उल्लेख किया गया है कि उन सबका विवरण देना यहाँ विस्तार-भय से आवश्यक न होगा। अनेक बुद्ध-शिष्यों को भी हम वेणुवन कलन्दक-निवाप में निवास करते देखते है। उदाहरणतः भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद हम आनन्द को वेणुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्तन्त में देखते हैं। आयुष्मान् बक्कुल मज्झिम-निकाय के बक्कुल-सुत्तन्त में वेणुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते दृष्टिगोचर होते है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण भी दिये जा सकते है।

राजगृह के प्रसिद्ध वैद्य जीवक का राजगृह के समीप एक आम्रवन था जिसे उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था[1]। यह आम्रवन उसके घर के समीप (आसन्नतरं) ही था और वेणुवन और गृध्रकूट वहाँ से (उसके घर से) कुछ अधिक दूर (अति दूरं) पड़ते थे। भगवान् बुद्ध ने इस जीवकाम्रवन (जीवकम्बवन) मे अपने विहार का उल्लेख दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त मे किया है। जीवकाम्रवन (जीवकम्बवन) में निवास करते हुए ही भगवान् ने सामञ्ञ फल-सुत्त का उपदेश अजातशत्रु के प्रति दिया था। मज्झिम-निकाय के जीवक-सुत्तन्त का का उपदेश भी यहीं दिया गया था। विनय-पिटक में भी जीवकाम्रवन का उल्लेख है[2] तथा 'थेरीगाथा' से हमें सूचना मिलती है कि सुभा (शुभा) नामक भिक्षुणी जीवकम्बवन मे ही रहती थी, इसीलिये वह 'सुभा जीवकम्बवनिका' भी कहलाती थी।[3] सुमंगलविलासिनी में अजातशत्रु के जीवकाम्रवन में जाने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस वन में पहुँचने के लिये उसे राजगृह के बाहर जाना पड़ा था। 'अन्तोनगर' के पूर्वी दरवाजे से निकल कर वह गृध्रकूट पर्वत की छाया में होता हुआ इस वन में पहुँचा था।[4] इस प्रकार

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५-४६।
२. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।
३. थेरीगाथा, पृष्ठ ३३, ७६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।
४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५०।

जीवकाम्रवन नगर और गिज्झकूट पर्वत के बीच में स्थित था। फा-ह्यान ने जीवकाम्रवन को नगर की उत्तर-पूर्व दिशा में एक विस्तृत मोड पर देखा था।[1] जीवकाम्रवन और उसके समीप स्थित जीवक के घर को यूआन् चुआङ ने सातवी शताब्दी ईसवी में भग्न अवस्था में उस खाई से, जहाँ चीनी परम्परा के अनुसार श्रीगुप्त ने आग जलाकर भगवान् बुद्ध को जान से मारने का दुष्प्रयत्न किया था, उत्तर-पूर्व दिशा में देखा था।[2]

इसिपतन मिगदाय या सुसुमारगिरि के भेसकलावन मिगदाय की तरह एक मिगदाय या मृगोद्यान राजगृह में भी था, जो मद्दकुच्छि (मद्रकुक्षि) नामक स्थान मे स्थित था और इसीलिये मद्दकुच्छि मिगदाय कहलाता था। यह भी एक सुरम्य स्थान था, जहाँ अपने एक बार निवास करने का उल्लेख भगवान् ने दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में किया है।[3] विनय-पिटक मे भी मद्दकुच्छि मिगदाय का उल्लेख है।[4] यह स्थान मिगदाय तो इसलिये कहलाता था क्योंकि यहाँ मृगों को अभय दिया गया था, उन्हें भोजन दिया जाता था और वे स्वच्छन्द रूप से यहाँ विचरते थे और जिस स्थान पर यह मृगोद्यान अवस्थित था उसका नाम 'मद्दकुच्छि' इसलिये पडा कि यहाँ अजातशत्रु की माँ ने, जब उसे ज्योतिषियों से यह मालूम हुआ कि उसका भावी पुत्र अपने पिता को मारेगा, अपने पेट (कुच्छि) को गर्भपात करवाने के लिये मलवाया था (मद्द)।[5] एक बार जब भगवान् गृध्रकूट पर्वत के नीचे घूम रहे थे तो देवदत्त ने ऊपर से एक शिला उन पर ढाह दी थी जो दो चट्टानों से टकरा कर रुक गई थी, परन्तु एक पत्थर का टुकडा भगवान् के पैर में लग गया था जिससे उन्हें चोट आ गई थी और उससे रुधिर बहने लगा था। इस अवस्था में

---

१. लेग्गे : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८२; गाइल्स: ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५०।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५०-१५१।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

४. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४०, ३९६।

५. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ७७।

भिक्षु उन्हें मंचशिविका में रख कर जिस स्थान पर ले गये थे, वह मद्दकुच्छि मिगदाय ही था। संयुत्त-निकाय के दो सकलिक सुत्तों[1] में हम भगवान् को मद्दकुच्छि मिग-दाय में, पैर के पत्थर से कट जाने के कारण, कड़ी वेदना स्वस्थ और स्थिर चित्त से सहते देखते हैं। यह इसी समय की घटना है।

देवदत्त ने अजातशत्रु से अभिसन्धि कर भगवान् बुद्ध को जान से मारने के लिये मदमस्त नालागिरि हाथी उन पर छुड़वाया था।[2] यूआन् चुआङ ने इस स्थान को प्राचीन राजगृह (गिरिव्रज) के उत्तरी दरवाजे के बाहर देखा था। हाथी का नाम पालि परम्परा के अनुसार नालागिरि न देकर यूआन् चुआङ ने चीनी परम्परा के अनुसार धनपाल दिया है।[3] बाद में अजातशत्रु अपनी गलती का अनुभव कर बुद्ध-भक्त हो गया था और, जैसा हम महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखते है, उसने भी भगवान के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी धातुओं के एक अंश को प्राप्त कर उस पर राजगृह में एक स्तूप बनवाया था। इस स्तूप को यूआन् चुआङ ने वेणुवन (जिसकी स्थिति के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं) की पूर्व दिशा में देखा था।[4] एक अशोक-स्तूप का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है जिसे उसने करण्ड (कलन्द) ह्रद से (जो वेणुवन विहार से २०० कदम उत्तर में था) २ या ३ 'ली' उत्तर-पश्चिम में देखा था।[5] फा-ह्यान ने भी इन दोनों स्तूपों का उल्लेख किया है, परन्तु इनकी जो स्थितियाँ उसने दी हैं, वे यूआन् चुआङ की स्थितियों से नहीं मिलतीं और उनमें पर्याप्त भ्रामकता है। फा-ह्यान ने अजातशत्रु द्वारा निर्मित स्तूप को नगर के पश्चिमी द्वार से बाहर ३०० कदम की दूरी पर देखा था[6] और

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २७-२८, ९५-९६।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८६-४८७।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४९।

४. वहीं, पृष्ठ १५८।

५. वहीं, पृष्ठ १६२।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९

अशोक के स्तूप को नगर की दक्षिण दिशा मे ३ 'ली' की दूरी पर।[१] इस प्रकार आधुनिक राजगिरि कस्बे के पश्चिम मे सरस्वती नदी के दूसरे किनारे पर जो एक टीला है और जिसे एक स्तूप का अवशेष माना जा सकता है, फा-ह्यान के मतानुसार अजातशत्रु द्वारा निर्मित और यूआन् चुआङ के मतानुसार, जैसा हम अभी देख चुके है, अशोक द्वारा निर्मित स्तूप मानना पडेगा।

'उदान'[२] मे हम राजगृह मे स्थविर महाकाश्यप को 'पिप्फलि गुहा' नामक गुफा या उसमे स्थित विहार मे निवास करते देखते है। सयुत्त-निकाय के पठम-गिलान-सुत्त मे हम उन्हे इसी गुफा मे बीमार पडे देखते है। यूआन् चुआङ ने अपने यात्रा-विवरण मे कहा है कि वेणुवन से ५ या ६ 'ली' (एक मील या उससे कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम मे, दक्षिणागिरि के उत्तर की ओर, एक बडे बॉसो के वन मे एक विशाल गुफा थी जहॉ स्थविर महाकाश्यप ५०० भिक्षुओ के साथ रहते थे।[३] सम्भवत पालि परम्परा की पिप्फलि गुहा यही थी, यद्यपि ऐसा नाम लेकर यूआन चुआङ ने उल्लेख नही किया है। यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत के गरम सोतो के पश्चिम मे 'पिप्पल (पि-पो-लो) गुहा' का भी उल्लेख किया है, परन्तु यहाँ भगवान् बुद्ध के रहने की ही बात कही है, महाकाश्यप की नही।[४] इसी प्रकार फा-ह्यान ने प्रथम सगीति के स्थान सप्तपर्णी (सत पर्ण) गुहा से ५ या ६ 'ली' पूर्व मे 'पीपल गुहा' का उल्लेख किया है और कहा है कि यहॉ भगवान् बुद्ध भोजनोपरान्त ध्यान के लिये आया करते थे।[५] पालि मे पिप्फलि गुहा को प्राय महाकाश्यप के निवास मे ही सम्बद्ध किया गया है ओर 'उदानट्ठकथा' मे कहा गया है कि इस गुफा के बाहर एक पीपल (पिप्फलि) का पेड खडा था जिसके कारण यह 'पिप्फलि गुहा कहलाती थी। चीनी यात्रियो के विवरणो से भी इस बात का आभास मिलना

---

१. वही, पृष्ठ ४८।

२. पृष्ठ ७, ४० (हिन्दी अनुवाद)।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९।

४. वही, पृष्ठ १५४।

५. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२।

है कि पीपल के वृक्ष के कारण ही इस गुफा का यह नाम पड़ा था। मंजुश्रीमूल-कल्प[1] में पिप्फलि गुहा को "पैपल गुहा" कहकर पुकारा गया है। हम युआन् चुआङ के द्वारा वर्णित बाँसों के वन में स्थित गुहा को पालि की 'पिप्फलि गुहा' से मिला सकते हैं, यद्यपि नाम-साम्य तो 'पिप्फलि गुहा' का यूआन् चुआङ की 'पिप्पलि गुहा' और फा-ह्यान की 'पीपल गुहा' से ही अधिक है, बल्कि दोनों प्रायः एक ही हैं।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी हम पिप्फलि गुहा से अलग 'काश्यपका-राम' नामक विहार का उल्लेख पाते हैं, जो आर्य काश्यप के नाम से ही संयुक्त है। संयुत्त-निकाय के अस्सजि-सुत्त में हम स्थविर अस्सजि को काश्यपकाराम में बीमार पड़े देखते हैं। सम्भव है बाँसों के वन में जिस विशाल गुफा को यूआन् चुआङ ने देखा था और जिसे उसने वह स्थान बताया है जहाँ आर्य महाकाश्यप ५०० अन्य भिक्षुओं के सहित रहते थे, बुद्धकालीन 'काश्यपकाराम' ही हो और यूआन् चुआङ की 'पिप्पल गुहा' और फा-ह्यान की "पीपल गुहा" ही बुद्धकालीन 'पिप्फलि गुहा'। इस प्रकार ये दोनों स्थान आर्य महाकाश्यप की अनुस्मृति से अनुविद्ध थे।

यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत के गरम सोतों के पश्चिम में जिस पिप्पल गुहा (पि-पो-लो) गुहा का उल्लेख किया है, उसे आधुनिक 'जरासन्ध की बैठक' से मिलाया जा सकता है, जो ठीक इसी स्थिति पर आज भी विद्यमान है, अर्थात् विपुल गिरि के पश्चिम में। यह स्थान वैभार पहाड़ी के पूर्वी ढाल पर गरम पानी के कुण्डों (तपोदा) से कुछ ऊपर स्थित है। आजकल इसे लोग 'मचान' कहकर भी पुकारते हैं। 'जरासन्ध की बैठक' एक चबूतरे के रूप में है जो २२ फुट से लेकर २८ फुट तक ऊँचा है। इसका आकार लगभग ८५ फुट लम्बा और ८१ फुट चौड़ा है।

मज्झिम-निकाय के छन्नोवाद-सुत्तन्त में हम आयुष्मान् छन्न को गृध्रकूट के आसपास कहीं आत्महत्या करते देखते हैं, क्योंकि यहीं से धर्मसेनापति सारिपुत्र और महाचुन्द आदि उन्हें बीमार अवस्था में देखने और सान्त्वना देने जाते हैं। इसी प्रकार हम पहले देख ही चुके हैं कि स्थविर वक्कलि तथा गोधिक नामक भिक्षुओं ने इसिगिलि की कालसिला पर आत्महत्या की थी। यूआन् चुआङ ने भिक्षुओं

---

१. पृष्ठ ५८८।

के नाम तो नहीं लिये हैं, परन्तु दो भिक्षुओं की आत्महत्या के स्थानों को उन्होंने दो स्तूपों से अंकित देखा था, जो गिरिव्रज या प्राचीन नगर के उत्तरी दरवाजे के पश्चिम में, दक्षिणागिरि के उत्तर में, अवस्थित थे।[१] फा-ह्यान ने काली चट्टान (कालसिला) के सम्बन्ध में जो इसी प्रकार की घटना का उल्लेख किया है और जिसे पालि साहित्य से भी समर्थन मिलता है, उसका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं।

कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली, श्रावस्ती और चम्पा के समान राजगृह में भी कई महोत्सव मनाये जाते थे। विनय-पिटक[२] में राजगृह के 'गिरग्गसमज्जा' नामक मेले का वर्णन है, जो सम्भवतः गृध्रकूट पहाड़ी की चोटी पर लगता था। सिगाल जातक के वर्णनानुसार राजगृह के लोग एक सुरा-उत्सव मनाते थे जिसमें नृत्य-गान के साथ-साथ सुरा पान होता था। विमानवत्थु-अट्ठकथा में राजगृह के एक 'नक्खत्तकीळं' (नक्षत्रक्रीड़ा) नामक उत्सव का वर्णन है, जिसमें धनवान् पुरुष भाग लेते थे और जो एक सप्ताह तक चलता था। सुमंगलविलासिनी[३] में भी राजगृह में होने वाले उत्सवों का वर्णन है। दीपि जातक में उल्लेख है कि हिमालय के तपस्वी राजगृह में नमक और खटाई लेने आये थे।

राजगृह नगरी एक प्रसिद्ध मार्ग के द्वारा श्रावस्ती से मिली हुई थी, जिसका उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे। वाराणसी तक भी एक मार्ग राजगृह से जाता था और चम्पा से भी राजगृह नगरी मार्ग के द्वारा जुड़ी हुई थी। राजगृह से जीवक तक्षशिला विद्या प्राप्त करने के लिये गया था। दरीमुख जातक तथा संखपाल जातक से हमें पता लगता है कि मगध के राजकुमार शिक्षार्थ तक्षशिला भेजे जाते थे। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में राजगृह की दूरी कपिलवस्तु से ६० योजन और श्रावस्ती से ४५ योजन बताई गई है। राजगृह और उसके विभिन्न स्थानों के इस संक्षिप्त भौगोलिक विवरण के बाद अब इस बुद्धकालीन मगध राज्य के अन्य निगमों और ग्रामों के परिचय पर आते है।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५५।

२. पृष्ठ ४५४ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १४१-१४२: मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ ३०७।

अन्धकविन्द राजगृह के समीप एक गाँव था। संयुत्त-निकाय के अन्धकविन्द-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को इस गाँव के बाहर खुले मैदान में, काली अँधियारी रात में, ध्यान में बैठते देखते हैं, जब कि रिमझिम पानी बरस रहा था। विनय-पिटक में उल्लेख है कि एक बार आर्य महाकाश्यप अन्धकविन्द से राजगृह आ रहे थे, जब कि मार्ग में एक नदी को पार करते समय वे गिर गये और उनके चीवर भींग गये।[1] यह नदी क्या हो सकती है और अन्धकविन्द की क्या आधुनिक स्थिति है, इसका अभी सम्यक् निर्णय नहीं हो सका है। परन्तु ऐसा लगता है कि नदी सम्भवतः सप्पिनी (आधुनिक पञ्चान) ही थी। विनय-पिटक के एक अन्य स्थल पर हम गुड़ के घड़ों से भरी ५०० गाड़ियों को राजगृह से अन्धकविन्द जाने वाले मार्ग पर ले जाये जाते देखते हैं।[2] इससे ज्ञात होता है कि अन्धकविन्द का व्यापारिक महत्व था और वह सड़क के द्वारा राजगृह से जुड़ा हुआ था। एक बार अन्धकविन्द में हम भगवान् बुद्ध को वायु-रोग से पीड़ित होते देखते हैं जब कि आनन्द उनकी परिचर्या में थे।[3] समन्तपासादिका[4] में अन्धकविन्द की राजगृह से दूरी तीन गावुत (करीब छह मील) बताई गई है।

अम्बसण्ड (आम्रखण्ड) एक ब्राह्मण-ग्राम था, जो गिरिव्रज या प्राचीन राज-से पूर्व की दिशा में स्थित था। इसके उत्तर में वेदिक (वेदियक) पर्वत था।[5] इसका अर्थ यह है कि यह गाँव आधुनिक गिर्यक् पर्वत के दक्षिण में स्थित था। दीघ-निकाय के सक्कपञ्ह-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि इस गाँव का नाम अम्बसण्ड (अम्बसण्डा भी पाठान्तर) इसलिये पड़ा कि यह कई आम्र-वनों के बीच में स्थित था।[6]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४३; महावग्गो (विनय-पिटकं), पृष्ठ १६५ (बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण)।

२. विनय-पिटक, पृष्ठ २३६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. विमानवत्थु-अट्ठकथा, पृष्ठ १८५-१८६।

४. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १०४९।

५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १८१।

६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

उरुवेला (सं० उरुबिल्व) स्थान, जिसे दिव्यावदान[1] में उरुविल्वा कह कर पुकारा गया है, नेरंजरा नदी के किनारे था। उसके समीप ही बोधि-वृक्ष था। इसलिये पालि तिपिटक में इन तीनों स्थानों का कभी-कभी साथ-साथ उल्लेख करते हुए भगवान् को वहाँ विहार करते दिखाया गया है। उदाहरणतः विनय-पिटक के महावग्ग में हम पढते है, "तेन समयेन बुद्धो भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरंजराय तीरे बोधिरुक्खमूले पठमाभिसम्बुद्धो।" आचार्य बुद्धघोष ने 'उरुवेला' शब्द की व्याख्या 'महावेला' के रूप मे की है,[2] जिसका अर्थ है महा तट। अतः आधुनिक बोध-गया या बुद्ध-गया के समीप नीलाजन (नेरजरा) नदी के विशाल तट के क्षेत्र को, जिसमें बोधि-वृक्ष, महाबोधि मन्दिर और उनके आसपास के स्थान सम्मिलित है, बुद्धकालीन उरुवेला समझना चाहिये। यह स्थान आधुनिक गया नगर के छह मील दक्षिण मे स्थित है। चीनी यात्री फा-ह्यान यहाँ गया से २० 'ली' दक्षिण मे चलकर आया था।[3] फाह्यान के तीन 'ली' को एक मील के बराबर मानकर गिनने से यह दूरी आज के अनुसार ठीक बैठ जाती है। आचार्य बुद्ध-घोष का पौराणिक ढंग का कहना है कि जब किसी व्यक्ति के मन मे कोई बुरा विचार आता था तो वह एक मुट्ठी रेत भरकर पास के स्थान मे छोड़ आता था। इसी प्रकार रेत भर भर कर एक विशाल टीला बन गया, जो 'उरुवेला' कहलाया जाने लगा।[4] उरुवेला मे ही भगवान् ने छह वर्ष तक तपस्या की थी।[5] बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भी अनेक बार हम भगवान् को इस स्थान पर विहार करते देखते हैं और कई बार उन्होंने अपने यहाँ विहार करने का उल्लेख भी किया है।[6] एक बार कुछ

---

१. पृष्ठ २०२, मिलाइये ललितविस्तर, पृष्ठ २४८, २६७।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९५२।

३. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५३।

४. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९५२।

५. अरिय-परियेसन (पासरासि) सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।६); महासच्चक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।६); बोधिराजकुमार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।५); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८७-८९ (हिन्दी अनुवाद)।

६. उदाहरणतः देखिये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३३;

ब्राह्मण यहाँ भगवान् से मिले थे। भगवान् ने उन्हें वृद्धों के सत्कार के सम्बन्ध में उपदेश दिया था।[१] उरुवेला के चतुर्दिक् का दृश्य बड़ा सुन्दर और ध्यान के अनुकूल (पटिसल्लान सारुप्पं) था। उसका वर्णन करते हुए स्वयं भगवान् ने कहा है, "वहाँ मैंने एक रमणीय, प्रसन्नताकारी भूमि भाग मे एक नदी को बहते देखा, जिसका घाट श्वेत और रमणीय था।...मैंने सोचा, यह भूमि भाग रमणीय है, यह वन खण्ड प्रसन्नताकारी है। सुन्दर, श्वेत घाट वाली रमणीय नदी है।"[२] उरुवेला में ज्ञान प्राप्त करने के बाद भगवान् गया होते हुए वाराणसी और वहाँ के इसिपतन मिगदाय में गये, जहाँ प्रथम वर्षावास करने के पश्चात् वे पुनः उरुवेला लौट आये। इसी समय उरुवेलावासी तीन जटिल साधु-बन्धुओं की प्रव्रज्या हुई, जिसके बाद भगवान् गया होते हुए राजगृह चले गये।[३]

उरुवेला मे जिस बोधि-वृक्ष के नीचे भगवान् को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, वह आज भी बुद्ध-गया मे १०० फुट ऊँचे बोधि-वृक्ष के रूप में विद्यमान है। इस महाभाग वृक्ष का इतिहास भी बड़ा उतार-चढ़ाव का रहा है, जिसका वर्णन करना हमारा प्रकृत विषय नही है। फिर भी इतना कह देना इष्ट होगा कि सम्राट् अशोक ने इस वृक्ष के दर्शनार्थ यात्रा की थी, जैसा कि साँची के तोरण-द्वार पर अंकित इस सम्बन्धी एक चित्र से विदित होता है। इसी प्रकार सारनाथ मे प्राप्त एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण दृश्य से हमें पता चलता है कि अशोक ने इस वृक्ष के समीप एक स्तम्भ भी स्थापित करवाया था जिसका कोई अवशिष्ट चिह्न इस समय हमें अभाग्यवश नही मिलता। इसी वृक्ष की शाखा को अशोक की पुत्री संघमित्रा अपने साथ लंका ले गई थी, जहाँ

---

मिलाइये वहीं, पृष्ठ १८२; उदान (बोधि-वग्ग); विनय-पिटक, पृष्ठ ७५, ७९, ८९ (हिन्दी अनुवाद); संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७०४, ७२९।

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

२. ऊपर पद-संकेत ५ के समान; मिलाइये महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३; ललितविस्तर, पृष्ठ २४८।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८८-९४।

अनुराधपुर नगर में उसका आरोपण किया गया। कई बार इतिहास में इसको नष्ट करने के प्रयत्न भी किये गये। परन्तु विफल हुए। सन् १८७० में जनरल कनिंघम द्वारा जब इसके समीप पुराने मन्दिर की मरम्मत करवाई जा रही थी तो यह वृक्ष गिर पड़ा, परन्तु देखभाल के पश्चात् यह पुनः पल्लवित हो उठा और आज एक समृद्ध रूप में तथागत की बोधि का साक्ष्य रूप यह वृक्ष विद्यमान है। बोधि-वृक्ष के पास जो महाबोधि-मन्दिर है, वह अपने मूल रूप में यूआन् चुआङ के समय से प्रायः इसी रूप में चला आ रहा है, ऐसा इस चीनी यात्री के इस मन्दिर सम्बन्धी वर्णन से प्रकट होता है। सम्भवतः बुद्ध-गया के इस मन्दिर का निर्माण शुङ्ग-काल में किया गया। यूआन् चुआङ के यात्रा-वृत्तान्त तथा बुद्ध-गया में प्राप्त अभिलेख से यह जान पड़ता है कि सम्राट् अशोक ने वर्तमान महाबोधि मन्दिर के स्थान पर एक विहार बनवाया था, जिसका आने वाली शताब्दियों में कई बार जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण किया गया। समुद्रगुप्त के समकालीन लंका के राजा मेघवर्ण ने यहाँ एक विहार बनवाया था। महाबोधि मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम में आज जो एक आयताकार चबूतरा सा दिखाई पड़ता है, उसे मेघवर्ण द्वारा निर्मित विहार की आधार-भूमि माना जाता है। महाबोधि मन्दिर और बोधि-वृक्ष के बीच में जो पत्थर का बना हुआ एक चबूतरा है, वह उस स्थान का द्योतक है जहाँ बैठकर गौतम बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। यह स्थान पालि साहित्य में 'बोधिमण्ड' कहलाता है। चूँकि यहाँ वज्र की तरह अचल बैठकर भगवान् ने मार-सेना को परास्त किया था, इसलिये यह स्थान वज्रासन भी कहलाता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सात सप्ताहों को भगवान् बुद्ध ने उरुवेला में बोधिवृक्ष के समीप किन-किन स्थानों पर बिताया, इसका कुछ उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं। यहाँ हम उनकी आधुनिक स्थितियों का कुछ विवेचन करेंगे।

बोधि-प्राप्ति के बाद प्रथम सप्ताह भगवान् ने बोधि-वृक्ष के नीचे ही बिताया। दूसरे सप्ताह में वे उसी के समीप पूर्वोत्तर दिशा में चलकर अनिमेष दृष्टि से बोधि-वृक्ष की ओर कृतज्ञतापूर्ण भाव से देखते रहे। यह स्थान वही था, जहाँ आज ईंटों का बना ५५ फुट ऊँचा 'अनिमेष लोचन' नामक चैत्य बना हुआ है। तीसरा सप्ताह भगवान् बुद्ध ने चंक्रमण करते हुए (टहलते हुए) ध्यान में बिताया था। आज

महाबोधि-मन्दिर के उत्तर दिशा वाली दीवार से लगा हुआ जो ६० फुट लम्बा और तीन फुट ऊँचा चबूतरा है, वह भगवान् की इस चंक्रमण-भूमि को द्योतित करता है और यहाँ 'रत्नचंक्रम' नामक चैत्य स्थापित किया गया था। इस चबूतरे पर कमल के फूलों के प्रतीक-स्वरूप भगवान् बुद्ध के चरण अंकित हैं, जो इस स्थान को उनकी चंक्रमण-भूमि सिद्ध करते हैं। चौथा सप्ताह भगवान् बुद्ध ने उस स्थान पर बिताया था जहाँ आज 'रत्नवर' नामक चैत्य बना हुआ है। यह चैत्य बिना छत का है और कई छोटे-छोटे स्तूपों के बीच अवस्थित है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई क्रमशः १४ और ११ फुट हैं और केवल चार बाहरी दीवारें ही शेष रह गई हैं। इस स्थान पर निवास करने के बाद भगवान् बुद्ध ने अपना पाँचवाँ सप्ताह अजपाल नामक न्यग्रोध (बरगद) के पेड़ के नीचे बिताया था। यह वृक्ष बोधि-वृक्ष की पूर्व दिशा में था। इस पेड़ का 'अजपाल' नाम पड़ने का एक कारण आचार्य बुद्धघोष ने यह बताया है कि इसके नीचे बकरी चराने वाले गड़रिये (अजपाल) अक्सर बैठा करते थे और दूसरा यह कि वेद-पाठ करने में असमर्थ (अजपा) कुछ वृद्ध ब्राह्मण यहाँ झोंपड़े बनाकर निवास करते थे। इसी पेड़ के नीचे सुजाता की दासी ने गौतम बोधिसत्व को खीर खिलाई थी। बोधि-प्राप्ति के बाद का छठा सप्ताह भगवान् ने मुचलिन्द नामक वृक्ष के नीचे बिताया था। यह वृक्ष बोधि-वृक्ष की पूर्व दिशा में स्थित था। इसी वृक्ष के समीप मुचलिन्द नाम की पुष्करिणी थी, जिसमें इसी नाम का एक नागराज रहता था, जिसने आँधी के समय भगवान बुद्ध की रक्षा की। महाबोधि मन्दिर से दक्षिण में एक मील की दूरी पर स्थित 'मुचरिन्' नामक तालाब सम्भवतः मुचलिन्द वृक्ष और मुचलिन्द पुष्करिणी की स्थिति को सूचित करता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद का सातवाँ सप्ताह भगवान् बुद्ध ने राजायतन नामक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए बिताया। यह वृक्ष बोधि वृक्ष की दक्षिण दिशा में था। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'ललित-विस्तर' (पृष्ठ ३८१) में इस वृक्ष का नाम 'तारायण' दिया गया है। उरुवेला के समीप नैरंजना नदी के तट पर सुप्रतिष्ठित तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थं) नामक घाट था, जहाँ भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व स्नान किया था।[1] उरुवेला के

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ९१ (हिन्दी अनुवाद)।

समीप चार गाँवों का उल्लेख महावस्तु[1] में किया गया है, जिनके नाम हैं, प्रस्कन्दन, बलाकल्थ, उज्जंगल और जंगल। कनिंघम के मतानुसार बुद्ध-गया के पास आधुनिक उरेल नामक छोटा सा गाँव, जो कुछ झोपड़ियों का समूह मात्र है, बुद्धकालीन उरुवेला के नाम और सम्भवतः स्थिति को स्थायी बनाये हुए है।[2]

उरुवेला के पास ही, नैरंजना के किनारे, सेनानिगाम या सेनानि निगम था, जहाँ सेनानि कुटुम्बी रहता था।[3] उसकी पुत्री सुजाता थी जिसने भगवान् को बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व मधुर पायास खिलाई थी। सेनानिगाम के समीप ही नेरंजरा नदी के किनारे पर भगवान् ने साधना की थी। बोधि-मण्ड उसके समीप ही था। ऋषिपतन मृगदाव में प्रथम वर्षावास करने के उपरान्त जब भगवान् उरुवेला आये तो वे सेनानिगाम भी गये और वहाँ धर्मोपदेश किया। 'सेनानिगाम' नाम की दो व्याख्याएँ आचार्य बुद्धघोष ने की है। एक के अनुसार वह प्रथम कल्प में (सृष्टि के आदि में) एक सैनिक स्थान के रूप मे स्थापित किया गया था। "पठमकप्पिकानं सेनाय निविट्ठोकासे पतिट्ठितगामो।" दूसरी व्याख्या देते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि सुजाता के पिता सेनानी का गाँव होने के कारण वह "सेनानि गाम" कहलाता था। "सुजाताय वा पितु सेनानीनाम निगमो।"[4] यह दूसरी व्याख्या ही अधिक युक्तियुक्त जान पडती है। सेनानिगाम इसिपतन मिगदाय से १८ योजन की दूरी पर था।[5] ललित-विस्तर[6] में सेनानिगाम को सेनापतिग्राम कहकर पुकारा गया है। आधुनिक नीलाजन नदी के दूसरे किनारे पर डेढ़ मील की दूरी पर जो एक ऊँचा टीला है, उसे सुजाता का स्थान कहा जाता है। सम्भवत. सुजाता के पिता सेनानी का गाँव यही था।

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०७।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ७२०; आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९०८-०९, पृष्ठ १३९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १६८।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

५. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

६. पृष्ठ २४८; मिलाइये महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३।

अम्बलट्ठिका स्थान राजगृह और नालन्दा के बीच में था। आम्र-वन के रूप में होने के कारण इसका यह नाम पड़ा था।[1] ब्रह्मजाल-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को राजगृह और नालन्दा के बीच रास्ते पर जाते और एक रात के लिये अम्बलट्ठिका के राजागारक (राजकीय भवन) में ठहरते देखते हैं।[2] ब्रह्मजाल-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[3] अंतिम समय जब भगवान् ने राजगृह से कुसिनारा के लिये प्रस्थान किया तो जिस पहले स्थान पर वे ठहरे वह अम्बलट्ठिका ही था। यहां के राजागारक में ही इस बार भी भगवान् ठहरे और फिर यहाँ से चलकर नालन्दा पहुँचे।[4] राजागारक, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, राजा (बिम्बिसार) के द्वारा बनवाया गया एक आगार या घर था जो अम्बलट्ठिका के आम्रवन में स्थित था।[5] एक दूसरी अम्बलट्ठिका, जो भी आम्रवन के रूप मे ही थी, वेणुवन विहार के बाहर थी। यह स्थान ध्यान करने वालो के लिये अत्यन्त उपयुक्त था, क्योंकि यहाँ का वातावरण अत्यन्त शान्त और मनोरम था। आयुष्मान् राहुल अपना अधिकतर समय यही बिताते थे। इस अम्बलट्ठिका को 'पधानघर संखेप' कहकर पुकारा गया है, जिससे प्रकट होता है कि एक लघु ध्यान-भवन के रूप में इसे प्रयुक्त किया जाता था और अक्सर इस प्रयोजन के लिये यहाँ भिक्षु आया करते थे।[6] इस अम्बलट्ठिका में ही भगवान् ने राहुल को मज्झिम-निकाय के अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त का उपदेश दिया था।[7] महापंडित राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप का मत है कि वर्तमान सिलाव ही सम्भवतः प्रथम अम्बलट्ठिका है।[8] एक अन्य अम्बलट्ठिका मगध के खाणुमत नामक

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २९४।
२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १।
३. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४३।
४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२२।
५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ४१।
६. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३५।
७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४५-२४७।
८. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२२, पद-संकेत २।

ब्राह्मण-ग्राम में भी थी, जिसका उल्लेख हम उस गाँव का परिचय देते समय करेंगे।

खाणुमत एक ब्राह्मण-ग्राम था। मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा यह कूटदन्त नामक ब्राह्मण को दान कर दिया गया था, जो इसकी सारी आय का स्वामी था। इस गाँव में एक अम्बलट्ठिका (आम्रयष्टिका) थी। यह भी आम्र-वन के रूप में राजगृह और नालन्दा के बीच में स्थित अम्बलट्ठिका के समान ध्यान के लिये एक उपयुक्त स्थान था।[१] भगवान् खाणुमत में एक बार आये थे और यहाँ की अम्बलट्ठिका में ठहरे थे। इसी समय कूटदन्त-सुत्त का उपदेश दिया गया था। महाकवि अश्वघोष ने खाणुमत को 'स्थाणुमती' कहकर पुकारा है।[२]

मचल गाम बुद्धकालीन मगध का एक अत्यन्त छोटा सा गाँव (गामक) था, परन्तु था बहुत महत्वपूर्ण! इस गाँव का उल्लेख एक जातक-कथा में हुआ है, जहाँ कहा गया है कि इस गाँव में केवल तीस परिवार थे। "तस्मि च गामे तिंस एव कुलानि होन्ति।" इस गाँव के बीच में एक पंचायत-घर बना हुआ था जिसमें किसी ग्राम-कार्य से उपर्युक्त ३० परिवारों के मनुष्यों को हम एक सभा के रूप में मिलते देखते हैं। "ते च तिंसकुलमनुस्सा एकदिवसं गाममज्झे थत्वा गामकम्मं करोन्ति।"[३] बुद्धकालीन ग्राम-व्यवस्था तथा जनतंत्रीय शासन-पद्धति का इस गाँव को हम एक नमूना मान सकते हैं। इसी प्रकार अन्य बुद्धकालीन गाँवों के बीच में एक साला (शाला) बनी हुई होती थी, जिसमें ग्रामीण जन ग्राम-हित के कार्यों पर विचार करने के लिये समय-समय पर एकत्र हुआ करते थे। कोसल देश के साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में इसी प्रकार हम उसके निवासियों को एक सभा के रूप में एकत्र देखते हैं।[४] हम देख ही चुके हैं कि नगरों के इसी प्रकार के स्थानीय शासन के कार्यों को निबटाने के लिये संस्थागार (सन्थागार) बने हुए थे, जहाँ नागरिक-गण सार्वजनिक कार्यों के लिये सभा के रूप में एकत्र होते थे।

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २९४।

२. बुद्ध-चरित २१।९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९९।

४. देखिये आगे कोसल राज्य का विवरण।

पञ्चशाल नामक ग्राम (पंचसालो गामो) मगध देश में था। एक बार भगवान् यहाँ भिक्षार्थ गये थे, परन्तु उन्हें भिक्षा नहीं मिली थी और वे रीता पात्र लेकर लौट आये थे। संयुत्त-निकाय के पिण्ड-सुत्त में इस बात का उल्लेख है।[१] मिलिन्दपञ्हो[२] में भी इस घटना का उल्लेख किया गया है।

सालिन्दिय नामक ग्राम का उल्लेख सुवण्णकक्कट जातक और सालिकेदार जातक में है। यह गाँव राजगृह के पूर्व (सुवण्णकक्कट जातक) या पूर्वोत्तर (सालिकेदार जातक) की ओर स्थित था। उपर्युक्त जातकों से हमें यह सूचना मिलती है कि इस गाँव में एक विशाल खेत १००० करीस (८००० एकड़) क्षेत्रफल का था।[३] कोसियगोत्त ब्राह्मण यहीं का निवासी था।

कलवाल गाम मगध राज्य मे एक गाँव था। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार आयुष्मान् महामोग्गल्लान यहाँ एक बार आलस्य में पड़ गये थे। भगवान् ने उन्हें प्रबोधित किया था और तदनन्तर उन्हे अभिज्ञा की प्राप्ति हुई थी।

मातुला मगध का एक गाँव था। यहाँ भगवान ने दीघ-निकाय के चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त का उपदेश दिया था।

गया का एक तीर्थ (घाट) के रूप में वर्णन मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त में है। यहाँ बाहुका, सुन्दरिका, सरस्सती (सरस्वती) और बाहुमती नदियों के साथ-साथ पयाग (प्रयाग), गया और अधिकक्का का भी उल्लेख किया गया है। जिन्हें तीर्थ ही माना जा सकता है। "बाहुका, अधिकक्का, गया और सुन्दरिका में। सरस्वती, प्रयाग तथा बाहुमती नदी में।...क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी ?" आचार्य बुद्धघोप ने कहा है कि गया एक घाट (तित्थ) और गाँव (गाम) दोनों ही था।[४] प्रतिवर्ष फाल्गुण (फग्गुण) मास के कृष्णपक्ष में गया में 'गयाफग्गुणी' नामक स्नान-घाट पर एक बड़ा मेला लगता था। एक

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ९८-९९।

२. पृष्ठ १५६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३. देखिये आगे चौथे परिच्छेद में बुद्ध-काल में कृषि की अवस्था का विवेचन भी।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०२।

बार इसी मेले में भगवान् बुद्ध ने सेनक थेर को बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया था।[1] गया में एक पुष्करिणी भी थी जो 'गया पोक्खरणी' कहलाती थी। बोधि-वृक्ष से गया तीर्थ तीन गावुत (करीब ६ मील) की दूरी पर था और वाराणसी से उसकी दूरी १५ योजन बताई गई है।[2] पालि साहित्य के इस गया-तीर्थ को हम आधुनिक 'विष्णुपाद' नामक मन्दिर के आसपास की भूमि से मिला सकते हैं जो बुद्ध-गया से लगभग सात मील की दूरी पर फल्गु नदी के बायें तट पर स्थित है। बुद्ध-गया से पृथक् करने के लिये इस स्थान को ब्रह्म-गया भी कहा जाता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की अपनी प्रथम यात्रा में भगवान् बुद्ध बोध-गया या उरुवेला से गया होते हुए ही वाराणसी गये थे।[3] इसिपतन मिगदाय में प्रथम वर्षावास करने के पश्चात् भगवान् क्रमशः वाराणसी और उरुवेला होते हुए गया के गयासीस पर्वत पर आये थे, जहाँ प्रसिद्ध आदित्तपरियाय-सुत्त का उपदेश दिया गया था। उसके बाद भगवान् राजगृह चले गये थे।[4] अंगुत्तर-निकाय के गया-सुत्त का उपदेश भी गया में दिया गया था।[5]

गयासीस पर्वत गया के समीप ही था। इसका आधुनिक नाम ब्रह्मयोनि पर्वत है।[6] यह पर्वत आधुनिक गया नगर के एक मील दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में करीब ४०० फ़ुट की ऊँचाई पर स्थित है। गयासीस पर्वत को महाभारत और पुराणों के गयाशिर, गयाशीर्ष या गयशिर से मिलाया गया है, जो ठीक ही है। आचार्य बुद्धघोष ने इस पर्वत का "गयासीस" नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि इसका पृष्ठ भाग "गया" अर्थात् गज (गय--गया) के सीस (सिर)

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८८।

२. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८७।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९।

४. वहीं, पृष्ठ ८४-९५।

५. गया के समीप अपरगया नामक स्थान का उल्लेख महावस्तु, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२४-३२५ में मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार भगवान् बुद्ध यहाँ गये थे।

६. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२४।

के समान था। "गजसीससदिसपिट्ठिपासानो।"[१] गयासीस पर ही देवदत्त ५०० नये प्रव्रजित भिक्षुओं को अपनी ओर फोड़कर ले गया था[२] और यहीं अजातशत्रु ने उसके लिये एक विहार बनवाया था और ५०० स्थालीपाक भोजन के प्रतिदिन भेजे जाते थे।[३]

गया के समीप टंकित मंच नामक स्थान का भी वर्णन है, जहाँ सूचिलोम यक्ष के भवन में भगवान् ने निवास किया था।[४] यहाँ उनका खर और सूचिलोम नामक दो यक्षों से संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के सूचिलोम-सुत्त में निहित है।[५]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक मार्ग वाराणसी से गया होता हुआ राजगृह तक जाता था। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान काल-शिला (जिसे उसने एक बड़ी वर्गाकार काली चट्टान कहकर पुकारा है और जहाँ एक बुद्धकालीन भिक्षु की आत्महत्या का वर्णन किया है, देखिये पीछे राजगृह का वर्णन) से चार योजन पश्चिम में चलकर गया में आया था और उसने इसे उस समय सूनी अवस्था में देखा था।[६] सातवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री यूआन चुआङने गया में एक हजार से अधिक ब्राह्मण-परिवारों को निवास करते देखा था।[७] (पाटलिपुत्र और गया के बीच

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८९; जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १४२; जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९६।

३. वहीं, पृष्ठ ४८०; जातक जिल्द, पहली, पृष्ठ १८५, ५०८।

४. सूचिलोम-सुत्त (सुत्त-निपात)।

५. महाकवि अश्वघोष ने इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा है, "गया में ऋषि (बुद्ध) ने टंकित ऋषियों को और खर और शूचीलोम नामक दो यक्षों को उपदेश दिया।" बुद्धचरित २१।२०; अश्वघोष के इस कथन से विदित होता है कि टंकित नामक ऋषियों के नाम पर ही 'टंकित मंच' नामक स्थान का यह नाम पड़ा था।

६. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२-५३।

७. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११०।

में स्थित) शीलभद्र विहार से ४० या ५० 'ली' दक्षिण-पश्चिम में चलकर, नैरंजना को पार करने के पश्चात्, यूआन् चुआङ गया (क-ये) में पहुँचा था।[1] गया नगर के ५ या ६ 'ली' दक्षिण-पश्चिम में उसने 'गया पर्वत' को देखा था। यह गया पर्वत वस्तुतः पालि साहित्य का 'गयासीस' पर्वत ही है। 'गयासीस' पर्वत की निरुक्ति यूआन् चुआङ ने पालि विवरण के अनुसार ही की है। ऊपर हम सारत्थप्पकासिनी के आधार पर देख चुके हैं कि गज (गय, गया) के सिर (सीस) के समान इस पर्वत के आकार के होने के कारण इसका यह नाम पड़ा था। यूआन् चुआङ ने भी इसी प्रकार इस नाम की व्याख्या की है, परन्तु एक दूसरी वैकल्पिक अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए उसने यह भी कहा है कि गय नामक ऋषि का निवास-स्थान होने के कारण भी इस पर्वत का यह नाम पड़ा।[2] महाकवि अश्वघोष ने भी नैरंजना नदी के तट पर स्थित आश्रम में श्रेयार्थी गौतम बोधिसत्व के आने की बात कहते हुए गया नगरी को राजर्षि गय के नाम से सम्बद्ध किया है।[3] गयासीस पर्वत के शिखर पर यूआन् चुआङ ने अशोक के द्वारा निर्मित एक पाषाण-स्तूप को भी देखा था जो उस स्थान की स्थिति को सूचित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध ने, महायान की परंपरा के अनुसार, रत्नमेघ-सूत्र का उपदेश दिया था।[4] 'गया पर्वत' के दक्षिण-पूर्व में यूआन् चुआङ ने उरुवेल कस्सप (उरुविल्व काश्यप) के जन्म-स्थान के समीप एक स्तूप को देखा था और उसके दक्षिण में गया काश्यप और नदी काश्यप के आश्रमों

---

१. ऊपर के समान।

२. वहीं, पृष्ठ १११।

३. भेजे गयस्य राजर्षेर्नगरीसंज्ञमाश्रमम्। बुद्धचरित १२।८९; इस तथ्य की तुलना वायु-पुराण (अध्याय १०५) के उस विवरण से की जा सकती है जिसके अनुसार गय नामक राजर्षि के यहाँ यज्ञ करने के कारण इस नगरी का नाम 'गया' पड़ा। इसी प्रकार महाभारत के वन-पर्व में भी कहा गया है कि गया में राजा गय ने यज्ञ किया था। कई पुराणों में गयासुर के नाम से भी गया तीर्थ को सम्बद्ध किया गया है।

४. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १११।

की स्थितियों को भी सूचित करते हुए दो अन्य स्तूपों को देखा था।[१] उपर्युक्त स्तूप उरुविल्व काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन जटिल साधु-बन्धुओं के आश्रमों के स्थानों पर बने हुए थे, जहाँ वे अग्नि-परिचरण करते हुए निवास करते थे और जहाँ भगवान् बुद्ध ने उन्हें वाराणसी से आकर, बुद्धत्व-प्राप्ति के प्रथम वर्ष में, बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया था।[२]

एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम मगध के दक्षिणागिरि जनपद में था। इस महत्वपूर्ण जनपद का विवरण पहले दे देना अधिक ठीक होगा। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि राजगृह को परिवृत करने वाले गिरि के दक्षिण में अवस्थित जनपद 'दक्षिणागिरि' कहलाता था। "दक्खिणागिरिमिव ति राजगहं परिवारेत्वा ठितस्स गिरिनो दक्खिणभागे जनपदो अत्थि।"[३] इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि दक्षिणागिरि जनपद राजगृह के दक्षिण में, उन पहाड़ियों के पार स्थित था जो राजगृह को घेरे हुए थीं। डा० मललसेकर ने शब्द-भ्रम या दिशा-भ्रम के कारण "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७२१ में यह लिख दिया है, "पहाड़ियों के उत्तर का देश दक्षिणागिरि कहलाता था।"[४] यहाँ उत्तर की जगह स्पष्टतः दक्षिण होना चाहिये। यह प्रसन्नता की बात है कि इसी "डिक्शनरी" में दूसरी जगह[५] उन्होंने ठीक बात लिख दी है, अर्थात् दक्षिणागिरि जनपद को राजगृह के दक्षिण में ही स्थित बताया है। भगवान् बुद्ध को दो बार राजगृह से दक्षिणागिरि जनपद जाते और फिर वहाँ से लौटकर राजगृह में वापिस आते हम विनय-पिटक में देखते हैं।[६] आरामदूसक जातक का उपदेश दक्षिणागिरि जनपद में ही

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. काश्यप-बन्धुओं की प्रव्रज्या के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर विस्तृत विवरण के लिये देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८९-९४।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २४२।

४. "The country to the north of the hills was known as Dakkhiṇāgiri."

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १०४९।

६. पृष्ठ १२०, २७९ (हिन्दी अनुवाद)।

दिया गया था। प्रथम संगीति के अवसर पर, जब उसका संगायन-कार्य चल रहा था या प्रायः समाप्त हो चुका था, तो हम आयुष्मान् पुराण नामक स्थविर को दक्षिणागिरि जनपद में विहार करते और फिर वहाँ से राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में आते देखते हैं।[1] श्रावस्ती से राजगृह जाने वाला मार्ग दक्षिणागिरि जनपद में होकर ही जाता था।

दक्षिणागिरि जनपद में ही एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम था। यद्यपि अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध को अपना ग्यारहवाँ वर्षावास नाला नामक ब्राह्मण ग्राम में (जिसका परिचय हम आगे देंगे) करते दिखाया गया है, परन्तु ई० जे० थॉमस और मललसेकर ने इस सम्बन्ध में एकनाला नाम का प्रयोग किया है,[2] जिसका अभिप्राय यही हो सकता है कि वे नाला और एकनाला नामों से एक ही गाँव का अभिप्राय समझते हैं। जैसा हम आगे देखेंगे, जहाँ तक बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्ध है, इन दोनों गाँवों को अलग-अलग मानना ही कदाचित् अधिक ठीक होगा। सम्भवतः बुद्धत्व-प्राप्ति के ग्यारहवे वर्ष में ही, जिसकी वर्षा को भगवान् ने नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में बिताया, भगवान् एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में भी गये, जो दक्षिणागिरि जनपद में था। इसी समय उनका कसि भारद्वाज नामक ब्राह्मण से संलाप हुआ जो सुत्त-निपात के कसिभारद्वाज-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के कसि-सुत्त में निहित है। एकनाला ब्राह्मण-ग्राम में दक्षिणागिरि नामक एक विहार भी था। यहीं भगवान् ने उस 'मगध खेत्त' को देखा था जिससे उन्हें उसी आकार के भिक्षु-वस्त्रों को बनवाने की कल्पना मिली थी।

एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के अतिरिक्त दक्षिणागिरि जनपद में, सम्भवतः एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के पास ही, वेलुकण्टक नामक एक बाँसों का वन था।[3] अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में बुद्ध की अग्र ध्यानी श्राविका उपासिका के रूप मे प्रशंसित उत्तरा नन्दमाता, जिन्हें धम्मपद की अट्ठकथा में वेलुकण्टकी नन्दमाता

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४५।

२. उद्धरणों के लिये देखिये दूसरे परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ६४।

और संयुत्त-निकाय के एकधीता-सुत्त में वेलुकण्डकिय नन्दमाता कहकर पुकारा गया है, वेलुकण्टक-निवासिनी ही थी। महाकवि अश्वघोष ने भी कहा है कि वेणुकण्टक में नन्द की माता को भगवान् बुद्ध ने प्रव्रजित किया था।[1]

यहाँ दक्खिणागिरि (दक्खिणगिरि भी पाठ) के सम्बन्ध में यह बात और कह देनी चाहिये कि पालि साहित्य में इसी नाम का प्रयोग दक्षिणापथ के एक जनपद के लिये भी किया गया है जिसकी राजधानी उज्जेनी बताई गई है। यहाँ अशोक उपराज के रूप में शासन करता था। वेदिस नगर इसी में था।[2] उज्जयिनी के दक्षिणागिरि विहार से ४०,००० भिक्षु लंका के अनुराधपुर महास्तूप के आधार-शिला रखने के महोत्सव में भाग लेने गये थे।[3] इस दक्षिणगिरि या दक्षिणागिरि जनपद से मगध के दक्षिण गिरि को पृथक् समझना चाहिये।

यष्टिवन-उद्यान के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए हम पहले देख चुके हैं कि उसकी आधुनिक स्थिति जेठियन है, जो राजगिर कस्बे से १३ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इस जेठियन से दक्षिण में 'दखिनाऊ' नामक पहाड़ी है। इसे ही नाम और रूप में बुद्धकालीन मगध राष्ट्र के 'दक्खिणागिरि' की आधुनिक स्थिति समझना चाहिये।

नाला नामक गाँव, जिसे भी एक ब्राह्मण-ग्राम कहकर पुकारा गया है, बोधि-वृक्ष के आसपास, कही उरुवेला और गया के बीच में, स्थित था। उपक आजीवक इस नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का ही निवासी था। जैसा हम पहले देख चुके है, वह भगवान् से उरुवेला और गया के बीच मार्ग में मिला था, जब भगवान् वहाँ होकर वाराणसी की ओर धर्मचक्र-प्रवर्तनार्थ जा रहे थे। उपक की पत्नी, अपने पति के पुनः प्रव्रजित हो जाने के बाद, खिन्नतापूर्वक कहती है, "मै इस नाला गाँव को छोड़ कर चली जाऊँगी, कौन अब इस नाला गाँव में रहेगा ?" "पक्कामिस्सं च नालातो कोध नालाय वच्छति।"[4] नाला नामक गाँव की स्थिति बोधि-वृक्ष के

---

१. बुद्ध-चरित २१।८।

२. देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १०४९।

३. महावंस २९।३५।

४. थेरीगाथा, गाथा २९४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

आसपास ही जान पड़ती है, अतः उसे दक्षिणागिरि जनपद में स्थित एकनाला गाँव से भिन्न गाँव मानना ही अधिक ठीक जान पड़ता है।

नाल, नालक या नालिका ग्राम राजगृह के समीप एक ब्राह्मण-ग्राम था। धर्मसेनापति सारिपुत्र का जन्मस्थान यही गाँव था और यहीं उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया था।[1] इसलिये इसे ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। संयुत्त-निकाय के निब्बाण-सुत्त में हम एक बार आयुष्मान् सारिपुत्र को अपनी जन्मभूमि इस नालक ग्राम में जाते और जम्बुखादक नामक परिव्राजक से धार्मिक संलाप करते देखते हैं।[2] इसी निकाय के चुन्द-सुत्त में हम उन्हें मगध के नाल गाम में बीमार पड़े देखते हैं।[3] यह नाल ग्राम उनकी जन्मभूमि नालक गाम ही था। महासुदस्सन जातक में, जिस गाँव में धर्मसेनापति का जन्म हुआ, उसे नाल गाम कहकर पुकारा गया है। इसलिये नाल और नालक दोनों ही नाम उस गाँव के थे, जिसमें धर्मसेनापति सारिपुत्र का जन्म और परिनिर्वाण हुआ। धर्मसेनापति सारिपुत्र का एक पूर्व नाम उपतिस्स (उपतिष्य) भी था। अतः उनके जन्म के गाँव को, विशेषतः अट्ठकथाओं में, कहीं-कहीं उपतिस्स-गाम या उपतिस्स-नगर भी कहा गया है।[4] धर्मसेनापति सारिपुत्र के बाल्यावस्था के मित्र स्थविर सुनाग नालक गाँव में ही एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। महागवच्छ नामक स्थविर का भी जन्मस्थान नालक गाँव ही था। इसी प्रकार रेवत खदिरवनिय और उपसेन वंगन्तपुत्त भी नालक ब्राह्मण-ग्राम के ही निवासी थे। नालक ब्राह्मण-ग्राम को आधुनिक सारीचक बड़गाँव से मिलाया गया है जो नालन्दा के समीप स्थित है। बिहार राज्य सरकार द्वारा संस्थापित नालन्दा पालि प्रतिष्ठान इसके अनतिदूर ही स्थित है।

महातित्थ (महातीर्थ) मगध का एक अन्य ग्राम था। यहाँ आर्य महाकाश्यप

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७२; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १०८।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५५९।

३. वहीं, पृष्ठ ६९२-६९३।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७२; थेरगाथा-अट्ठकथा जिल्द पहली, पृष्ठ १०८।

का जन्म हुआ था।[१] स्थविर महामोग्गल्लान के जन्म-स्थान कोलित ग्राम को धर्मसेनापति सारिपुत्र के जन्म-स्थान नाल या नालक ग्राम के अति समीप होना चाहिये, क्योंकि अट्ठकथाओं के विवरणानुसार दोनों के परिवारों में पीढ़ियों से मित्रता चली आ रही थी और बालक उपतिष्य (सारिपुत्र) और कोलित (महा-मोग्गल्लान) दोनों एक दूसरे के साथ खेलते-कूदते और रहते-सहते दिखाये गये हैं। जिस प्रकार सारिपुत्र के बाल्यावस्था के नाम उपतिष्य पर उनके ग्राम नाल या नालक का नाम उपतिष्य-ग्राम है, उसी प्रकार महामौद्गल्यायन के बाल्यावस्था के नाम कोलित (कोलिक) के आधार पर उनके ग्राम का नाम कोलित (कोलिक) ग्राम है। इन दोनों गाँवों की स्थिति के सम्बन्ध में यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर हम आगे नालन्दा के विवरण-प्रसंग में कुछ कहेंगे।

नालन्दा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक समृद्ध कस्बा था और यहाँ बुद्ध-धर्म के अनुयायी काफी संख्या में थे। केवट्ट नामक गृहपति भगवान् बुद्ध से कहता है, "भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत घनी बस्ती वाली है। यहाँ के मनुष्य आप के प्रति बहुत श्रद्धालु हैं।" नालन्दा की समृद्धि के सम्बन्ध में साक्ष्य मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में भी मिलता है। भगवान् बुद्ध और उपालि-गृहपति के संलाप में आता है, "तो गृहपति! क्या यह नालन्दा सुख-सम्पत्ति-युक्त, बहुत जनों वाली, मनुष्यों से भरी है।" "हाँ, भन्ते! यह ऐसी ही है।" नालन्दा में प्रावारिक आम्रवन नामक एक आम्रवन था, जिसे नालन्दा-निवासी सेठ प्रावारिक ने बनवाकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था। कौशाम्बी के विवरण में हम देखेंगे कि वहाँ भी एक प्रावारिक आम्रवन (पावारिकम्बवन) या प्रावारिकाराम (पावारिकाराम) था, जिसे वहाँ के सेठ प्रावारिक ने बनवाया था। यह नालन्दा का सेठ कौशाम्बी के अपने ही नाम के सेठ से भिन्न व्यक्ति था। दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी)[२] में इस नालन्दावासी पावारिक सेठ के लिये "दुस्सपावारिक" नाम का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रकट होता है

---

१. मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १९; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४१।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७३; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५२।

कि यह कपड़े का व्यापारी था। कौशाम्बी के सेठ को केवल पावारिक नाम से पुकारा गया है। नालन्दा में आते समय भगवान् अक्सर प्रावारिक आम्रवन में ही ठहरते थे। दीघ-निकाय के केवट्ट-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। इसी प्रकार इसी निकाय के सम्पसादनिय-सुत्त का भी। भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में जब राजगृह से कुसिनारा के लिये गये तो मार्ग में सर्वप्रथम वे अम्बलट्ठिका में ठहरे थे और फिर उसके बाद नालन्दा में। इस समय भी भगवान् ने नालन्दा के पावारिक आम्रवन में उपदेश दिया था, जिसका वर्णन दीघ-निकाय के महापरि-निब्बाण-सुत्त में है। नालन्दा से आगे चलकर भगवान् पाटलिपुत्र गये थे। मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त से हमें सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् जब नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में विहार कर रहे थे, तो उसी समय निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) भी नालन्दा में ठहरे हुए थे। इससे प्रकट होता है कि बुद्ध-काल में नालन्दा निर्ग्रन्थ साधुओं का भी एक प्रमुख स्थान था और उनके काफी अनुयायी वहाँ थे। भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में धर्मसेनापति का प्रसिद्ध उद्‌गार, जो महापरिनिब्बाण-सुत्त में निहित है, नालन्दा में ही किया गया था, भले ही उसका समय वह न रहा हो जो महापरिनिब्बाण-सुत्त से जान पड़ता है। संयुत्त-निकाय के पच्छाभूमक-सुत्त, देसना-सुत्त, संख-सुत्त और दो नालन्द-सुत्तों का उपदेश भगवान् ने नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में ही दिया था। यहीं असिबन्धकपुत्र ग्रामणी उनसे मिलने आया था।

सुमंगलविलासिनी[1] में राजगृह से नालन्दा की दूरी एक योजन बताई गई है। "राजगहतो पन नालन्दा योजनमेव।" आज भी नालन्दा राजगृह से उत्तर-पश्चिम दिशा में लगभग ८ मील की दूरी पर ही स्थित है। राजगृह और नालन्दा के बीच में बहुपुत्र या बहुपुत्रक चैत्य (बहुपुत्त या बहुपुत्तक चेतिय) नामक एक चैत्य या चौरा भी था। यहीं एक बर्गद के पेड़ (बहुपुत्तक निग्रोध) के नीचे प्रथम बार स्थविर महाकाश्यप ने शिक्षमाण होते समय भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे। भगवान् ने आर्य महाकाश्यप के साथ चीवर-परिवर्तन भी इस स्थान के समीप

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८७३।

ही किया था।[१] बहुपुत्रक चैत्य राजगृह से तीन 'गावुत' या पौन योजन की दूरी पर था। इसका अर्थ यह है कि यह नालन्दा से एक गावुत या चौथाई योजन (करीब दो मील) की दूरी पर स्थित था। बहुपुत्रक नामक एक अन्य चैत्य वैशाली में भी था, उसके उत्तर द्वार के समीप, जिसका उल्लेख हम वज्जि जनपद का विवरण देते समय करेंगे।

संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में आया है, "एक समय भगवान् कोसल देश में चारिका करते. . .जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे।" इससे स्पष्ट है कि यह नालन्दा, जिसका इस सुत्त में उल्लेख है, कोसल देश में था और मगध देश के उस प्रसिद्ध नालन्दा से भिन्न था जो राजगृह और पाटलिगाम के बीच स्थित था। डा० लाहा ने कोसल देश के इस नालन्दा की पृथक् स्थिति को स्वीकार किया है[२] और डा० मललसेकर[३] ने भी, परन्तु डा० मललसेकर ने 'नालन्दा' का केवल मगध के नगर के रूप में ही वर्णन दिया है और उसी में बिना अलग दिखाये उस वर्णन को भी मिला दिया है जो संयुत्त-निकाय में कोसल देश के नालन्दा के सम्बन्ध में दिया गया है।[४] दोनों के अन्दर यहाँ कोई भेद नही किया गया, जिसे ठीक नही कहा जा सकता।

नालन्दा की यात्रा चीनी यात्री फा-ह्यान ने पाँचवी शताब्दी ईसवी में की थी। उसने नालन्दा को 'नलो' कहकर पुकारा है और "अलग स्थित पहाड़ी" (जिसे कनिंघम ने गिर्यक् से मिलाया है) से उसकी दूरी एक योजन बताई है। इस विवरण से आधुनिक बड़गाँव की स्थिति बिलकुल मिल जाती है, जिसे कनिंघम ने नालन्दा की आधुनिक स्थिति माना है।[५] फा-ह्यान के मतानुसार नालन्दा ही धर्मसेनापति

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २८३-२८५; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२८; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४५; मिलाइये बुद्ध-चरित १७।२४-२५ भी।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४५।

३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६९६।

४. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६-५७।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७।

सारिपुत्र का जन्म-स्थान था। इसका अर्थ यह है कि उस समय तक नाल या नालक ग्राम और नालन्दा दोनों मिला दिये गये थे, या एक समझे जाते थे। यूआन् चुआङ ने भी नालन्दा (न-लन्-तो) की यात्रा की थी और उसने नालन्दा विहार को राहुल-स्तूप से करीब ३० 'ली' (५ मील) दूर बताया है।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यूआन् चुआङ ने सारिपुत्र के जन्मस्थान का नाम काल पिनाक (क-लो-पि-न-क) दिया है और उसे कोलिक (कोउ-लि-क) नामक स्थान से, जो नालन्दा संघाराम के ८ या ९ 'ली' (करीब डेढ़ मील या उससे कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम में था और जिसे इस चीनी यात्री ने महामौद्गल्यायन (कोलित—कोलिक) का जन्म-स्थान माना है, तीन या चार 'ली' (करीब आधा मील या उससे कुछ अधिक) पूर्व में बताया है।[2] इस प्रकार यूआन् चुआङ के अनुसार हमें नालक गाम (काल पिनाक) और कोलित (कोलिक) ग्राम की स्थितियों को उपर्युक्त प्रकार से नालन्दा संघाराम के समीप मानना पड़ेगा, जिसे हम कदाचित् पालि विवरण को भी ध्यान में रखते हुए प्रामाणिक मान सकते हैं। 'नालन्दा' नाम की अनेक व्याख्याएँ यूआन् चुआङ ने दी हैं, जिनमें एक यह है कि यहाँ बोधिसत्व एक बार राजा बन कर उत्पन्न हुए थे। वे बड़े दानी थे, दान देते कभी नहीं अघाते थे, इसलिये उन्हे 'नालन्दा' (कभी अलं न देने वाला, देने में कभी तृप्ति न मानने वाला) का विशेषण मिला था। इसी विशेषण का प्रयोग बाद में इस नगर के लिये किया जाने लगा जो उनकी राजधानी था।[3] अपने नाम के सार्थक 'नालन्दा' संघाराम और लगभग चौथी शताब्दी ईसवी में संस्थापित उसके विश्वविद्यालय के आचार्यों का इतिहास अत्यन्त गौरववान् है और यूआन् चुआङ ने भी उस पर विस्तार से लिखा है, परन्तु पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं से ही सीमित होने के कारण हम इस प्राचीन भारत के अद्वितीय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में, जिसका उत्कर्ष बुद्ध के काल के बाद हुआ, यहाँ कुछ अधिक न कह सकेंगे।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६४।

२. वहीं, पृष्ठ १७१।

३. वहीं, पृष्ठ १६४।

पाटलिगाम भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिपुत्त का नाम था। उस समय यह एक गाँव ही था। जब भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में पाटलिगाम पहुँचे उस समय भावी विशाल नगर पाटलिपुत्त (पटिलिपुत्र) की नींव रक्खी जा रही थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें पता चलता है कि मगधराज अजातशत्रु के मन्त्री सुनीध और वस्सकार उस समय नगर को बसा रहे थे, क्योंकि राजा अजातशत्रु वज्जियों को पराजित करने का प्रयत्न कर रहा था। इस समय भगवान् ने पाटलिगाम की भावी उन्नति की भविष्यवाणी करते हुए आनन्द से कहा था कि भविष्य में यह नगर वाणिज्य और व्यवसाय का भारी केन्द्र होगा। "आनन्द! जितने भी आर्य-आयतन (आर्यों के निवास) हैं, जितने भी वणिक् पथ (व्यापार-मार्ग) हैं, उनमें यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (माल की गाँठ जहाँ खोली जाय) अग्र (प्रधान) नगर होगा।"[1] इसी समय पाटलिग्राम में 'गौतम द्वार' और 'गौतम घाट' की स्थापना हुई थी, यह हम महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखते है।[2] उपर्युक्त सब बातों की सूचना हमें उदान मे भी मिलती है।[3] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिग्राम के लोगों का एक आवसथागार (अतिथिशाला या विश्रामगृह) था जहाँ भगवान् ने अपनी अंतिम यात्रा मे सन्ध्या समय गृहस्थ लोगों को शील के सम्बन्ध में उपदेश दिया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही पाटलिपुत्र में कुक्कुटाराम नामक विहार का भी निर्माण हो गया था। आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि कुक्कुट सेट्ठि ने इसे बनवाया था।[4] इसी नाम का एक विहार कौशाम्बी में भी था, यह हम वत्स राज्य के प्रसंग में देखेंगे। मज्झिम-निकाय के अट्ठकनागर-सुत्तन्त में पाटलिपुत्र

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२५; महाकवि अश्वघोष ने भी इस भविष्यवाणी का उल्लेख किया है। "यह नगर संसार भर में सर्वश्रेष्ठ होगा।" बुद्धचरित २२।४।

२. महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (२२।६, ११) में इन स्मारकों का उल्लेख किया है।

३. पृष्ठ ११७-१२२ (हिन्दी अनुवाद)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७१।

के कुक्कुटाराम का उल्लेख है। यहाँ अट्ठकनगर का दशम नामक गृहपति आनन्द का पता लगाने आया था। यही बात अंगुत्तर-निकाय[1] में भी वर्णित है। इसी आराम में आयुष्मान् उदयन की प्रेरणा से घोटमुख नामक ब्राह्मण ने बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ समय बाद एक उपस्थान-शाला (सभा-गृह) बनवाई, जो उसी के नाम पर घोटमुखी उपस्थान-शाला कहलाई।[2] पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में आयुष्मान् आनन्द और भद्र को धार्मिक संलाप करते हम संयुत्त-निकाय के पठम, दुतिय तथा ततिय कुक्कुटाराम सुत्त में तथा इसी निकाय के सील-सुत्त, ठिति-सुत्त तथा परिहान-सुत्त में देखते हैं। अंगुत्तर-निकाय[3] के वर्णनानुसार स्थविर नारद ने भी पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में विहार किया था। वर्तमान 'कुर्किहार' नामक गाँव को, जो 'तप्पो' से करीब १० मील दूर है, 'कुक्कुटाराम' की स्थिति माना जा सकता है। समन्तपासादिका में तृतीय संगीति के विवरण से मालूम पड़ता है कि पाटलिपुत्र के दक्षिण-द्वार से पूर्व-द्वार को जाते हुए रास्ते में राजांगण था। इसी अट्ठकथा से हमें यह सूचना मिलती है कि पाटलिपुत्र के चारों दरवाजों की चुंगी से राजा को ४ लाख कहापण की आय होती थी।[4] सम्भवतः अजातशत्रु के पुत्र और उत्तराधिकारी उदायि भद्र (उदय भद्र) के राज्य-काल में अथवा निश्चित रूप से शिशुनाग के पुत्र कालाशोक के समय में पाटलिपुत्र ने राजगृह के स्थान पर मगध की राजधानी का पद ले लिया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिगाम का पाटलिपुत्त नाम प्रचलित हो गया था और उसका एक नाम कुसुमपुर भी था, जैसा कि थेरीगाथा की इस पंक्ति से प्रकट होता है, "नगरम्हि कुसुमनामे पाटलिपुत्तम्हि पठविया।"[5] यूआन् चुआङ ने साक्ष्य दिया

---

१. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।

२. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम।२।५।४)।

३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७।

४. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ५२।

५. थेरीगाथा, गाथा ४०० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये महावंस १८।६८ (हिन्दी अनुवाद)।

है कि इस नगर का पहले नाम कुसुमपुर ही था और बाद में पाटलिपुत्र हुआ।[1] एक मनोरंजक कथा भी पाटलिपुत्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यूआन् चुआङ ने दी है, जिसमें मुख्य भाव यही है कि पाटलि (गुलाब) नामक पुष्प का पेड़ इस नगर के बसाने की प्रेरणा का आधार बना।[2] पाटलिगाम या पाटलिपुत्त का कुसुमपुर के ही समान एक अन्य नाम पुप्फपुर (पुष्पपुर) भी दिया गया है।[3] अशोक के काल में पाटलिपुत्र में अशोकाराम नामक विहार की स्थापना अशोक राजा के द्वारा हुई, जिसके निर्माण में तीन वर्ष लगे और जिसे इन्द्रगुप्त नामक स्थविर की देखरेख में बनवाया गया।[4] समन्तपासादिका[5] और महावंस[6] के अनुसार तृतीय धर्म-संगीति की कार्यवाही पाटलिपुत्त के इसी आराम में हुई। मिलिन्दपञ्हो में भी अशोकाराम का उल्लेख है और उसके वर्णन से विदित होता है कि पाटलिपुत्र के समीप दो सड़कों के निकलने की एक जगह से एक मार्ग अशोकाराम को जाता था।[7] 'महावंस'[8] में अशोकाराम में स्थित एक जलाशय का भी उल्लेख है। मललसेकर

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

२. पाटलि पुष्प के पौधे को वधू बना कर किस प्रकार कुछ विनोदी पुरुषों ने अपने एक साथी का विवाह किया, जो एक मनोरंजक रूप से उसके स्थान पर पाटलिपुत्र नगर बसाये जाने का कारण बना, इसके विवरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

३ महावंस ४।३१; १८।८ (हिन्दी अनुवाद)

४. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४८-४९; महावंस ५।८०, १६३, १७४ (हिन्दी अनुवाद)।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ ४८।

६. ५।२७५-२७६ (हिन्दी अनुवाद)

७. "अथ खो . . . पाटलिपुत्तस्स अविदूरे द्वेधापथे ठत्वा आयस्मतं नागसेनं एतदवोच-अथ खो तात नागसेन असोकारामस्स मग्गो।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ १८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

८. ५।१६३ (हिन्दी अनुवाद)।

का कहना है कि सम्भवतः अशोकाराम का निर्माण कुक्कुटाराम की स्थिति पर ही हुआ था।[1] उनका यह कहना इस बात पर आधारित है कि यूआन् चुआङ ने कुक्कुटाराम को प्राचीन पाटलिपुत्र नगर के दक्षिण-पूर्व में देखा था और उसे अशोक द्वारा निर्मित बताया है।[2] इससे मललसेकर ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि अशोक के समय में कुक्कुटाराम और अशोकाराम वस्तुतः एक ही विहार के दो नाम थे और यूआन् चुआङ द्वारा निर्दिष्ट कुक्कुटाराम वस्तुतः अशोकाराम ही था।[3] वर्तमान कुर्किहार नामक गाँव को, जो 'तप्पो' से करीब १० मील दूर है, कुक्कुटाराम की स्थिति माना जा सकता है, यह हम पहले कह चुके हैं। यहाँ अनेक महत्वपूर्ण भग्नावशेष भी मिले है।

बुद्ध-काल में पाटलिपुत्त उस मार्ग पर पड़ता था जो राजगृह से श्रावस्ती को जाता था। पाटलिपुत्र पर इस मार्ग में गंगा को पार करना पड़ता था। इसी प्रकार पाटलिपुत्र उस मार्ग पर भी एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला से चलकर क्रमशः इन्दपत्त, मथुरा, वेरंजा, सोरेय्य, कण्णकुज्ज, पयागपतिट्ठान, वाराणसी, पाटलिपुत्र और राजगृह होता हुआ ताम्रलिप्ति तक जाता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के द्वारा भी ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था तथा माल का परिवहन भी होता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के मार्ग द्वारा ही भिक्षुणी सघमित्रा अशोक-काल में ताम्रलिप्ति गई थी, जहाँ से लंका के लिये समुद्री मार्ग द्वारा नावें मिलती थीं। देवानं पिय तिस्स के दूत भी ताम्रलिप्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग से नावों में बैठकर आये थे और उसी मार्ग से लौटे थे। पाटलिपुत्र से स्थलीय मार्ग भी ताम्रलिप्ति तक जाता था। गंगा नदी के द्वारा वाराणसी और सहजाति तक पाटलिपुत्र के व्यापारियों तथा यात्रियों का आवागमन होता था। वैशालिक भिक्षु नावों में बैठकर पाटलिपुत्र होते हुए सहजाति तक गये थे। इन सब दृष्टियों से भगवान् बुद्ध की पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी सर्वथा उपयुक्त थी और उत्तरकालीन इतिहास ने उसे सत्य प्रमाणित किया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१५।
२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९५।
३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१५।

चीनी यात्री फा-ह्यान और यूआन् चुआङ दोनों ने क्रमशः पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में पाटलिपुत्र की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने यहाँ एक अशोक-स्तूप और उसके समीप हीनयान सम्प्रदाय का एक विहार देखा था।[1] यूआन् चुआङ ने इस नगर को गंगा नदी के दक्षिण में देखा था और उसका घेरा उसने ७० 'ली' बताया है।[2] मेगेस्थनीज़ को पाटलिपुत्र पेलीबोथ्रा और तोलेमी को पेलिम्बोथ्रा के रूप में विदित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल तक ही सीमित होने के कारण हम यहाँ इन विवरणों की समीक्षा में अपने विषय-क्षेत्र की अनुरक्षा करते हुए नहीं जा सकते।

दीघलम्बिक नामक एक गाँव भी मगध में था। यहाँ एक अरण्यकुटिका में बुद्ध ने निवास किया था। इसी प्रकार दीघराजि नामक एक अन्य गाँव भी था। यहाँ 'संसार मोचक' नामक सम्प्रदायानुवर्ती लोग काफी संख्या में रहते थे।

मगध के समान कोसल राज्य का भी विस्तार पालि-विवरणों में ३०० योजन बताया गया है। अंग-मगध के समान काशी-कोसल में भी ८०,००० गाँव थे और जिस प्रकार राजगृह को अंग-मगध की आमदनी का मुख कहा गया है, उसी प्रकार श्रावस्ती को काशी-कोसल के सम्बन्ध में कहा गया है।[3] जिस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल का स्वतंत्र अंग राष्ट्र बुद्ध-काल में मगध राज्य का एक अंग हो गया था, उसी प्रकार काशी जनपद, जो बुद्ध-पूर्व काल का सम्भवतः सबसे अधिक प्रभावशाली जनपद था, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, बल्कि उसके कुछ पूर्व से, कोसल राज्य की अधीनता में आ गया था। यह भी एक आश्चर्यजनक रूप से समान बात है कि जिस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल में अंग को कभी-कभी मगध से अधिक सबल राष्ट्र बताया गया है और अंग के द्वारा उसकी विजय भी दिखाई गई है, उसी प्रकार बुद्ध-

---

१. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ७७-७८।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, पद-संकेत २; १९९, २००, २०१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।

पूर्व काल में काशी जनपद की समृद्धि कोसल जनपद से अधिक थी, बल्कि काशी की तुलना में कोसल जनपद प्रायः दरिद्र ही था, ऐसा भी कहा गया है।[1] परन्तु बाद में स्थिति बदल गई। कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय में ही काशी जनपद कोसल राज्य के अधिकार में आ गया था। तभी उसके लिये काशी गाँव को अपनी पुत्री (प्रसेनजित् की बूआ) कोसला देवी को, जिसका विवाह उसने मगधराज बिम्बिसार से किया था, स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये देना सम्भव हो सका था। प्रसेनजित् तो निश्चित रूप से कोसल के समान काशी जनपद का भी स्वामी माना जाता था। काशी-कोसल उसके राज्य में मिलकर एक हो गये थे। दीघ-निकाय के लोहिच्च-सुत्त में भगवान् बुद्ध लोहिच्च ब्राह्मण से पूछते हैं, "लोहिच्च ! तो क्या समझते हो राजा प्रसेनजित् कोसल और काशी का स्वामी है कि नहीं !" "हाँ है, हे गौतम !" आगे इसी सुत्त में आया है कि राजा प्रसेनजित् काशी और कोसल राज्यों की आय का अपने आश्रितों के सहित उपभोग करता है। मज्झिम-निकाय के पियजातिक-सुत्तन्त में भी हम स्वयं प्रसेनजित् को यह कहते देखते हैं कि काशी और कोसल के लोग उसे प्रिय हैं और उनके संकट से उसे दु.ख होगा, क्योंकि उनके कारण ही तो वह जीवन में इतना सुख भोग कर रहा है।काशी के अलावा शाक्य गणतन्त्र भी, आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र होते हुए, कोसल राज्य के अधीन ही था। सुत्त-निपात के पब्बज्जा-सुत्त में शाक्यकुमार ने अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद राजगृह के पाण्डव पर्वत पर राजा बिम्बिसार के प्रति अपना जो परिचय दिया, उसमें उन्होंने यही कहा कि "जन्म से शाक्य (साकिया नाम जातिया) और कोसल देश में रहनेवाले (कोसलेसु निकेतिनो), एक राजा हैं, जिनके कुल से मैं प्रव्रजित हुआ हूं।" इससे शाक्यों का कोसल

---

१. "भिक्षुओ ! भूत काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त नामक काशिराज था। वह महाधनी, महाभोगवान्, महासैन्य-युक्त, महावाहन-युक्त, महाराज्य-युक्त और भरे कोष-कोष्ठागार वाला था। उस समय दीघित नामक कोसल-राज था। वह दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग, अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोड़े राज्य वाला और अपरिपूर्ण कोष-कोष्ठागार वाला था।" विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५।

देश के अधीन माना जाना सिद्ध होता है। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त में स्वयं भगवान् बुद्ध ने कहा है, "शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित् के अधीन हैं।" इस प्रकार सभी शाक्य लोगों को कोसलदेशवासी या कोसलक कहा जा सकता था। प्रसेनजित् इसी बात का अनुभव कर प्रसन्न हुआ करता था कि "भगवान् भी कोसलक हैं, मैं भी कोसलक हूँ।[1] भद्दसाल जातक से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस समय शाक्य कोसल राज्य के अधीन थे। अंगुत्तर-निकाय के केसपुत्तिय-सुत्त में कालामों के निगम केसपुत्त को कोसल देश में स्थित बताया गया हैं। इससे यह प्रकट होता है कि कालाम क्षत्रियों का गणतन्त्र भी कोसल राज्य के अधीन था। उत्तर पञ्चाल और आलवी जनपद पर डा० विमलाचरण लाहा ने कोसल राज्य के अधिकार की बात कही है।[2] परन्तु पालि विवरणों से इसे स्पष्ट समर्थन प्राप्त नही होता। संयुत्त-निकाय के पंचराज-सुत्त मे 'प्रसेनजित्-प्रमुख पाँच राजाओं' (पञ्चराजानो पसेनदि-पमुखा) का उल्लेख है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि कोसलराज प्रसेनजित् पाँच राजाओं का मुखिया था। इन पाँच राजाओं के नाम हमें उपर्युक्त सुत्त में नही मिलते। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का अनुमान है कि ये पाँच राजा इस प्रकार थे। (१) काशिराज, जो प्रसेनजित् का सगा भाई था, (२) सेतव्या का पायासि राजन्य, जिसका उल्लेख दीघ-निकाय के पायासि-सुत्तन्त मे है, (३) कपिलवस्तु का शाक्य राजा, (४) देवदह का राजा और (५) केसपुत्त के कालामों का राजा।[3] प्रसेनजित् का सहपाठी बन्धुल मल्ल उसका सेनापति था और उसके बाद बन्धुल मल्ल का भानजा दीघ कारायण (दीघ चारायण) प्रसेनजित् का सेनापति बना, इससे डा० रायचौधरी ने अनुमान लगाया है कि इन लोगों ने मल्ल राष्ट्र पर भी प्रसेनजित् के प्रभाव को

---

१. धम्मचेतिय-सुत्तन्त (मज्झिम २।४।९)।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४३।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १५५।

स्थापित रखने में सहायता की होगी।[1] भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय तक हम पावा और कुसिनारा दोनों जगहों के मल्लों को पूर्ण स्वतन्त्र और स्वाभिमानी पाते हैं, जैसा महापरिनिब्बाण-सुत्त में उनके उल्लेख से स्पष्ट विदित है। बाद में अवश्य उनका अन्तर्भाव कोसल देश के साथ ही मगध राज्य में हो गया। बुद्ध-काल में कोसल देश की सीमा उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में सई (सुन्दरिका) या अधिक से अधिक गंगा नदी तक थी। पूर्व में उसका विस्तार सम्भवतः अचिरवती (रापती) नदी तक था और पश्चिम में उसकी सीमा गोमती नदी के द्वारा पञ्चाल से विभक्त थी। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने कोसल राज्य की सीमाओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि पूर्व में उसकी सीमा सदानीरा (गण्डक) नदी के द्वारा विदेह से विभक्त थी।[2] यह कहना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि कोसल और विदेह के बीच में तो कोसल देश की ओर से प्रारम्भ करके क्रमशः मल्ल और वज्जियों के प्रभावशाली गणराज्य थे।

कोसल राज्य के पूर्व या दक्षिण-पूर्व में मगध और पश्चिम में पहले पंचाल और फिर कुरु जनपद थे। उसके उत्तर-पूर्व में मल्ल और वज्जि राष्ट्र थे और दक्षिण में चेदि और वंस राष्ट्र। इन सब पड़ोसियों में वस्तुतः दो ही पड़ोसी पर्याप्त शक्तिशाली थे जो कोसल देश के न केवल प्रतिद्वन्द्वी थे, बल्कि जिनके आक्रमण का भी उसे सदा भय रहता था। वे दो पड़ोसी थे मगध और वज्जि-संघ। कोसलराज प्रसेनजित् जब डाकू अंगुलिमाल को पकड़ने के लिये काफी दौड़धूप कर रहा था, तो उस समय भगवान् बुद्ध ने उससे पूछा था, "महाराज ! क्या तुम पर राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार बिगड़ा है या वैशालिक लिच्छवि ?"[3]

कोसल देश की राजधानी भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सावत्थि (श्रावस्ती) थी। यह नगर, जैसा हमें दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त से मालूम होता है, बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों में माना जाता था। आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार ५७ लाख परिवार उस समय श्रावस्ती में रहते

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९९।
२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ७७, १९९।
३. अंगुलिमाल-सुत्तन्त (मज्झिम-२।४।६)।

थे और उसकी आबादी १८ करोड़ थी।[1] श्रावस्ती एक समृद्ध, जनाकीर्ण और व्यापारिक महत्व वाली नगरी थी। चूँकि यहाँ मनुष्यों के उपभोग-परिभोग की सब वस्तुएँ सुलभ थीं, इसलिये उसका नाम श्रावस्ती पड़ा था। "यं किं च मनुस्सानं उपभोग-परिभोगं सब्बं एत्थ अत्थीति सावत्थि।"[2] एक अन्य किंवदन्ती का भी उल्लेख इस नगर के नामकरण के सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने किया है। वह यह है कि एक बार काफिले वालों ने यहाँ आकर पूछा कि यहाँ क्या सामान है? (किं भण्डं अत्थि)। इसके उत्तर में उनसे कहा गया "सब कुछ है" (सब्बं अत्थीति)। इसी उत्तर के आधार पर, आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार, इस नगरी का नाम "सावत्थि" पड़ा। "सब्बं अत्थीति वचनमुपादाय सावत्थि।"[3] एक तीसरी अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने यह भी कहा है कि पूर्व काल में सवत्थ नामक ऋषि के यहाँ निवास करने के कारण इस नगरी का यह नाम पड़ा।[4] श्रावस्ती अचिरवती नदी के किनारे बसी हुई थी। राजप्रासाद भी इस नदी के समीप ही था।

बुद्ध-धर्म के प्रचार की दृष्टि से श्रावस्ती का भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। प्रथम चार निकायों के ८७१ सुत्तों का उपदेश अकेले श्रावस्ती में दिया गया, जिनमें से ८४४ जेतवन में उपदिष्ट किये गये, २३ पुब्बाराम में, और ४ श्रावस्ती के आसपास स्थानों में। जिन कुल ८७१ सुत्तों का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती में दिया, उनमें से ६ सुत्त दीघ-निकाय के हैं, ७५ मज्झिम-निकाय के, ७३६ संयुत्त-निकाय के और ५४ अंगुत्तर-निकाय के। इनका नामोल्लेख करना तो यहाँ नितान्त असम्भव ही होगा। इनके अतिरिक्त जातक की ४१६ कहानियों का उपदेश भी अकेले श्रावस्ती में दिया गया। कितना बड़ा प्रचार-केन्द्र श्रावस्ती बुद्ध-धर्म का भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही बन गया था, यह इन उपदिष्ट सुत्तों और जातक-कथाओं की संख्या से भली प्रकार जाना जा सकता है।

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६३६।

२, ३, ४. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ५९; विष्णु-पुराण (अध्याय २) के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय राजा श्रावस्त या श्रावस्तक ने इसे बसाया था। अन्य कई पुराणों में भी यही बात कही गई है।

श्रावस्ती के अनेक पुरुष और स्त्री भगवान् बुद्ध के प्रभाव मे आये। कंखा रेवत, वक्कलि, सुभूति, अजित, कुंडधान, वंगीस, स्वागत, मोघराज, सोभित आदि भिक्षु किसी न किसी प्रकार श्रावस्ती से सम्बन्धित रहे थे। इसी प्रकार महिलाओं में महोपासिका विशाखा मृगारमाता, उत्पलवर्णा, सकुला, कृशा गौतमी, सोणा और पटाचारा आदि के नाम लिये जा सकते है। जानुस्सोणि ब्राह्मण भी श्रावस्ती में निवास करता था। अनाथपिण्डिक के अलावा महासुवण्ण जैसे कई महाधनी सेठों के भी नाम लिये जा सकते है, जो श्रावस्ती मे निवास करते थे। स्थविर अंगुलिमाल की प्रव्रज्या श्रावस्ती मे ही हुई थी।[1]

श्रावस्ती बुद्धकालीन भारत की एक बडी समृद्ध नगरी थी। वह उस समय के सब महानगरो से व्यापारिक मार्गों के द्वारा जुडी हुई थी। श्रावस्ती से राजगृह जाने वाला मार्ग बुद्ध-काल मे अति प्रसिद्ध और सुविदित मार्ग था, जिससे यात्रियो का काफी आवागमन होता था। भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार मे गणक मोग्गल्लान नामक ब्राह्मण से सलाप करते हुए उससे पूछते है, "ब्राह्मण ! राजगृह जाने वाले मार्ग से तो तुम सुपरिचित हो न ?" "हाँ, भन्ते ! मै राजगृह जाने वाले मार्ग से सुपरिचित हूँ।"[2] इस मार्ग पर पडने वाले स्थान श्रावस्ती से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, सेतव्या, साकेत, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली और राजगृह। बौद्ध सस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' मे भी श्रावस्ती से राज-गृह जाने वाले मार्ग का उल्लेख है और कहा गया है कि एक बार भगवान् बुद्ध अपने शिष्यो के सहित जब इसी मार्ग से यात्रा कर रहे थे तो उन्होने श्रावस्ती के कुछ व्यापारियो को छह बार डाकुओ के चगुल से बचाया था। इसी ग्रन्थ मे यह भी कहा

---

१. अंगुलिमाल-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।६); परन्तु महाकवि अश्वघोष के अनुसार सुह्म जनपद में अंगुलिमाल की प्रव्रज्या हुई। उन्होंने लिखा है, "सुह्मों के बीच भगवान् ने दिव्य शक्ति (ऋद्धि) के प्रभाव से अंगुलिमाल ब्राह्मण को विनीत किया, जो सौदास के समान क्रूर था।" बुद्ध-चरित २१।१३। पालि विवरण ही निश्चयतः ठीक जान पड़ता है, क्योंकि चीनी यात्रियों के विवरण का भी समर्थन उसे प्राप्त है।

२. गणक मोग्गल्लान सुत्तन्त (मज्झिम० ३।१।७)।

गया है कि श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले यात्रियों को मार्ग मे गंगा नदी पार करनी पड़ती थी। नावों का प्रबन्ध वैशाली के लिच्छवियों या मगधराज अजातशत्रु की ओर से किया जाता था।[1] एक अन्य मार्ग श्रावस्ती से चल कर बुद्ध-काल में दक्षिणापथ के प्रतिष्ठान (पैठन) नगर तक पहुँचता था। इस मार्ग के प्रसिद्ध स्थान श्रावस्ती से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, विदिशा, गोनद्ध, उज्जैन (उज्जेनी), माहिष्मती और प्रतिष्ठान। अतः इन सब नगरों से श्रावस्ती व्यापारिक सम्बन्धों द्वारा जुड़ी हुई थी। श्रावस्ती से सोरेय्य (सोरों) होते हुए तक्षशिला तक निरन्तर शकट-सार्थ चलते रहते थे। श्रावस्ती वाराणसी से भी व्यापारिक मार्ग द्वारा सयुक्त थी और इन दोनों नगरों के बीच मे कीटागिरि नामक स्थान पड़ता था। श्रावस्ती से राजगृह की दूरी ४५ योजन और तक्षशिला की १९२ योजन बताई गई है।[2] जातक और अट्ठकथाओं में श्रावस्ती से अनेक स्थानों की दूरी के विवरण दिये गये हैं। इस प्रकार उसे साकेत से ६ योजन, संकाश्य से ३० योजन, सुप्पारक से १२० योजन, आलवी से ३० योजन, मच्छिकासण्ड से ३० योजन, कुक्कुटवती से १२० योजन और कुररघर से १२० योजन बताया गया है।

श्रावस्ती के साथ भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य का जितना अधिक सम्बन्ध रहा है, उतना किसी अन्य बुद्धकालीन नगर के बारे में नही कहा जा सकता। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की चौदहवी वर्षा तो भगवान् ने श्रावस्ती में बिताई ही, अन्य न जाने कितने अवसरों पर वे कभी वाराणसी, कभी वैशाली, कभी राजगृह, कभी थुल्ल-कोट्ठित और न जाने कितने अन्य स्थानो से इस नगरी में गये और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम २५ वर्षों के (इक्कीसवें से लेकर पैंता-लीसवे तक) वर्षावास श्रावस्ती मे ही किये और अधिकाश समय भी वही बिताया। यही कारण है कि इतने अधिक सुत्त श्रावस्ती में ही भाषित किये गये, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

---

१. दिव्यावदान, पृष्ठ ५५, ९४-९५।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १ ५२।

श्रावस्ती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विहार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जेतवनाराम था। इसे श्रावस्ती के सेठ अनाथपिण्डिक ने बनवाया था। उसके बाद मृगारमाता के पूर्वाराम विहार का नाम लिया जायगा। यद्यपि निवास की दृष्टि से भगवान् ने पूर्वाराम विहार में भी जेतवनाराम के प्रायः समान ही निवास किया,[१] परन्तु सर्वाधिक सुत्तों का उपदेश जेतवनाराम में ही दिया गया। जिन अवस्थाओं में इन दोनों विहारों का निर्माण हुआ, उनका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं और उन पर जो व्यय हुआ, उसका कुछ उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

जेतवनाराम श्रावस्ती के न अति दूर और न अति समीप, शान्त वातावरण मे, श्रावस्ती के दक्षिण द्वार के समीप स्थित था। यह एक विशाल क्षेत्र में स्थित आराम था और शान्त वातावरण के साथ-साथ प्रत्येक आवश्यक वस्तु की व्यवस्था की गई थी। विनय-पिटक में कहा गया है, "अनाथपिण्डिक गृहपति ने जेतवन में विहार (भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये, परिवेण (आँगन सहित घर) बनवाये, कोठरियाँ बनवाईं, उपस्थान शालाएँ (सभा-गृह) बनवाईं, अग्नि-शालाएँ (पानी गर्म करने के लिये) बनवाईं, कल्पिक कुटियां (भण्डार) बनवाईं, पाखाने, पेशाबखाने, टहलने के स्थान (चंक्रमण), चंक्रमण शालाएँ, प्याऊ, प्याऊघर, जन्ताघर (स्नानागार), जन्ताघर-शालाएँ, पुष्करिणियाँ, मंडप बनवाये।"[२] विशेषतः इसके अन्दर चार बड़े घर (महागेहानि) थे, जिनके नाम थे कारेरि कुटी, कोसम्ब कुटी, गन्ध कुटी, और सललघर या सललागार। इनमें से प्रथम तीन कुटियाँ अनाथपिंडिक के द्वारा बनवाई गई थीं और सललागार राजा प्रसेनजित् के द्वारा निर्मित करवाया गया था।[३] दीघ-निकाय के महापदान-सुत्त में हम भगवान् को कारेरि कुटी में भिक्षुओं को उपदेश करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के सललागार-सुत्त में स्थविर अनुरुद्ध के सललागार में विहार का उल्लेख है। सललघर या सललागार

---

१. विशेष विवरण इस सम्बन्ध में द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में दिया जा चुका है।

२. पृष्ठ ४६२ (हिन्दी अनुवाद)।

३. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

कुटी का यह नाम इसलिये पड़ा था कि इसके दरवाजे पर सलल नामक सुगन्धित वृक्ष थे। आचार्य बुद्धघोष ने इसे "सललमय गन्धकुटी"[१] और "सललरुक्खमय"[२] कहकर पुकारा है।

जेतवनाराम के प्रवेश-द्वार का नाम 'द्वार कोट्ठक' था जिसे कुमार जेत ने बनवाया था। जिस समय अनाथपिण्डिक कोर से कोर अशर्फियों को मिलाकर भूमि पर बिछवा रहा था और इस प्रकार विहार के लिये जमीन कुमार जेत से खरीद रहा था, तो कहा गया है कि एक बार लाया गया सोना एक द्वार के कोठे के बराबर थोड़ी सी जगह के लिये कम रह गया और उसने उसे लाने के लिये अपने नौकरों को आज्ञा दी। परन्तु कुमार जेत ने उसे रोकते हुए कहा, "बस गृहपति! "तू इस खाली जगह को मत ढँकवा। यह खाली जगह मुझे दे। यह मेरा दान होगा।" इस जगह पर उसने 'द्वार कोट्ठक' अर्थात् द्वार पर स्थित कोठे का निर्माण किया,[३] जो गन्धकुटी के सामने था। यह विहार की पूर्व दिशा का फाटक था।

इस द्वारकोट्ठक के समीप ही आनन्दबोधि वृक्ष था। बोधि-वृक्ष के बीज से इस वृक्ष को उगाया गया था। आनन्द के उद्योग से इस वृक्ष को उगाया गया था, इसलिए उनके नाम पर ही यह 'आनन्द बोधि नाम से प्रसिद्ध हो गया। एक रात भगवान् बुद्ध ने इसके नीचे ध्यान भी किया था। पदुम जातक और कालिंग जातक का उपदेश इस वृक्ष को लक्ष्य कर ही दिया गया था। आज जेतवन विहार के भग्नावशेषों के सामने एक पुराना पीपल का वृक्ष खड़ा है, जिसे आनन्द बोधि का उत्तराधिकारी या वंशज माना जा सकता है।

विशाखा मृगारमाता द्वारा निर्मित पूर्वाराम प्रासाद 'हत्थिनख प्रासाद' भी कहलाता था। यह एक आलिन्द-सहित बना हुआ भवन था और इसकी आकृति हाथी के नख या खर्बूजे की तरह थी। इस विहार का निर्माण स्थविर महामौद्गल्यायन के निर्देशन में हुआ था। विभिन्न निकायों के जिन सुत्तों का उपदेश मृगारमाता

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७०५।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०५।

३. पूरे विवरण के लिये देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५८-४६२।

के प्रासाद पूर्वाराम में दिया गया, उनका उल्लेख हम प्रथम परिच्छेद में पालि तिपिटक के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय कर चुके हैं। पूर्वाराम प्रासाद, जैसा उसके नाम से विदित है, श्रावस्ती के पूर्व द्वार के समीप स्थित था। जेतवनाराम के साथ उसकी आपेक्षिक स्थिति के सम्बन्ध में धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "शास्ता विशाखा के घर भिक्षा ग्रहण कर दक्षिण द्वार से निकल, जेतवन में वास करते थे। अनाथपिण्डिक के घर भिक्षा ग्रहण कर पूर्व द्वार से निकल कर पूर्वाराम में निवास करते थे।"[1] इसका अर्थ यह है कि पूर्वाराम विहार जेतवन विहार से कुछ दूर पूर्व या पूर्वोत्तर दिशा में स्थित था। फा-ह्यान ने विशाखा के इस आराम को श्रावस्ती नगर से ६ या ७ 'ली' उत्तर-पूर्व में देखा था।[2] जैसा हम दूसरे परिच्छेद में कह चुके हैं, यदि भगवान दिन जेतवन में व्यतीत करते थे तो रात को पूर्वाराम प्रासाद में रहते थे और यदि दिन को पूर्वाराम प्रासाद में रहते थे तो रात को जेतवन में टिकते थे। पूर्वाराम प्रासाद एक विशाल दो-मंजिला भवन था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "नीचे के तल पर पाँच सौ गर्भ (कोठरियाँ) और ऊपर के तल पर पाँच सौ गर्भ (कोठरियाँ) इस प्रकार एक हजार गर्भ (कोठरियों) से मंडित वह प्रासाद था।"[3] पूर्वाराम विहार की आधुनिक स्थिति सहेट-महेट के पास उनके पूर्व की ओर का हनुमनवा नामक स्थान है।

उपर्युक्त दो महाविहारों के अतिरिक्त श्रावस्ती के अन्दर भिक्षुणियों के लिये राजा प्रसेनजित् के द्वारा बनवाया गया एक 'राजकाराम' नामक विहार भी था। महापजावति गोतमी की प्रार्थना पर भगवान् बुद्ध ने यहाँ एक बार मज्झिम-निकाय के नन्दकोवाद-सुत्तन्त का उपदेश दिया था। संयुत्त-निकाय के सहस्स-सुत्त में भी इस आराम का उल्लेख है। भिक्षुणी हो जाने के बाद राजा प्रसेनजित् की भगिनी सुमना (बुड्ढपब्बजिता) यहीं निवास करती थी। इस विहार की स्थिति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण संकेत हमें इस बात से मिलता है कि जातकट्ठकथा में इसे 'पिट्ठि विहार' कहकर पुकारा गया है। इसका अर्थ यह है कि यह जेतवन

---

१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१९।

२. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३३।

३. उपर्युक्त पद-संकेत १ के समान।

के पीछे स्थित था, अर्थात् जेतवन के उत्तर या उत्तर-पूर्व में श्रावस्ती नगर से लगा हुआ, या सम्भवतः उसी में स्थित। जैसा हम आगे देखेंगे, इस भिक्षुणी-विहार का उल्लेख फा-ह्यान ने किया है और उसे महाप्रजावती गौतमी के नाम से सम्बद्ध किया है।

श्रावस्ती के पूर्व द्वार के फाटक (पुब्बकोट्ठक) के समीप रम्मक नामक ब्राह्मण का 'रम्मकाराम' नामक एक आश्रम भी था। भगवान् ने यहाँ एक बार जाकर उपदेश दिया था, जो मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन)-सुत्तन्त में निहित है।

प्रसेनजित् की रानी मल्लिका के द्वारा बनवाया गया मल्लिकाराम भी श्रावस्ती के नगर-द्वार के पास स्थित था। यह एक परिव्राजकाराम था। दीघ-निकाय के पोट्ठपाद-सुत्त से हमें पता चलता है कि पोट्ठपाद नामक परिव्राजक यहाँ निवास करता था। इसी सुत्त में इस आराम के विषय में कहा गया है "समयप्पवादके तिण्डुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे" अर्थात् "समय-प्रवादक (भिन्न-भिन्न मतों के वाद के स्थान) एकशालक (एक शाला वाले) मल्लिका के आराम तिन्दुकाचीर में।" इससे यह प्रकट होता है कि मल्लिकाराम (मल्लिका के आराम) का ही नाम तिन्दुकाचीर था और यहाँ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के मतवादों पर शास्त्रार्थ चला करता था। यह आराम एक ही शाला वाला था। तिन्दुक (या तिण्डुक) अर्थात तेंदू या आबनूस के वृक्षों से घिरे रहने के कारण यह 'तिन्दुकाचीर' (तिण्डुकाचीर भी पाठान्तर) कहलाता था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे वर्तमान महेट के पास चीरेनाथ नामक स्थान से मिलाया है।[1]

पाटिकाराम नामक विहार श्रावस्ती के समीप ही था। जब सुनक्षत्र लिच्छवि-पुत्र भिक्षु-संघ को छोड़ कर गया, तब भगवान् इस विहार में ही निवास कर रहे थे।[2]

जेतवन के समीप तित्थियाराम नामक विहार था। यह अन्य धर्मावलम्बियों

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६७, पद-संकेत १; बुद्धचर्या, पृष्ठ १७६, पद-संकेत १।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८९।

(तैर्थिकों) का विहार था।[1] महाप्रजावती गौतमी से उपदेश ग्रहण करने से पूर्व भद्रा कापिलायिनी (भद्दा कापिलानी) ने यहाँ पाँच वर्ष तक साधना की थी। चिञ्चा-काण्ड, जैसा हम आगे देखेंगे, इस आराम के समीप ही हुआ था।

श्रावस्ती के पूर्व द्वार का फाटक पुब्ब कोट्ठक (पूर्व कोष्ठक) कहलाता था। आधुनिक महेट के कान्हभारी दरवाजे की स्थिति पर यह सम्भवतः था। मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन) सुत्तन्त तथा संयुत्त-निकाय के पुब्बकोट्ठक-सुत्त में श्रावस्ती के पुब्बकोट्ठक का उल्लेख है। पुब्बकोट्ठक से कुछ दूर पर ही अचिरवती नदी बहती थी। इसमें गात्र-सिंचन (स्नान) के लिये आनन्द को साथ लेकर भगवान् को हम मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन)-सुत्तन्त में देखते हैं। मज्झिम-निकाय के बाहीतिक सुत्तन्त से हमें सूचना मिलती है कि राजप्रासाद भी इसके समीप ही था। राजप्रासाद से कुछ दूर उत्तर-पश्चिम में चलकर अनाथपिण्डिक का घर था और उससे कुछ दूर उत्तर-पश्चिम कोण में ही विशाखा मृगारमाता का घर था, ऐसा हमें चीनी यात्रियों के वृत्तान्तों और महेट क्षेत्र में की गई खुदाई में प्राप्त सामग्री के तुलनात्मक पर्यालोचन से विदित होता है।

श्रावस्ती के समीप ही, उसकी दक्षिण दिशा में, एक गावुत (करीब दो मील) की दूरी पर, अन्धवन नामक वन था। यहाँ हम एक बार आयुष्मान् कुमार काश्यप को विहार करते देखते हैं।[2] संयुत-निकाय के राहुल-सुत्त में हम राहुल को साथ लेकर भगवान् को दिन के विहार के लिये श्रावस्ती के समीप अन्धवन में जाते देखते हैं। मज्झिम-निकाय के चूल-राहुलोवाद-सुत्तन्त का उपदेश यहीं भगवान् ने राहुल को दिया था। अन्धवन में एक पधान-घर या ध्यान-भवन बना हुआ था।[3] इसलिये हम अनेक बुद्धकालीन भिक्षु-भिक्षुणियों को यहाँ ध्यानार्थ जाते देखते हैं। खेम और सोम नामक भिक्षुओं ने यहाँ ध्यान किया था।[4] धर्मसेनापति सारिपुत्र ने अन्धवन में ध्यान करते हुए ही यह साक्षात्कार किया था कि भव-निरोध

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४१५-४१६; जिल्द चौथी, पृष्ठ १८७।
२. वम्मिक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।३)।
३. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३८।
४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५८।

ही निर्वाण है।[1] संयुत्त-निकाय के बाल्हगिलान-सुत्त में हम अनुरुद्ध को अन्धवन में बीमार पड़े देखते हैं। संयुत्त-निकाय के भिक्खुणी-संयुत्त में हम कई भिक्षुणियों को अन्धवन में विहार करते देखते हैं। भिक्षुणी सोमा (सोमा-सुत्त), किसा गोतमी (किसा गोतमी-सुत्त), विजया (विजया-सुत्त), उप्पलवण्णा (उप्पलवण्णा-सुत्त) चाला (चाला-सुत्त), उपचाला (उपचाला-सुत्त), सीसूपचाला (सीसूपचाला-सुत्त), सेला (सेला-सुत्त) और वजिरा (वजिरा-सुत्त) नामक भिक्षुणियों के इस प्रकार अन्धवन में ध्यान के लिये जाने के उल्लेख हैं। थेरीगाथा की अट्ठकथा[2] तथा जातक[3] में भी इन भिक्षुणियों के अन्धवन में ध्यान के लिये जाने के उल्लेख हैं। अन्धवन में चोरों का भय सदा बना रहता था। काश्यप बुद्ध के समय में चोरों ने सोरत (यसोधर भी पाठान्तर) नामक स्थविर की आँखें निकाल कर उनकी निर्मम हत्या की थी। इस दुष्कृत्य के कारण चोर अन्धे हो गये थे और वन में इधर-उधर घूमने लगे थे। पपञ्चसूदनी[4] और सारत्थप्पकासिनी[5] के अनुसार 'अन्धवन' का यह नाम पड़ने का यही कारण था। परन्तु फा-ह्यान ने 'पुनः प्राप्त चक्षु' के नाम से इस वन को पुकारते हुए एक दूसरी अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार ५०० अन्धों को बुद्धानुभाव से इस वन मे चक्षुओं की पुनः प्राप्ति होने के कारण इस वन का यह नाम पड़ा था। फा-ह्यान ने इस वन को 'स्वर्णोपवन चैत्य" (जेतवनाराम) से ४ 'ली' उत्तर-पश्चिम दिशा मे देखा था।[6] अन्धवन में एक बार प्रसेनजित् को भी चोरों ने घेर लिया था जब कि वह कुछ थोड़े से सिपाहियों के साथ वहाँ होकर जा रहा था।[7] वर्तमान पुरना नामक स्थान को अन्धवन की स्थिति पर माना जा सकता है।

श्रावस्ती के प्रसंग मे गण्डम्ब रुक्ख (गण्ड के आम्र-वृक्ष) का भी उल्लेख कर

---

१. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९।

२. पृष्ठ ६६, १६३।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १२८।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३३६।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३२-३३।

७. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३१-१३२।

देना चाहिये। यह एक आम का पेड़ था जिसे श्रावस्ती के प्रवेश-द्वार पर लगाया गया था और जिसके नीचे ही बुद्ध ने यमक पाटिहारिय का प्रदर्शन किया था। प्रसेनजित् के माली गण्ड ने एक सुन्दर आम का फल भगवान् को अर्पित किया था। इसकी गुठली रोपी गई, जिससे बढ़कर वृक्ष हुआ। गण्ड के नाम पर यही गण्ड का आम्र-वृक्ष या गण्डम्ब रुक्ख कहलाया। जैसा हम अभी कह चुके हैं, भगवान् ने ऋद्धि-प्रदर्शन इस वृक्ष के नीचे ही किया।[1] दिव्यावदान (पृष्ठ १५१) में ऋद्धि-प्रदर्शन के स्थान को श्रावस्ती और जेतवन के बीच में (अन्तरा च श्रावस्तीमन्तरा च जेतवनम्) बताया गया है। अतः यही स्थिति गण्ड के आम्र-वृक्ष की होनी चाहिये।

फा-ह्यान और यूआन् चुआङ दोनों ही चीनी यात्रियों ने क्रमशः पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में श्रावस्ती की यात्रा की। फा-ह्यान ने भगवान् बुद्ध की मौसी महाप्रजावती गौतमी के भिक्षुणी-संघाराम, सुदत्त (अनाथपिंडिक) द्वारा निर्मित विहार और अंगुलिमाल की प्रव्रज्या के स्थान तथा अन्य कई स्थानों का उल्लेख किया है।[2] यूआन् चुआङ ने भी प्रायः इन्हीं सब स्थानों का वर्णन किया है।[3] इन दोनों चीनी यात्रियों द्वारा वर्णित भिक्षुणी-संघाराम वस्तुतः राजकाराम ही होना चाहिये, यद्यपि इस नाम का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। यूआन् चुआङ ने श्रावस्ती (शिह्-लो-फ-सि-ति) शब्द का प्रयोग एक जनपद (जिसे हमें कोसल जनपद कहना चाहिये) के अर्थ में किया है और उसका विस्तार ६००० 'ली' (करीब १००० मील) बताया है। श्रावस्ती नगर के लिये उसने 'प्रासाद नगर' का प्रयोग किया है।[4] इस 'प्रासाद नगर' (श्रावस्ती) से ६ 'ली' (करीब १ मील) दक्षिण में यूआन् चुआङ ने जेतवन (शे-तो) को देखा था, जिसे उसने अनाथपिंडदाराम (के-कु-तु-युआन्) भी कहकर पुकारा है। यह उस समय भग्न अवस्था में

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २६४, (सरभमिग जातक); धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २०६; मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ ४२८ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३०-३६।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७७; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २००।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७७।

था।[1] फा-ह्यान ने सुदत्त (अनाथपिण्डिक) द्वारा निर्मित जेतवन विहार को, जिसे उसने स्वर्णोपवन-चैत्य कहकर पुकारा है, श्रावस्ती के दक्षिण द्वार से करीब १२०० कदम दूर, बाहर, देखा था।[2] इस प्रकार जेतवन की स्थिति के सम्बन्ध में दोनों यात्री प्रायः सहमत है। जेतवन के पूर्वी द्वार पर यूआन् चुआङ ने उसके दोनों ओर दो अशोक-स्तम्भों को देखा था। जेतवन विहार के समीप ही एक चैत्य में यूआन् चुआङ ने भगवान् बुद्ध की एक ५ फुट लम्बी मूर्ति देखी थी जो कौशाम्बी-नरेश उदयन द्वारा बनाई गई मूर्ति की प्रतिकृति थी, जिसे राजा प्रसेनजित् के लिये तैयार किया गया था।[3] यूआन् चुआङ ने अनाथपिंडदाराम के उत्तर-पूर्व में उस स्थान को भी देखा था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने एक रोगी भिक्षु की सेवा की थी।[4] चिंचा (चि-चे) के काण्ड के स्थान का भी यूआन् चुआङ ने उल्लेख किया है।[5] फा-ह्यान ने इस काण्ड के स्थान के सम्बन्ध में कुछ अधिक स्पष्टता के साथ उल्लेख किया है। उसके विवरणानुसार चिंचा (चंचमन) ने जहाँ अपना दुष्कृत्य किया, वह स्थान स्वर्णोपवन चैत्य (जेतवनाराम) के पूर्व द्वार से करीब ७० कदम की दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित था। इसी स्थान के समीप अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ भगवान् बुद्ध का शास्त्रार्थ हुआ था।[6] चिचा-काण्ड, जैसा हम पालि विवरणों से जानते है, श्रावस्ती मे तित्थियाराम के समीप ही हुआ था।[7]

---

१. वहीं, पृष्ठ ३८२।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३०।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४; उदयन द्वारा बुद्ध-मूर्ति बनाने के सम्बन्ध में देखिये आगे 'वंस' राज्य का वर्णन भी।

४. उपर्युक्त के समान, पृष्ठ ३८७; बुद्ध द्वारा एक रोगी भिक्षु की सेवा के पालि विवरण के लिये देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१७।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९२-३९३।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३३-३४।

७. चिञ्चा काण्ड के पालि विवरण के लिये देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६-३१७।

श्रावस्ती की आधुनिक पहचान सहेट-महेट के रूप में की गई है, जिनमें से सहेट गोंडा जिले में और महेट बहरायच जिले में है। ये दोनों गाँव एक दूसरे से लगभग डेढ़ फर्लांग के फासले पर स्थित हैं। महेट उत्तर में है और उसके दक्षिण में सहेट है। महेट के क्षेत्र को बुद्धकालीन श्रावस्ती और सहेट के क्षेत्र को जेतवन माना गया है। इस खोज का श्रेय जनरल कनिंघम को है।[1] सबसे पहले जनरल कनिंघम ने सन् १८६२-६३ में श्रावस्ती के खण्डहरों की खुदाई करवाई थी। इस समय उन्हें वहाँ एक ७ फुट ४ इंच ऊँची बोधिसत्व की मूर्ति मिली थी, जिस पर अंकित लेख से यह निष्कर्ष निकाला गया कि बल नाम के भिक्षु के द्वारा यह श्रावस्ती विहार में स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के लेख के आधार पर ही सहेट के क्षेत्र को जेतवन माना गया। सन् १८७६ मे सहेट क्षेत्र की पुनः खुदाई की गई और कई प्राचीन भवनों की नीवें दिखाई पड़ीं। कनिंघम का अनुमान था कि जिस स्थान पर उपर्युक्त बोधिसत्व की मूर्ति मिली थी, वहाँ कोसम्ब कुटी विहार था। इस कुटी का परिचय हम पहले दे चुके हैं। इस कोसम्ब कुटी के उत्तर में प्राप्त खण्डहर को कनिघम ने गन्धकुटी माना था जिसमें भगवान् बुद्ध निवास करते थे।[2] यह कुटी जेतवन के मध्य भाग में थी। महेट क्षेत्र की भी अनेक बार खुदाई की गई है और वहाँ से महत्वपूर्ण सामग्री मिली है जो उसे प्राचीन श्रावस्ती नगर सिद्ध करती है। 'श्रावस्ती' नामांकित कई लेख सहेट-महेट के भग्नावशेषों में मिले हैं और अब तक जो भी खुदाई हुई है, उससे जेतवनाराम आदि स्थानों के सम्बन्ध में पालि विवरणों में दी गई सूचना को महत्वपूर्ण समर्थन मिला है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

साकेत कोसल राज्य का श्रावस्ती के बाद दूसरा प्रधान नगर था। श्रावस्ती के समान इस नगर की भी बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों में गणना की गई है।[3] नन्दिय-मिग जातक के अनुसार बुद्ध-पूर्व काल में साकेत कोसल की राजधानी था।

---

**१. देखिये उनकी एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४६९-४७४।**

**२. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द ग्यारहवीं, पृष्ठ ७८; जिल्द पहली, पृष्ठ ३३०।**

**३. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३); महासुदस्सन सुत्त (दीघ० २।४)।**

इस प्रकार इस नगर को श्रावस्ती से भी प्राचीन मानना पड़ेगा। महावस्तु से भी ऐसा ही मालूम पड़ता है, क्योंकि वहाँ शाक्यों के पूर्वजों को साकेत-निवासी ही बताया गया है।[1] परन्तु दूसरी ओर पालि परम्परा में एक ऐसी भी बात कही गई है जिससे प्रकट होता है कि कदाचित् साकेत नगर भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही बसाया गया था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि राजा प्रसेनजित् के राज्य में कोई बड़ा सेठ नहीं था। व्यापारिक उद्देश्य से इस बात की बड़ी आवश्यकता समझ उसने राजा बिम्बिसार से एक बडे सेठ को कोसल देश में भेजने की प्रार्थना की, जो अपना कारबार यहाँ कर सके। राजा बिम्बिसार अपने राज्य के धनंजय सेठ को कोसल देश में भेजने को तैयार हो गया। जब वह सेठ परिवार-सहित कोसल देश में आ रहा था तो एक दिन सायंकाल के समय उसने इसी राज्य की सीमा में पड़ाव डाला और यह जानकर कि श्रावस्ती वहाँ से केवल सात योजन पर थी, उसने वही बसने का निश्चय कर लिया। यही स्थान 'साकेत' कहलाया।

मज्झिम-निकाय के रथविनीत-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि श्रावस्ती और साकेत के बीच में सात रथ-विनीत (सत्त रथविनीतानि) या रथ के डाक-पड़ाव स्थापित किये गये थे, जिनसे जब कभी राजा को अत्यावश्यक कार्य होता था वह एक के बाद दूसरे पडाव पर सवारी-परिवर्तन के द्वारा शीघ्र पहुँच सकता था या संवाद आदि भेज सकता था। विनय-पिटक[2] में श्रावस्ती से साकेत की दूरी छह योजन बताई गई है। ऊपर हम धम्मपदट्ठकथा के विवरण में देख चुके है कि वहाँ उसकी दूरी श्रावस्ती से छह के बजाय सात योजन बताई गई है। यही हालत मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) की भी है, जहाँ भी श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन बताई गई है। इतना ही नही, विसुद्धिमग्ग में भी श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन ही बताई गई है। "सावत्थितो सत्तयोजनब्भन्तरं साकेतं।"[3] पता नही, विनय-पिटक के इस सम्बन्धी साक्ष्य के होते हुए भी धम्मपदट्ठकथा, मनोरथपूरणी और विसुद्धिमग्ग समान रूप से इतने विभिन्न क्यों

---

१. देखिये आगे इसी परिच्छेद में शाक्य गण-तन्त्र का विवेचन।

२. पृष्ठ २५६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. १२।७१ (धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

हो गये हैं ? सम्भव है आचार्य बुद्धघोष के समय में श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन रही हो, परन्तु इतना स्पष्ट भौगोलिक ज्ञान आचार्य बुद्धघोष को उत्तर-प्रदेश का था, यह कभी नहीं माना जा सकता। अतः हमें विनय-पिटक के विवरण को ही प्रधानता देनी चाहिये और बुद्ध के काल के सम्बन्ध में उसे ही प्रामाणिक मानना चाहिये। श्रावस्ती और साकेत एक दूसरे से मार्ग द्वारा संयुक्त थे और उस मार्ग में चोरों का अधिक उपद्रव रहता था, ऐसा विनय-पिटक[1] से विदित होता है। जीवक वैद्य तक्षशिला से राजगृह लौटता हुआ मार्ग में साकेत में ठहरा था।[2] साकेत उस मार्ग पर भी स्थित था जो श्रावस्ती से चलकर क्रमशः साकेत, कौशाम्बी, विदिशा (वेदिसं), गोनद्ध, उज्जेनी और माहिष्मती होता हुआ प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाता था।

साकेत का एक रमणीय स्थान अंजनवन मृगदाव था। अंजन (काजल) के समान रंग वाले वृक्षों और पुष्पों से सुशोभित होने के कारण यह वन 'अंजन वन' कहलाता था।[3] यहाँ भी इसिपतन मिगदाय के समान मृग स्वच्छन्दता से विचरते थे और उन्हें अभय दान दिया गया था, 'इसलिये यह मृगदाव' (मिगदाय) कहलाता था। संयुत्त-निकाय के ककुध-सुत्त, कुण्डलि-सुत्त और साकेत-सुत्त का उपदेश भगवान् ने साकेत के अंजनवन मिगदाय में विहार करते हुए ही दिया था। अंजन-वनिय नामक एक भिक्षु ने तो यह नाम अंजन वन में निवास के कारण ही पाया था। यह भिक्षु आसन्दी (कुर्सी) को ही कुटी बना कर इस वन में निवास करता था।[4] कुटिविहारी नामक एक अन्य भिक्षु को भी हम अंजन वन में निवास करते देखते हैं। मेण्डसिर नामक स्थविर ने अंजन वन में ही भगवान् के उपदेश को सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। साकेत के समीप एक दूसरा वन भी था जिसका नाम कंटकीवन था। अट्ठकथा में इसे 'महा करमण्डवन' कहकर भी पुकारा गया है। इस वन में धर्मसेनापति सारिपुत्र, महामोग्गल्लान और अनुरुद्ध ने साथ-साथ विहार

---

१. पृष्ठ १२७-१२८ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वहीं, पृष्ठ २६७।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७।

४. आसन्दिं कुटिकं कत्वा ओगह्य अञ्जनं वनं। थेरगाथा, गाथा ५५।

किया था, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के पदेस-सुत्त और पठमकंटकी-सुत्त से पता लगता है। विनय-पिटक[1] में भी हम धर्मसेनापति सारिपुत्र को साकेत में विहरते देखते हैं। साकेत-जातक का उपदेश भगवान् बुद्ध ने साकेत में ही दिया था। इस जातक में उल्लेख है और धम्मपदट्ठकथा (जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३१७) में भी इस बात का समर्थन है कि जब भगवान् बुद्ध साकेत पहुँचे तो यहाँ के एक ब्राह्मण ने उन्हें अपना पुत्र कहकर पुकारा। हम पहले (बुद्ध की चारिकाओं के प्रसंग में) देख ही चुके हैं कि सुंसुमारगिरिवासी नकुलपिता और नकुलमाता ने भी ऐसा ही व्यवहार बुद्ध के प्रति किया था।

कनिंघम ने साकेत को फा-ह्यान द्वारा निर्दिष्ट 'श-चि' तथा यूआन् चुआङ द्वारा वर्णित विशाख (वाटर्स के अनुसार विशोक) के साथ एकाकार करते हुए उसे आधुनिक अयोध्या बताया था।[2] परन्तु फा-ह्यान ने 'श-चि' (साकेत) को कन्नौज से १३ योजन दक्षिण-पूर्व में बताया है[3] और यूआन् चुआङ ने विशाख या विशोक (पि-शो-क) को कौशाम्बी से ५०० ली' पूर्व में,[4] अतः इन दोनों नगरों को एक नहीं माना जा सकता। स्मिथ ने सुझाव दिया है कि हमें फा-ह्यान के 'श-चि' को बुद्धकालीन साकेत मानना चाहिये।[5] डा० मललसेकर ने पालि परम्परा के साकेत को सुजानकोट के खण्डहरों से, जो सई नदी के किनारे उन्नाव जिले में स्थित हैं, मिलाना स्वीकार किया है।[6] परन्तु उन्होंने अपनी इस मान्यता का कोई हेतु नहीं दिया है। इसी प्रकार बिना किसी कारण का उल्लेख किये हुए पालि के साकेत को डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त बाजपेयी ने सुजानकोट मानना ही

---

१. पृष्ठ २८० (हिन्दी अनुवाद)।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४६१।

३. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५४; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७५।

५. देखिये ऊपर के समान।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०८६।

स्वीकार किया है।[१] परन्तु हम साकेत की स्थिति के ज्ञापक इन सुजानकोट के खण्डहरों को नहीं मान सकते, क्योंकि मगध से श्रावस्ती आने के मार्ग में वे किसी प्रकार नहीं पड़ सकते, जैसा कि उन्हें धनंजय सेठ की पूर्वोक्त यात्रा के अनुसार पड़ना चाहिये। अत: हम आधुनिक अयोध्या कस्बे को ही बुद्धकालीन साकेत से मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। एक अन्य कारण सुजानकोट के बजाय आधुनिक अयोध्या को ही बुद्धकालीन साकेत मानने का यह है कि थेरगाथा-अट्ठकथा में स्थविर गवम्पति की जो कथा दी गई है, उसमें कहा गया है कि यह स्थविर जब एक बार साकेत के अंजनवन मृगदाव में निवास कर रहे थे तो भगवान् बुद्ध यहाँ आये और उनके साथ आने वाले कुछ भिक्षु अंजनवन के समीप सरभू (सरयू) नदी के किनारे पर रात को सो गये। परन्तु अचानक रात को नदी में बाढ़ आ गई, जिससे भिक्षुओं में खलबली मच गई। तब भगवान् ने स्थविर गवम्पति को नदी की बाढ़ को रोकने के लिये भेजा जिसे उन्होंने अपने ऋद्धि-बल से शांत कर दिया।[२] इसी घटना को लक्ष्य कर स्थविर गवम्पति के सम्बन्ध में थेरगाथा में कहा गया है "यो इद्धिया सरभु अट्ठपेसि"। इस विवरण से बिलकुल स्पष्ट है कि साकेत के समीप अंजनवन था और उसके समीप ही सरभू (सरयू) नदी बहती थी। अत: निर्विवाद रूप से सरयू के तट पर स्थित आधुनिक अयोध्या कस्बे को ही पालि का साकेत मानना चाहिये, न कि सुजानकोट के खण्डहरों को, जो सरयू नदी पर नहीं, बल्कि सई नदी के तट पर स्थित हैं।

अयोज्झा (अयोध्या) का उल्लेख संयुत्त-निकाय के फेण-सुत्त में है। इस सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को अयोध्या में गंगा नदी के तट पर विहार करते देखते हैं।[३] संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी[४]) में कहा गया है कि अयोध्या-वासी लोगों ने गंगा के मोड़ पर एक विहार बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान किया था। इस प्रकार पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथा, दोनों के साक्ष्य

---

१. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास, पृष्ठ ७; १२, पद-संकेत ६।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १०३।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), प्रथम भाग, पृष्ठ ३८२।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३२०।

पर हम बुद्धकालीन अयोध्या को गंगा नदी के तट पर स्थित देखते हैं। जैसा अभी-अभी देख ही चुके हैं, साकेत उससे एक भिन्न नगर था। वर्तमान अयोध्या गंगा नदी के तट पर स्थित नहीं है, अतः जब तक हम पालि के विवरण को गलत न मानें, बुद्धकालीन अयोध्या को हम वर्तमान अयोध्या से नहीं मिला सकते। यह उल्लेखनीय है कि चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने गंगा नदी को पार कर "अ-यु ते" (अयोध्या) में प्रवेश करने की बात कही है,[1] जो सब गवेषकों के लिये एक कठिनाई पैदा करने वाली बात है।

यूआन् चुआङ ने नवदेव कुल (वर्तमान नेवल, जिला उन्नाव) से ६०० 'ली' (१०० मील) दक्षिण-पूर्व में चलकर "अ-यु-ते" (अयोध्या) मे प्रवेश किया था।[2] अतः इस चीनी यात्री के "अ-यु-ते" को वर्तमान अयोध्या से मिलाना सदिग्ध ही है।[3] यूआन् चुआङ ने लिखा है कि असंग और वसुबन्धु ने कुछ समय तक अयोध्या में निवास किया था और वसुबन्धु की मृत्यु अयोध्या में ही ८३ वर्ष की अवस्था में हुई थी।[4] यूआन् चुआङ ने अयोध्या में कई प्राचीन विहारों के अवशेष और एक बुद्ध-स्तूप को देखा था।[5] भगवान् बुद्ध की चंक्रमण-भूमि पर स्थापित एक स्तूप को यूआन् चुआङ से पूर्व फा-ह्यान ने भी पाँचवीं शताब्दी ईसवी में देखा था।[6] अयोज्झा (अयोध्या) और उसके कालसेन नामक राजा का उल्लेख एक जगह जातक

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५४।

२. उपर्युक्त के समान।

३. मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४३९-४४०।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५४-३५९।

५. विस्तार के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५५-३५६।

६. लेजे : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५४-५५; गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९-३०।

में भी हुआ है।[1] वस्तुतः जिस अयोध्या का उल्लेख संयुत्त-निकाय के ऊपर निर्दिष्ट सुत्त और जातक में पाया जाता है, उसे गंगा नदी के तट पर स्थित एक छोटा गाँव या नगर ही माना जा सकता है और, जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में साकेत उससे भिन्न और एक महानगर था। वाल्मीकि-रामायण में अयोध्या को कोसल की राजधानी बताया गया है और बाद के संस्कृत ग्रन्थों में उसे साकेत से मिला दिया गया है। डॉ० ई० जे० थॉमस का कहना है कि इस सम्बन्ध में रामायण की परम्परा बौद्ध परम्परा की अपेक्षा एक उत्तरकालीन स्थिति की सूचक है। उनका मन्तव्य यह है कि पहले कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी और बाद में जब दक्षिण की ओर कोसल राज्य का विस्तार हुआ तो अयोध्या राजधानी बनी, जो साकेत को ही किसी विजयी राजा द्वारा दिया हुआ नाम था।[2] डॉ० ई० जे० थॉमस के इस मन्तव्य को इस कारण नहीं माना जा सकता कि संस्कृत साहित्य के प्रभूत साक्ष्यों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल से कुछ पूर्व साकेत कोसल की राजधानी था।[3] अतः रामायण की इस सम्बन्धी परम्परा को बौद्ध परम्परा से निश्चयतः उत्तर काल की नहीं माना जा सकता। वस्तुतः बात यह है कि रामायण की अयोध्या बारह योजन विस्तीर्ण एक महानगरी थी, जब कि पालि की अयोज्झा (अयोध्या) गंगा नदी के किनारे एक गाँव मात्र थी। अतः उन्हें मिलाने की प्रवृत्ति हमें नहीं करनी चाहिये। पालि साहित्य में उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल का भेद भी स्पष्टतः निर्दिष्ट नहीं मिलता। अतः पालि की अयोज्झा की खोज हमें गंगा नदी के किनारे ही करनी पड़ेगी।

वेहलिंग नामक एक ऋद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण ग्राम-निगम (गाँव से बड़ा, कस्बे से छोटा) बुद्ध-पूर्व काल में कोसल देश में था। यहाँ एक बार आते समय भगवान् ने स्मित प्रकट किया था, जिसका कारण पूछने पर भगवान् ने आनन्द को

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२-८३।

२. ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १५।

३. देखिये भण्डारकर : कारमाइकेल लैक्चर्स, १९१८, पृष्ठ ५१।

उस स्थान सम्बन्धी वह पूर्व इतिहास बतलाया था, जो मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त में निहित है।

शाला (साला) नामक ब्राह्मण-ग्राम कोसल प्रदेश में था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे। संयुत्त-निकाय के साला-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[1] अन्य कई बार भी भगवान् यहाँ गये। मज्झिम-निकाय के सालेय्य-सुत्तन्त और अपण्णक-सुत्तन्त का उपदेश यहीं दिया गया था।

कोसल देश में एक दूसरा गाँव 'एक शाला' नामक भी था। इसे भी एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है। भगवान् इस गाँव में भी गये थे और गृहस्थो की एक सभा में उन्होंने पतिरूप-सुत्त का उपदेश दिया था।[2]

ओपसाद कोसल देश में एक ब्राह्मण-ग्राम था। यहाँ का स्वामी चंकि ब्राह्मण था, जिसे यह गाँव दान के रूप में राजा प्रसेनजित् की ओर से मिला हुआ था। भगवान् इस गाँव में गये थे और इसके उत्तर में देववन नामक एक शालवन था, जहाँ भगवान् ठहरे थे। मज्झिम-निकाय के चंकि-सुत्तन्त का उपदेश यहीं दिया गया था

सालवतिका या सालवती कोसल देश का एक प्रसिद्ध गाँव था, जिसे प्रसेन-जित् ने लोहिच्च नामक ब्राह्मण को दान के रूप में दिया था।[3] इस प्रकार यह एक ब्राह्मण-ग्राम था। साल (शाल) के पेड़ों की अधिकता के कारण इस गाँव का नाम 'सालवतिका' या 'सालवती' पड़ा था।[4] दीघ-निकाय के लोहिच्च-सुत्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था।

तोदेय्य गाम श्रावस्ती और वाराणसी के बीच में था। अतः इसे हम आसानी से काशी-कोसल राज्य में सम्मिलित मान सकते हैं। एक बार भगवान् आनन्द के साथ यहाँ गये थे।[5]

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२७।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ९६-९७।

३. "उस समय लोहिच्च ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसल द्वारा प्रदत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न सालवतिका का स्वामी होकर रहता था।" लोहिच्च-सुत्त (दीघ-१।१२)।

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९५।

५. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५०।

तुदिगाम कोसलदेशवासी प्रसिद्ध ब्राह्मण महाशाल तोदेय्य का स्थायी निवास-स्थान था। यह गाँव उसे कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से दान के रूप में मिला हुआ था। सुभ तोदेय्यपुत्त, जो तोदेय्य ब्राह्मण का पुत्र था, तुदिगाम में ही निवास करता था।[1]

कोसल देश का एक प्रसिद्ध निगम उग्गनगर नामक था। यहाँ भद्दाराम नामक विहार था जहाँ भगवान् ठहरे थे।[2] भगवान् के आदेश पर आयुष्मान् अनुरुद्ध भी वहाँ गये थे।[3] हम थेरगाथा-अट्ठकथा[4] के आधार पर आगे कुरु देश के वर्णन-प्रसंग मे देखेंगे कि वहाँ कुण्डी या कुण्डिय नामक एक ग्राम था, जिसके समीप ही उग्गाराम नामक विहार था। डा० मलल्सेकर ने सुझाव दिया है कि यदि इस उग्गाराम को हम उग्गनगर मे माने तो उस हालत में हमे उग्गनगर को कुरु राष्ट्र में कुण्डी या कुण्डिय नामक ग्राम के समीप मानना पड़ेगा।[5] इसका अर्थ यह है कि एक उग्गनगर कुरु राष्ट्र मे भी हो सकता है। यह सम्भव है। धम्मपदट्ठकथा (जिल्द तीसरी, ४६९) मे श्रावस्ती से उग्गनगर की दूरी १२० योजन कही गई है। निश्चयतः यह उग्ग नगर कोसल राज्य का नहीं हो सकता। फिर भी एक उग्गनगर कोसल देश का भी अवश्य था। स्थविर उग्ग कोसल देश के इस नगर के ही निवासी थे।[6] धम्मपद की अट्ठकथा मे कहा गया है कि एक बार एक सेठ अपने किसी काम से उग्गनगर से श्रावस्ती मे आया था।

कोसल देश मे चण्डलकप्प[7] नामक एक प्रसिद्ध स्थान था, जहाँ बुद्ध, धर्म और

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८०२; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५५४।

२. थेरगाथा-अटठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १७४।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६५-४६९।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३३९।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३६।

६. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ३४ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४२१ में "मण्डल कप्प" पाठ दिया है, जो कदाचित् पाठान्तर भी हो सकता है या प्रूफ की अशुद्धि भी। बम्बई

संघ में प्रसन्न धानंजानी ब्राह्मणी रहती थी। इसी स्थान पर संगारव नामक एक तरुण ब्राह्मण पंडित भी रहता था। भगवान् एक बार यहाँ गये थे और तोदेय्य ब्राह्मणों के आम्रवन में (तोदेय्यानं ब्राह्मणानं अम्बवने) ठहरे थे। इसी समय मज्झिम-निकाय के संगारव-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था।

इच्छानंगल कोसल देश का एक प्रसिद्ध गाँव था। सम्भवतः यह गाँव श्रावस्ती के पास ही था। यहाँ के एक उपासक को हम किसी काम से श्रावस्ती आते देखते है और वह उसे करने के बाद भगवान् के दर्शनार्थ भी आता है। भगवान् उससे कहते है, "क्यों, बहुत दिनों के बाद तुम्हारा इधर आना हुआ।"[1] इससे विदित होता है कि यह उपासक, जिसका नाम हमें नहीं बताया गया है, अक्सर भगवान् के दर्शनार्थ आया करता था। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त में इच्छानंगल को एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है। इच्छानंगल के पास ही उक्कट्ठा नामक गाँव था जिसके बारे में हम आगे लिखेंगे। इच्छानंगल ग्राम में कोसल देश के जानुस्सोणि और तोदेय्य जैसे अनेक ब्राह्मण-महाशाल अक्सर आया-जाया करते थे, ऐसा मज्झिम-निकाय के वासेट्ठ-सुत्तन्त से पता लगता है। इस गाँव के पास एक वन-खण्ड था, जिसे इच्छानंगल वन-खण्ड कहा जाता था। भगवान् इस गाँव में आते समय अक्सर इसी वन-खण्ड में ठहरते थे। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। एक दूसरे अवसर पर जब भगवान् यहाँ विहार कर रहे थे तो उन्होंने वासेट्ठ-सुत्तन्त का उपदेश वाशिष्ठ और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण-माणवकों को दिया था।[2] एक अन्य अवसर पर भगवान् जब इच्छानंगल वन-खण्ड में विहार कर रहे थे, तो उन्हे एकान्तवास की गहरी इच्छा हुई थी और उन्होंने

---

विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण। (मज्झिम निकायो, मज्झिम पण्णासकं) में चण्डल कप्प (पृष्ठ ४२५) पाठ दिया गया है और किसी पाठान्तर का निर्देश यहाँ नहीं किया गया है। मललसेकर ने भी किसी पाठान्तर का निर्देश नहीं किया है।

१. उदान (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १९।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४०९, ४१३; यह सुत्त सुत्त-निपात के वासेट्ठ-सुत्त के रूप में भी आया है।

भिक्षुओं से कहा था, "भिक्षुओ ! मैं तीन महीने एकान्तवास करना चाहता हूँ। एक भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ मेरे पास दूसरा कोई न आने पावे।" इस एकान्तवास के बाद भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के इच्छानंगल-सुत्त में आज देखा जा सकता है।[१] अंगुत्तर-निकाय[२] में भी भगवान् के इच्छानंगल में जाने और वहाँ उपदेश करने का उल्लेख है।

उक्कट्ठा कोसल देश का एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-ग्राम था। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ - सुत्त के अनुसार कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से यह ग्राम ब्राह्मण पोक्खरसादि (पौष्करसाति या अश्वघोष के अनुसार पुष्कलसादी)[३] को दान के रूप में दिया गया था। पौष्करसाति बुद्ध-काल का एक प्रसिद्ध ब्राह्मण पंडित था जिसके पास विमानवत्थु की अट्ठकथा के एक वर्णन के अनुसार हम छत्त नामक व्यक्ति को सेतव्या से विद्या प्राप्त करने के हेतु आते देखते हैं। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त में हम पहले पौष्करसाति के शिष्य अम्बट्ठ (अम्बष्ट) माणवक को और फिर स्वयं पौष्करसाति को भगवान् के दर्शनार्थ समीप के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में जाते देखते है, जहाँ के समीप इसी नाम के वन-खण्ड में भगवान् उस समय ठहर रहे थे।[४]

उक्कट्ठा के पास एक वन था जो 'सुभगवन' कहलाता था। आचार्य बुद्ध-घोष ने कहा है कि अतिशय सुभग (सुन्दर) होने के कारण यह वन 'सुभग वन' कहलाता था।[५] यह एक प्राकृतिक वन न होकर लगाया गया उद्यान या उपवन था, जहाँ आसपास के लोग अक्सर मनोविनोद के लिये जाया करते थे और यहाँ कई एक उत्सव भी लगते थे। सुभगवन के शालराज वृक्ष के नीचे भगवान् के विहार करने की सूचना हमें दीघ-निकाय के महापदान-सुत्त में मिलती है[६] और

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७६८।
२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३४०।
३. देखिये बुद्ध-चरित २१।२९।
४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४-४३।
५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०९।

मज्झिम-निकाय के ब्रह्म-निमन्तनिक-सुत्तन्त में भी।[१] मज्झिम-निकाय के मूल परियाय-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने यहीं दिया था।[२]

आचार्य बुद्धघोष ने 'उक्कट्ठा' गाँव का यह नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि रात में मशालों (उक्का) के प्रकाश में इसे बनाया गया था, ताकि मंगलमय मुहूर्त में ही इसका बनना समाप्त हो जाये।[३]

एक मार्ग उक्कट्ठा से सेतव्या तक जाता था[४] और दूसरा उसे वैशाली महानगरी से जोड़ता था।[५]

उजुञ्ञा या उज्जुञ्ञा (उजुका) कोसल देश का एक जनपद भी था और नगर भी। इसी के समीप कण्णकत्थल (या कण्णत्थलक) नामक मृगोपवन (मिगदाय) था। अचेल काश्यप से भगवान् की यही भेंट हुई थी और दीघ-निकाय के कस्सप-सीहनाद-सुत्त का उपदेश उसे यही दिया गया था।[६] कोसलराज प्रसेनजित् एक बार यहाँ अपने काम से आया था और भगवान् से मिला था। इसी समय उसे कण्णत्थलक-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था।[७]

मनसाकट एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-ग्राम था। उसके समीप उत्तर में अचिरवती नदी बहती थी, जिसके किनारे पर एक सुरम्य आम्रवन था। भगवान् एक बार यहाँ गये थे और इस आम्रवन में ठहरे थे। इसी समय तेविज्ज-सुत्त का उपदेश दिया गया था।[८] मनसाकट में कोसल देश के पौष्करसाति, जानुस्सोणि और तोदेय्य जैसे ब्राह्मण-महाशाल अक्सर एक साथ आकर ठहरा करते थे, ऐसा दीघ-निकाय के तेविज्ज-सुत्त से मालूम पड़ता है।

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९४।
२. वहीं, पृष्ठ ३-५।
३. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १०।
४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।
५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५९।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६१-६६।
७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६८-३७२।
८. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८६-९२।

इसी प्रकार उनके ठहरने का एक दूसरा स्थान इच्छानंगल था, जो भी एक ब्राह्मण-ग्राम था।

नगरक या नगरक कोसल राज्य का एक कस्बा था, जहाँ किसी काम से एक बार हम राजा प्रसेनजित् को जाते देखते है। यहाँ से शाक्यों का कस्बा मेदलुम्प या मेदतलुम्प केवल तीन योजन की दूरी पर था। नगरक से इसी अवसर पर प्रसेनजित् भगवान् के दर्शनार्थ मेदलुम्प कस्बे मे गया था, जहाँ भगवान् उस समय विहर रहे थे।[1] यह प्रसेनजित् की भगवान् से अन्तिम भेट थी।

तोरणवत्थु (तोरणवस्तु) नामक गाँव श्रावस्ती और साकेत के बीच में स्थित था, क्योंकि हम सयुत्त-निकाय के खेमा-थेरी सुत्त मे पढते है "उस समय खेमा भिक्षुणी कोसल मे चारिका करती हुई श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्थु मे ठहरी हुई थी।" यही राजा प्रसेनजित् ने भिक्षुणी खेमा से कुछ प्रश्न पूछे थे जिनके उत्तरो का बाद मे भगवान् ने भी अनुमोदन किया था।

विनय-पिटक मे और दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त मे भगवान् के आतुमा नामक ग्राम मे विहार करने का उल्लेख है। विनय-पिटक के वर्णनानुसार भगवान् कुसिनारा से आतुमा मे गये और फिर वहाँ से श्रावस्ती चले गये।[2] इससे विदित होता है कि आतुमा नामक ग्राम कुसिनारा और श्रावस्ती के बीच मे था। इसलिये उसे मल्ल और कोसल राज्यो मे से किसी मे रक्खा जा सकता है। सम्भवत यह कोसल राज्य मे ही था। विनय-पिटक के अनुसार जब भगवान् यहाँ पहुँचे तो यहाँ के निवासी एक वृद्ध भिक्षु ने, जो पहले नाई था, काफी सामान भगवान् के भोजनार्थ इकट्ठा कर रक्खा था। भगवान् ने उसके निमत्रण को स्वीकार नही किया, क्योकि एक भिक्षु का दूसरे भिक्षु या भिक्षुओ के लिये खाने का सामान इकट्ठा करना विनय-पिटक के विपरीत था।[3] एक दूसरी घटना आतुमा के भुसागार (भूसे का घर) नामक स्थान मे भगवान् के निवास करते समय घटी, जिसका उल्लेख उन्होने स्वय पुक्कुस मल्लपुत्त से पावा और कुसिनारा के बीच रास्ते में अपनी

---

१. धम्म-चेतिय सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।९)।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५४।
३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५३-२५४।

अन्तिम यात्रा पर जाते हुए किया था। यह घटना थी बिजली के कड़क कर गिरने से दो भाई किसान और चार बैलों का मर जाना और समीप ही स्थित ध्यानावस्थित भगवान् का होश में रहते हुए भी इस सबका न देखना, न बिजली की कड़क का शब्द सुनना।[1]

वेनागपुर कोसल देश का एक गाँव था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये थे और अंगुत्तर-निकाय[2] के वेनाग-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।

नगरविन्द या नगरविन्देय्य कोसल देश का एक ब्राह्मण-ग्राम था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे और इस ग्राम के ब्राह्मण गृहपतियों के समक्ष उन्होंने सत्कारयोग्य पुरुषों पर एक प्रवचन दिया था, जो मज्झिम-निकाय के नगरविन्देय्य-सुत्तन्त में निहित है।

दण्डकप्प या दण्डकप्पक कोसल देश में एक गाँव था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे और आनन्द को उपदेश दिया था।[3]

नलकपान कोसल देश मे एक गाँव था जिसके समीप पलाश-वन (पलास-वन) था। भगवान् बुद्ध एक बार इस गाँव में गये थे और यहाँ के पलाश-वन में ठहरे थे। यहीं मज्झिम-निकाय के नलकपान-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था। अंगुत्तर-निकाय[4] से भी हमें पता चलता है कि एक अन्य अवसर पर भगवान् नलकपान में गये थे और वहाँ के पलाश-वन में उन्होंने निवास किया था।

नलकपान के पास 'केतकवन' नामक एक अन्य वन का भी उल्लेख है, जहाँ भगवान् एक बार गये थे और नलकपान जातक का उपदेश दिया था।[5]

पंकधा कोसल देश का एक प्रसिद्ध नगर था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये और वहाँ से लौटकर राजगृह आ गये, जहाँ उन्होंने गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया[6]।

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३८।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ १८०।
३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०२।
४. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२२।
५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।
६. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २३६-२३७।

काश्यप गोत्र (कस्सप गोत्त) का काश्यप (कस्सप) नामक व्यक्ति पंकधा का ही रहने वाला था।

नालन्दा नामक एक गाँव या नगर मगध के समान कोसल देश में भी था। यहाँ मगध के नालन्दा के समान ही एक प्रावारिक आम्रवन (पावारिकम्बवन) भी था। भगवान् कोसल देश में चारिका करते हुए एक बार यहाँ गये थे और असि-बन्धक पुत्त गामणि से उनका संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में निहित है। इस सुत्त से हमें यह भी सूचना मिलती है कि इस समय नालन्दा में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था और निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) भी इस समय नालन्दा में ही निवास कर रहे थे।[1] चूँकि उपर्युक्त सुत्त के आदि में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है, "एक समय भगवान् कोसल मे चारिका करते हुए ... जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे।" अतः पालि तिपिटक की शैली से इस नालन्दा नगर या गाँव का कोसल देश में होना सिद्ध है। परन्तु यहाँ भी प्रावारिक आम्रवन की बात देखकर यह सन्देह होने लगता है कि कहीं 'कोसल' शब्द मूल पाठ में भाणकों की गलती से तो नहीं आ गया है। सम्भवतः इसी प्रकार के सन्देह के वशीभूत होकर डा० विमलाचरण लाहा ने उपर्युक्त कुल-सुत्त में वर्णित नालन्दा को अपने ग्रन्थ 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म'[2] (लंदन, १९३२) में मगध के अन्दर स्थित नालन्दा के समान ही मान लिया है। परन्तु बाद में ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने इस सन्देह का अतिक्रमण कर दिया है और कोसल देश के इस नालन्दा की स्वतन्त्र स्थिति को स्वीकार कर लिया है, जैसा उनके 'इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स् आव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म'[3] (लन्दन, १९४१) से विदित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोसल के इस नालन्दा को हमें मगध के नालन्दा से पृथक् ही मानना चाहिये।[4]

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८५-५८६।

२. पृष्ठ ३१।

३. पृष्ठ ४५।

४. देखिये इस सम्बन्ध में पीछे मगध राज्य के अन्तर्गत नालन्दा का विवेचन भी।

सेतव्या नामक प्रसिद्ध नगर कोसल राज्य में उक्कट्ठा के समीप था। यहाँ पायासि नामक राजञ्ञ (राजन्य—माण्डलिक राजा) निवास करता था। यह नगर इस पायासि राजन्य को उसी प्रकार कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से मिला हुआ था, जिस प्रकार अन्य अनेक ग्राम प्रसिद्ध ब्राह्मण-महाशालों को। आयुष्मान् कुमार काश्यप (कुमार कस्सप) एक बार सेतव्या नगर में गये थे और उनका पायासि राजन्य से, जो नास्तिकवादी था और परलोक में विश्वास नहीं करता था, संलाप हुआ था।

सेतव्या के उत्तर में सिंसपा-वन था।[1] शीशम (सिंसपा) के वृक्षों के इस वन में ही कुमार कस्सप निवास करते थे। स्थविर एकधम्मसवणिय ने सेतव्या के सिंसपा-वन में भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुना था और यहीं उनकी प्रव्रज्या हुई थी।[2] स्थविर एकधम्मसवणिय, महाकाल, चूलकाल और मज्झिमकाल की जन्म-भूमि सेतव्या नगरी ही थी।

सेतव्या एक प्राचीन नगर था। बुद्धवंस की अट्ठकथा के अनुसार यहाँ सेताराम (श्वेताराम) नामक एक विहार था, जहाँ काश्यप बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सेतव्या एक महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर था, जो उस मार्ग पर पडता था जो श्रावस्ती से क्रमशः सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर और वैशाली होते हुए राजगृह तक जाता था।[3] इस प्रकार सेतव्या तत्कालीन कई प्रसिद्ध महानगरों से व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त था। हम उक्कट्ठा के विवरण मे देख चुके है कि सेतव्या नगर उक्कट्ठा से स्थलीय मार्ग द्वारा संयुक्त था। सेतव्या की आधुनिक स्थिति का पता हमें सम्भवतः गोंडा जिले में कहीं लगाना पड़ेगा।

कोसल देश में वेलुद्वार नामक एक ब्राह्मण-ग्राम था, जिसका उल्लेख हमें संयुत्त-निकाय के वेलुद्वारेय्य-सुत्त में मिलता है। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि

---

१. पायासि-राजञ्ञ सुत्त (दीघ० २।१०)।
२. थेरगाथा, पृष्ठ २९ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।
३. देखिये पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा (सुत्त-निपात)।

इस गाँव के प्रवेश-द्वार पर बाँसों का एक वन था, जिसके कारण इस गाँव का नाम वेलुद्वार (वेणु-द्वार) पड़ा।[1]

कामण्डा कोसल देश में एक ग्राम था। यहाँ तुदिगाम-निवासी तोदेय्य ब्राह्मण का एक आश्रम बना हुआ था। यहाँ भगवान् बुद्ध के शिष्य आयुष्मान् उदायी एक बार गये थे और वेरहच्चानि गोत्र की एक ब्राह्मणी को उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के वेरहच्चानि-सुत्त में निहित है।[2]

नलकार गाम (नलकार ग्राम) नामक एक गाँव भी कोसल देश में था। इस गाँव में अधिकतर नलकार अर्थात् बांस और बेंत की वस्तुएँ बनाने का काम करने वाले लोग रहते थे। यह गाँव श्रावस्ती के समीप ही था, जैसा कि भगवान् बुद्ध के एक माणवक के साथ इस संलाप से, जो श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के आराम जेतवन में हुआ था, प्रकट होता है, "तो क्या मानते हो, माणवक ! नलकार ग्राम यहाँ से समीप है, नलकार ग्राम यहाँ से दूर नहीं है !" "हाँ, भो गोतम ! नलकार गाम यहाँ से समीप है, नलकार गाम यहाँ से दूर नहीं है।"[3]

पण्डुपुर नामक एक गाँव कोसल राज्य में था। यह श्रावस्ती के समीप था। इस गाँव के एक मछुए को हम श्रावस्ती जाते और मार्ग में अचिरवती नदी को पार करते देखते हैं।[4]

कट्ठवाहन नगर, जिसे राजा कट्ठवाहन का नगर बताया जाता था, कोसल राज्य में ही था। यह श्रावस्ती से बीस योजन की दूरी पर था और वाराणसी से यहाँ आने में पूरा एक दिन लगता था।[5]

साधुक नाम गाँव श्रावस्ती के जेतवनाराम के निकट ही था। यहाँ ऋषिदत्त और पुराण नामक कारीगरों ने कुछ समय के लिये निवास किया था।[6] मारत्थप्प-

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१७।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५०१।

३. सुभ-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।९)।

४. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४९।

५. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७६-५७९।

६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६७५।

कासिवी[1] का कहना है कि यह गाँव इन्हीं दो कारीगरों का था। एक बार जब भगवान् श्रावस्ती से बाहर जा रहे थे तो मार्ग में उपर्युक्त दो कारीगरों ने साधुक गाँव के पास भगवान् के दर्शन किये थे। इसी अवसर पर भगवान् ने उन्हें थपति-सुत्त का उपदेश दिया था।[2]

वंस (वत्स) राज्य, जिसे महाभारत के वत्स और जैन साहित्य के वच्छ राज्य से मिलाया गया है, मगध और अवन्ती के बीच में स्थित था। उसके उत्तर मे कोसल देश था, जिसकी सीमा गंगा के द्वारा निर्धारित थी।[3] वंस देश के दक्षिण में यमुना नदी बहती थी, जो उसे चेदि जनपद से विभक्त करती थी। वंस के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में क्रमशः सूरसेन और पंचाल जनपद थे और पूर्व में काशी जनपद था। वस राज्य अवन्ती के उत्तर-पूर्व में था। एक राज्य के रूप में विकसित होकर वंस राष्ट्र ने उत्तर-पश्चिम में पंचाल के और दक्षिणी भाग में चेदि के कुछ भागों को अपने अधिकार में कर लिया था, ऐसा माना जा सकता है।[4]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में वंस-देश का राजा उदयन (उदेन) था। बुद्ध-कालीन भारत के चारों बड़े राज्यों में अपनी-अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। इस दृष्टि से वंस की भौगोलिक स्थिति बडी निर्बल थी। एक ओर वह मगध और अवन्ती के बीच में स्थित था और दूसरी ओर कोसल और अवन्ती के बीच। उसे कभी भी जीत कर मगध, अवन्ती या कोसल देश में मिलाया जा सकता था। इस भय से बचने के लिये वत्सराज उदयन ने वैवाहिक सम्बन्धों का आश्रय लिया, जिस प्रकार, जैसा हम पहले देख चुके है, मगधराज बिम्बिसार

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१५।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७७५-७७६।

३. डा० लाहा ने वंस और कोसल के बीच में यमुना नदी को बताया है। इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २३। यह ठीक नहीं जान पड़ता। यमुना नदी तो वंस और चेदि जनपदों के बीच में होकर बहती थी।

४. देखिये। राहुल सांकृत्यायन: मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ झ (प्राक्कथन)।

ने भी लिया था। उदयन ने अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत (चण्ड पज्जोत) की पुत्री वासवदत्ता (वासुलदत्ता) से विवाह किया और इससे शक्ति-संतुलन में सहायता मिली।[1] सूरसेन अवन्ती के प्रभाव में था ही, वंस के वैवाहिक सम्बन्ध में जुड़ जाने के कारण उसकी शक्ति और बढ़ गई। इस प्रकार मगध, कोसल और अवन्ती में शक्ति-संतुलन हो गया और इनके बीच वंस-राज्य कुछ समय तक अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को कायम रख सका। उदयन और वासवदत्ता (वासुलदत्ता) के विवाह की कथा धम्मपदट्ठकथा की उदेनवत्थु में विस्तार से वर्णित है और भारतीय साहित्य के अन्य कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों और कुछ कथा-ग्रन्थों तथा नाटक-ग्रन्थों में उदयन की प्रेम-कथाओं का वर्णन है, जिनसे हमें यहाँ कोई प्रयोजन नहीं। हाँ, अपने विषय की दृष्टि से हमें यहाँ यह अवश्य कह देना चाहिये कि बौद्ध धर्म की ओर उदयन की दृष्टि अच्छी नहीं थी। मातंग जातक के अनुसार उसने भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध भिक्षु-शिष्य पिण्डोल भारद्वाज के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया था। संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा में भी कहा गया है कि उसने एक बार पिण्डोल भारद्वाज के अंग पर कोड़ियों को छोड़ने का प्रयत्न किया था। इस सब में कहाँ तक ऐतिहासिक सत्य है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। इन्हीं पिण्डोल भारद्वाज ने बाद में कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते हुए उदयन को यथासम्भव आत्म-संयम से रहने का उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के भरद्वाज-सुत्त में निहित है। व्यावहारिक दृष्टि से यह बात उदयन को जँची थी और इस सुत्त के साक्ष्य के अनुसार वह बुद्ध-धर्म में प्रसन्न हुआ था। यद्यपि पालि तथा भारतीय साहित्य के अन्य अंशों के साक्ष्य पर उदयन को त्रिरत्न का अनुरक्त भक्त नहीं माना जा सकता, बल्कि उसकी प्रवृत्ति बुद्ध-धर्म की ओर कुछ समालोचनात्मक ही थी, परन्तु इस सब के होते हुए चीनी परम्परा का यह साक्ष्य है कि उदयन वत्सराज ने भगवान्

---

१. "प्रियदर्शिका" और "स्वप्नवासवदत्ता" के अनुसार उदयन ने क्रमशः अंग और मगध की राजकुमारियों से भी विवाह किये। "रत्नावली" के अनुसार उसने सिंहल देश की राजकुमारी सागरिका से भी विवाह किया। पालि विवरणों में उसकी तीन रानियों, वासवदत्ता, सामावती और मागन्दिया के उल्लेख प्राप्त हैं।

बुद्ध की स्वयं अपने हाथ से एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई थी और यूआन् चुआङ जिन वस्तुओं को अपने साथ ले गया था, उनमें एक चन्दन की लकड़ी की बनी हुई भगवान् बुद्ध की मूर्ति भी थी जो उदयन के द्वारा बनाई हुई उपर्युक्त प्रतिमा की अनुकृति थी।[1]

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उदयन कुछ समय तक और जीवित रहा। यह नहीं कहा जा सकता कि उसका पुत्र बोधि राजकुमार उसके बाद गद्दी पर बैठा या नहीं, परन्तु इतना निश्चित है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जा चुका था और एक श्रद्धालु उपासक था। भग्ग लोगों के सुंसुमारगिरिनगर में उसने "कोकनद प्रसाद" नामक महल अपने लिये बनवाया था जहाँ उसने भगवान् को निमन्त्रित भी किया था और उनके सम्मानार्थ सफेद धुस्सों को बिछवाया था, जिन पर चलना तथागत ने स्वीकार नहीं किया था। इसी अवसर पर भगवान् ने उसे उपदेश दिया था, जो मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त में निहित है। धोनसाख जातक में भी भग्ग देश के सुंसुमारगिरि में बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद में भगवान् के स्वागत किये जाने का उल्लेख है और इसी प्रकार विनय-पिटक के चुल्लवग्ग तथा अंगुत्तर-निकाय में भी इस घटना का उल्लेख है।[2] भग्ग देश की सीमा में उदयन-पुत्र बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय तक भग्गों का सुंसुमारगिरि-स्थित गण-तन्त्र किसी न किसी प्रकार वंस राज्य की अधीनता या उसके प्रभाव में आ गया था। परन्तु स्वयं वंस राज्य इसके कुछ वर्षों बाद सम्भवतः अवन्ती की अधीनता में आ गया और द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व अवन्ती के सहित उसे हम मगध राज्य में सम्मिलित होते देखते हैं। परन्तु हमारा विषय हमें इतनी दूर जाने की अनुमति नहीं देता। सुंसुमारगिरिनगर में स्थित बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद को ही अंतिम दृश्य के रूप में यहाँ तो हम देख सकते हैं। हाँ, आचार्य बुद्धघोष के अनुसार हमें यहाँ यह तो कह देना चाहिये कि यह प्रासाद लटकते हुए कोकनद (लाल कमल) की शकल में बनाया गया था। इसीलिये इसका यह नाम पड़ा था।[3]

---

१. बील : रिकार्डस् ऑव दि वस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ बीस (भूमिका)

२. उद्धरणों के लिये देखिये आगे भग्ग गण-तन्त्र का विवरण।

३. पपञ्चसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२१।

वंस देश की राजधानी कौशाम्बी (कोसम्बि) नगरी थी, जिसकी गणना दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त में बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों (महानगरानि) में की गई है। संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त में जो कौशाम्बी को गंगा नदी के तट पर स्थित बताया गया है, उस सम्बन्धी समस्या का समाधान हम प्रथम परिच्छेद में संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय तथा द्वितीय परिच्छेद में गंगा नदी का पालि-परम्परा के अनुसार विवरण प्रस्तुत करते समय कर चुके हैं। यहाँ हमें यही कहना है कि मनोरथपूरणी[1] में वर्णित बक्कुल की कथा को प्रधानता देकर, जहाँ कौशाम्बी को स्पष्टतः यमुना नदी के तट पर स्थित बताया गया है, हमें संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त की उपेक्षा कर देनी चाहिये, क्योंकि कौशाम्बी नगर की प्रायः पूर्णतः निश्चित आधुनिक स्थिति से उसकी कोई संगति नहीं है। बुद्ध-काल में और उसके बाद कई शताब्दियों तक कौशाम्बी नगरी बौद्ध धर्म का एक मुख्य केन्द्र रही। कौशाम्बी श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले दक्षिणापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी। इस प्रकार उत्तर में कौशाम्बी सड़क के द्वारा साकेत और श्रावस्ती से युक्त थी और दक्षिण में विदिशा, गोनद्ध, उज्जयिनी, माहिष्मती और प्रतिष्ठान से। बावरि ब्राह्मण के शिष्य प्रतिष्ठान से श्रावस्ती को जाते हुए कौशाम्बी में भी रुके थे। एक सड़क कौशाम्बी से राजगृह को भी जाती थी। जीवक उज्जयिनी से लौटता हुआ कौशाम्बी में होकर ही राजगृह गया था।[2] वाराणसी से भी एक व्यापारिक मार्ग उज्जयिनी को जाता था,[3] जो सम्भवतः कौशाम्बी और चेति देश में होकर गुजरता था। कौशाम्बी से यमुना नदी के द्वारा प्रयाग-प्रतिष्ठान तक और उससे आगे गंगा के द्वारा वाराणसी, पाटलिपुत्र और ताम्रलिप्ति तक आवागमन था। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[4] में वर्णित बक्कुल की कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि नदी के द्वारा कौशाम्बी से वाराणसी की दूरी तीस योजन थी, क्योंकि जो मछली शिशु

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२।

३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८; जिल्द पहली, पृष्ठ २५३।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

बक्कुल को निगल गई थी, उसका तीस योजन दूर चलकर वाराणसी में पहुँचना यहाँ दिखाया गया है।

कौशाम्बी नगर का यह नाम क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने दो अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है, (१) यह नगर कौशाम्बी कहलाता था, क्योंकि जब यह बसाया गया था तो इसके आस पास खड़े हुए बहुत से कोसम्ब नामक वृक्ष काटे गये थे,[१] और (२) कुसुम्ब नामक ऋषि के आश्रम के समीप यह नगर बसाया गया था।[२] दूसरी अनुश्रुति का समर्थन हमें अप्रत्यक्ष रूप से अश्वघोष-कृत सौन्दर-नन्द काव्य में भी मिलता है।[३] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कौशाम्बी में तीन प्रसिद्ध सेठ रहते थे, जिनके नाम थे घोषित, कुक्कुट और पावारिक। एक बार ये तीनों भगवान् के दर्शनार्थ श्रावस्ती गये और भगवान् को कौशाम्बी आने के लिये निमन्त्रित किया। भगवान् बुद्ध ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उप-र्युक्त तीनों सेठों ने अलग-अलग एक-एक विहार बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान किया। घोषित द्वारा बनवाया गया विहार घोषिताराम कहलाया और शेष दो सेठों के द्वारा बनवाये गये विहार उन्हीं के नाम पर क्रमशः कुक्कुटाराम और पावारिकम्बवन (प्रावारिक आम्रवन) कहलाये।[४] इन तीनों विहारों की स्थिति के सम्बन्ध में सातवीं शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। यूआन् चुआङ का कहना है कि घोषिताराम विहार कौशाम्बी नगर के बाहर, उसके दक्षिण-पूर्व दिशा में, स्थित था। यहीं यूआन् चुआङ ने अशोक द्वारा स्थापित एक स्तूप को भी देखा था जो २०० फुट ऊँचा था।[५]

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३००।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८९-३९०।

३. ककन्दस्य मकन्दस्य कुशाम्बस्येव चाश्रमे। पुर्यो यथा हि श्रूयन्ते तथैव कपिलस्य तत्। सौन्दरनन्द १।५८।

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१९; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ २३४।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६९।

यूआन् चुआङ के समय में यह दो-मंजिले विहार के रूप में अवशिष्ट था।[१] पावारिकम्बवन (प्रावारिक आम्रवन) घोसिताराम के पूर्व में था। यूआन् चुआङ ने इस विहार की पुरानी बुनियादों को देखा था।[२] भगवान् बुद्ध के स्नानागार के भग्नावशेषों को भी यूआन् चआङ ने देखा था।[३]

उपर्युक्त तीनों विहारों के अतिरिक्त बदरिकाराम नामक एक अन्य विहार भी कौशाम्बी में था, जिसका उल्लेख तिपल्लत्थमिग जातक में है। यहाँ भगवान् बुद्ध ठहरे थे और उक्त जातक का उपदेश दिया था। एक बार राहुल ने भी यहाँ रह कर भिक्षु-नियमों का अनुशीलन किया था। एक अन्य अवसर पर हम यहाँ रहने वाले एक भिक्षु को, जिसका नाम खेमक था, बीमार पड़ते देखते हैं, जिसकी परिचर्या के लिये घोषिताराम के भिक्षुओं ने दासक नामक भिक्षु को भेजा था।[४] सारत्थप्पकासिनी[५] के अनुसार बदरिकाराम की दूरी घोसिताराम से एक गावुत (करीब दो मील) थी।

यह उल्लेखनीय है कि कौशाम्बी मे एक परिब्राजकाराम भी था। वहाँ पर अपने जाने के बारे में एक बार आनन्द ने भगवान् को बताया था।[६] राजगृह और श्रावस्ती में बुद्ध-काल मे विद्यमान परिब्राजकारामो का उल्लेख हम क्रमशः इन नगरों के वर्णन-प्रसंग में कर भी चुके है। वैशाली में भी दो प्रसिद्ध परिब्राजकाराम थे, जिनका वर्णन हम आगे यथास्थान करेंगे।

भगवान् बुद्ध ने अपना नवाँ वर्षावास कौशाम्बी मे किया था और इसी वर्ष वे यहाँ से कुरु राष्ट्र भी गये थे, जिसका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके है। बुद्धत्व-प्राप्ति के दसवें वर्ष में कौशाम्बी के भिक्षु-संघ में कलह उत्पन्न हुआ जिससे खिन्न होकर भगवान् कौशाम्बी से क्रमश बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस

---

१. वहीं, पृष्ठ ३७०।

२. वहीं, पृष्ठ ३७१।

३. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ २३६।

४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३७७ (खेमक-सुत्त)।

५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१६।

६. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३७।

(मिग) दाय होते हुए पारिलेय्यक के रक्षित वनखण्ड में पहुँचे जहाँ उन्होंने दसवाँ वर्षावास किया और उसके बाद श्रावस्ती चले गये।[1] कौशाम्बी में निवास करते समय ही भगवान् ने कौशाम्बिक भिक्षुओं के कलह के शमनार्थ मज्झिम-निकाय के कोसम्बिय-सुत्तन्त का उपदेश दिया था। एक अन्य अवसर पर हम भगवान् को अनूपिया से कौशाम्बी आते देखते हैं।[2] सुरापान-जातक से हमें सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् चेति रट्ठ की भद्दवती या भद्दवतिका नगरी से भी कौशाम्बी गये थे। विनय-पिटक के उत्क्षेपणीय कर्म सम्बन्धी नियमों का विधान भगवान् ने कौशाम्बी में निवास करते समय ही किया था।[3] कौशाम्बी में जाते समय हम अक्सर भगवान् को घोसिताराम में निवास करते देखते हैं। इस प्रकार दीघ-निकाय के जालिय-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था और यहीं मण्डिस्स परिव्राजक और जालिय नामक साधु उनसे मिलने आये थे। इस घटना का उल्लेख दीघ-निकाय के महालि-सुत्त में भी है। मज्झिम-निकाय के सन्दक-सुत्त में भी हम भगवान् को कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करते देखते हैं। इसी निकाय के बोधि राजकुमार-सुत्तन्त से भी हमें यह सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् ने कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार किया था। मज्झिम-निकाय के उपक्किलेस-सुत्तन्त का उपदेश भी कौशाम्बी के घोसिताराम में दिया गया था। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के पारिलेय्य-सुत्त, खेमक-सुत्त, पिण्डोल-सुत्त और सेख-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करते हुए ही दिया था। भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त उनके प्रधान शिष्यों के भी कौशाम्बी और उसके घोसिताराम में निवास करने के उल्लेख हैं। आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज के कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करने तथा उदयन के साथ उनके संलाप का वर्णन संयुत्त-निकाय के भरद्वाज-सुत्त में है। इसी निकाय के घोसित-सुत्त, छन्न-सुत्त तथा ब्राह्मण-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि आनन्द ने भी विभिन्न अवसरों पर कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार किया था। आनन्द और कामभू ने कौशाम्बी में विहार किया,

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२२-३३४।

२. वहीं, पृष्ठ ४८०।

३. वहीं, पृष्ठ ३५८-३६१।

इसका उल्लेख सयुत्त निकाय के कामभूम-सुत्त मे है। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर उदायी स्थविर के सहित आनन्द कौशाम्बी के घोसिताराम मे ठहरे, इसका उल्लेख इसी निकाय के उदायी-सुत्त मे है। अगुत्तर-निकाय के चतुक्क-निपात मे भी हम आनन्द को कौशाम्बी के घोषिताराम मे विहार करते देखते हैं। स्थविर उपवान के साथ धर्मसेनापति सारिपुत्र कौशाम्बी गये और घोषिताराम मे ठहरे, यह सूचना हमे सयुत्त-निकाय के उपवान-सुत्त मे मिलती है। आयुष्मान् सविट्ठ, नारद और आनन्द मिलकर कौशाम्बी गये थे और वहाँ के घोसिताराम मे ठहरे थे, यह हमे सयुत्त निकाय के कोसम्बी-सुत्त से विदित होता है। एक अन्य अवसर पर भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद हम आर्य महाकात्यायन को कौशाम्बी के समीप एक वन मे बारह अन्य भिक्षुओ के साथ निवास करते देखते है। द्वितीय सगीति से कुछ समय पूर्व हम आयुष्मान् यश काकण्डपुत्त को वैशाली से कौशाम्बी जाते देखते है।[1]

कोशाम्बी के पास एक सिसपा-वन (शीशम के वृक्षो का वन) था, जिसमे विहार करते भगवान् को हम सयुत्त-निकाय के सिसपा-सुत्त मे देखते हैं। कोसल दश के विवरण मे हम देख चुके है कि एक सिसपा-वन उसके नगर सेतव्या के उत्तर मे भी था। इसी प्रकार पचाल जनपद के विवरण मे हम देखेंगे कि एक सिसपा-वन आलवी के समीप भी स्थित था।

कौशाम्बी मे यमुना नदी के तट से लगा हुआ राजा उदयन का 'उदक वन' नामक एक उपवन भी था। पिण्डोल भारद्वाज यहाँ अक्सर ध्यान के लिये जाया करते थे। एक बार राजा उदयन को भी हम वहाँ स्त्रियो-सहित आमोद-प्रमोद के लिये जाते देखते है।

भगवान् बुद्ध के शिष्य बक्कुल स्थविर का जन्म कौशाम्बी मे ही हुआ था। खुज्जुत्तरा दासी, जो बाद मे अग्र उपासिका बनी, कौशाम्बी के घोसित या घोसक श्रेष्ठी की दाइ की कन्या थी। भिक्षुणी सामा, जो कौशाम्बी-नरेश उदयन की रानी सामावती की प्रिय सखी थी, और उसकी मृत्यु के बाद जो दुःखाभिभूत होकर

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५०; मिलाइये महावंस ४।१७ (हिन्दी अनुवाद)।

भिक्षुणी हो गई थी, कौशाम्बी-निवासिनी ही थी।[१] भगवान् बुद्ध के शिष्य तिस्स थेर, जो एक गृहपति-पुत्र थे, कौशाम्बी में ही पैदा हुए थे।[२]

कौशाम्बी के घोसिताराम के पास प्लक्षगुहा (पिलक्खगुहा) नामक गुफा थी, जहाँ भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सन्दक नामक परिव्राजक निवास करता था। यहीं देवकट सोब्भ नामक एक प्राकृतिक जलकुण्ड था, जिसे देखने के लिये आनन्द कुछ अन्य भिक्षुओं के सहित गये थे और यहीं सन्दक परिव्राजक से उनका संलाप हुआ था जो, मज्झिम-निकाय के सन्दक-सुत्तन्त में निहित है। पिलक्ख गुहा (प्लक्ष गुहा) का यह नाम आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार इसलिये पड़ा था कि इसके द्वार के समीप पिलक्ख (संस्कृत प्लक्ष) या पाकर के पेड़ लगे हुए थे।[३] प्लक्षगुहा को आधुनिक पभोसा ('प्रभास' नाम से जिसकी ख्याति एक पौराणिक तीर्थ के रूप में भी है) की पहाड़ी की गुफा से मिलाया जा सकता है, जो कोसम गाँव (कौशाम्बी) से पश्चिम दिशा में दो या ढाई मील दूर है और जहाँ दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के अभिलेख भी मिले है। शुङ्गो के काल में यहाँ बहसतिमित (बृहस्पति मित्र) नामक राजा के द्वारा कस्यपीय (काश्यपिक) अर्हतो के निवास के लिये गुफाएँ बनवाई गई थी, ऐसा एक अभिलेख से विदित होता है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल के कई शताब्दियों बाद तक भी कौशाम्बी नगर बौद्ध धर्म का केन्द्र बना रहा। अशोक के साम्राज्य का वह एक अंग था। इस समय इलाहाबाद के किले में स्थित अशोक-स्तम्भ पहले कौशाम्बी मे ही था। इस स्तम्भ के लेख में महामात्रों को आज्ञा दी गई है कि वे संघ मे फूट डालने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों को कौशाम्बी से निकाल दें। इससे यह विदित होता है कि संघ-भेदक प्रवृत्ति, जो कौशाम्बी में बुद्ध के जीवन-काल में दृष्टिगोचर हुई थी, अशोक के काल तक भी निःशेष नही हुई थी। महावंस[४] के वर्णनानुसार कौशाम्बी के घोसिताराम के तीस हजार भिक्षु उरुधम्मरक्खित नामक भिक्षु की अध्यक्षता मे लंका में अनुराधपुर के

---

१. थेरीगाथा, पृष्ठ ५१-५२ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८५।

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६८७।

४. २९।३४ (हिन्दी अनुवाद)।

महास्तूप विहार के शिलान्यास-महोत्सव में भाग लेने के लिये द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व लंका गये थे। कनिष्क के समय में बुद्धमित्रा या बुद्धिमित्रा नामक भिक्षुणी ने बोधिसत्व की एक मूर्ति कौशाम्बी में स्थापित की थी। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान ने कौशाम्बी की यात्रा की थी। वह यहाँ वाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय से उत्तर-पश्चिम में १३ योजन की यात्रा करने के पश्चात् आया था।[1] फा-ह्यान ने 'घोचिरवन' के रूप में घोषिताराम को अपने समय में भी विद्यमान देखा था। उस समय यहाँ हीनयान सम्प्रदाय के कुछ भिक्षु निवास करते थे।[2] यूआन् चुआङ ने कौशाम्बी की दो बार यात्रा की और उसने यहाँ के विहारों के सम्बन्ध में जो साक्ष्य दिया है, उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यूआन चुआङ ने कौशाम्बी और उसके आसपास स्थित दस विहारों के खंडहर देखे थे, जहाँ हीनयान सम्प्रदाय के ३०० भिक्षु उस समय भी निवास करते थे।[3]

कौशाम्बी की आधुनिक पहचान कोसम नामक गाँव के रूप में, जो यमुना नदी के बायें तट पर इलाहाबाद से सीधे रास्ते से करीब ३० मील दक्षिण-पश्चिम में है, कनिंघम ने की थी।[4] यद्यपि स्मिथ ने इस पहचान को स्वीकार नहीं किया था और उनका विचार था कि कौशाम्बी को हमें कहीं दक्षिण में बघेलखंड के आसपास खोजना चाहिये,[5] परन्तु कनिंघम और स्मिथ के बाद इस सम्बन्ध में जो खोजें हुई हैं और अभी हाल में प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास-विभाग के तत्वावधान में कोसम की खुदाई के परिणामस्वरूप घोषिताराम के अवशेषों का जो महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त व्यवस्थित अन्वेषण हुआ है, उससे इस गाँव के बुद्धकालीन कोसम्बी होने में कोई सन्देह नहीं रह गया है। कौशाम्बी क्षेत्र में चारों ओर दूर तक जो टीला सा दिखाई देता है, उसे उदयन के किले का परकोटा बताया जाता

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६१।

२. वहीं, पृष्ठ ६२।

३. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली पृष्ठ ३६६–३६७।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४५४।

५. जनरल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १८९८, पृष्ठ ५०३।

है, परन्तु निश्चयतः इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

पालि साहित्य की एक परम्परा के अनुसार, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, जम्बुद्वीप तीन मण्डलों में विभक्त था। इनमें से एक मण्डल अवन्ती था और शेष दो थे प्राचीन और दक्षिणापथ। अवन्ती देश के दो भाग थे, एक उत्तरी भाग और दूसरा दक्षिणी भाग, जिनके बीच में होकर वेत्तवती (वेत्रवती) नदी बहती थी। दक्षिणी भाग को पालि साहित्य में 'अवन्ति दक्खिणापथ' कहा गया है और उत्तरी भाग को हम उत्तर अवन्ती कह सकते है। अवन्ति दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती (माहिस्सति) नामक नगरी थी और उत्तर अवन्ती की उज्जयिनी (उज्जेनी)।

अवन्ती राज्य नर्मदा नदी की घाटी में मान्धाता नगर से लेकर महेश्वर (इन्दौर) तक फैला हुआ था। पालि परम्परा के अनुसार हमें उत्तर अवन्ती को तो मज्झिम देस में रखना चाहिए और अवन्ति दक्षिणापथ को, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, दक्षिणापथ मे। डा० विमलाचरण लाहा ने "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म"[1] में अवन्ती को मज्झिम देस के अन्दर रक्खा है और "इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज़म एंड जैनिज़म"[2] में अपरान्त में। सम्भवतः पहली बात उन्होंने मललसेकर के अनुसरण पर की है जिन्होंने भी अवन्ती का समावेश मज्झिम देस में किया है,[3] और दूसरी बात के लिये उनका आधार मार्कण्डेय पुराण जान पड़ता है।[4] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ती का राजा चण्ड प्रद्योत महासेन था, जिसने अपनी पुत्री वासवदत्ता (वासुलदत्ता) का विवाह वत्सराज उदयन के साथ किया था। विनय-पिटक के महावग्ग मे कहा गया है कि वह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था।[5] बिम्बिसार ने चण्ड प्रद्योत के साथ मित्रता के सम्बन्ध रक्खे और जब उसे पाण्डु रोग हो गया तो बिम्बिसार ने अपने प्रसिद्ध वैद्य जीवक को उसकी चिकित्सा

---

१. पृष्ठ २२।

२. पृष्ठ ७४।

३. देखिये द्वितीय परिच्छेद में मज्झिम देस के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।

४. देखिये "इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज़म एंड जैनिज़म, पृष्ठ १९, पद-संकेत ३; पृष्ठ ७४।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७१-२७२।

के लिये उज्जेनी (उज्जैन) भेजा और जीवक ने उसे ठीक किया।[1] परन्तु बाद में अजातशत्रु को इस बात से भयभीत होकर कि कहीं चण्ड प्रद्योत उसके राज्य पर चढ़ाई न कर दे हम मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान सुत्त में उसे राजगृह नगर की मोर्चाबन्दी करवाते देखते हैं। यह घटना बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ समय बाद की ही हो सकती है। बुद्ध-परिनिर्वाण के करीब १५० वर्ष बाद अवन्ती मगध साम्राज्य में मिल गया।

बुद्ध-पूर्व काल में अवन्ती की गणना सोलह महाजनपदों में की जाती थी और उसे एक समृद्ध और धनधान्यपूर्ण प्रदेश माना जाता था। बुद्ध-काल में वह एक राज्य के रूप में विकसित हो गया। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सूरसेन जनपद का राजा माथुर अवन्तीपुत्र था जो अवन्ती-नरेश चण्डप्रद्योत का दौहित्र था। इससे यह मालूम पड़ता है कि सूरसेन जनपद पर अवन्ती राज्य का इस समय प्रायः उसी प्रकार का या उससे कुछ कम अधिकार था, जैसा कि अंग पर मगध का, काशी पर कोसल का या भग्ग पर वंस का। कम से कम सूरसेन जनपद को हम अवन्ती राज्य के प्रभाव के अन्तर्गत मान सकते हैं।

बौद्ध धर्म के प्रचार की दृष्टि से अवन्ती का बुद्ध-काल में भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान था और उसके बाद भी। यद्यपि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ति दक्षिणापथ में कम भिक्षु ही बताये गये हैं,[2] परन्तु अवन्ती ने आर्य महाकात्यायन जैसा साधक और महान् प्रचारक भिक्षु बुद्ध-धर्म को दिया, यह उसके लिये कुछ कम गौरव की बात नही है। आर्य महाकात्यायन अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत के पुरोहित के पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद वे स्वयं राजा चण्ड प्रद्योत के पुरोहित हो गये। परन्तु जब भगवान् बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति के बारे में सुना तो श्रावस्ती आये और प्रव्रजित हो गये। आर्य महाकात्यायन ने ही चण्ड प्रद्योत को बुद्ध-धर्म में प्रसन्न किया। अवन्ती में बड़े उत्साह के साथ आर्य महाकात्यायन ने बुद्ध-धर्म का

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. "तेन खो पन समयेन अवन्तिदक्खिणापथो अप्पभिक्खुको होती ति।" महावग्गो (विनय पिटकं), पठमो भागो, पृष्ठ ३२७, (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

प्रचार किया। काली नामक उपासिका और हलिद्दिकानि नामक उपासक उनके प्रसिद्ध गृहस्थ-शिष्य थे। हम उन्हें अवन्ती के कुररघर नगर के पपात पब्बत पर विहार करते संयुत्त-निकाय के दो हालिद्दिकानि सुत्तों में देखते हैं और इसी प्रकार इस निकाय के लोहिच्च-सुत्त में उनके अवन्ती के मक्करकट नामक अरण्य में विहार करने का उल्लेख है। आर्य महाकात्यायन का प्रचार-कार्य अवन्ती तक ही सीमित न था। हम उन्हें राजगृह के तपोदाराम में, श्रावस्ती, सोरेय्य में और मथुरा के गुन्दावन तक में धर्म-प्रचारार्थ जाते देखते हैं। आर्य महाकात्यायन के अतिरिक्त अभय कुमार, इसिदत्त, धम्मपाल और सोण कुटिकण्ण नामक स्थविर अवन्ती-निवासी ही थे। भिक्षुणी इसिदासी भी अवन्ती की निवासिनी थी। बुद्ध-वंस में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के आसन और बिछौने पर स्तूप-रचना 'अवन्तिपुर राष्ट्र' में की गई थी।[१] 'अवन्तिपुर राष्ट्र' से तात्पर्य सम्भवतः अवन्ती राष्ट्र की नगरी उज्जेनी से ही था।

उज्जेनी (उज्जयिनी) अवन्ती राज्य के उत्तरी भाग अर्थात् उत्तर अवन्ती की राजधानी थी। चित्त सम्भूत जातक में कहा गया है, "अवन्ति राष्ट्र में, उज्जेनी में, अवन्ति महाराज राज्य करते थे।" बुद्ध-काल में श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग 'दक्षिणापथ' पर वह एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी, जो प्रतिष्ठान और गोनद्ध के बीच स्थित थी। इस प्रकार उत्तर में उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती जैसे नगरों से तथा दक्षिण में माहिष्मती तथा प्रतिष्ठान से व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त थी। भरुकच्छ (भृगुकच्छ) और सुप्पारक (सोपारा) से भी एक मार्ग उज्जेनी तक आता था। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण के प्रसिद्ध भारतीय नगरों तथा पश्चिमी किनारे के उस समय के प्रसिद्ध बन्दरगाहों से भी यह नगरी व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ी हुई थी। दीपवंस[२] के अनुसार राजा अच्चुतगामि ने उज्जयिनी नगरी की स्थापना की थी। स्थविर महाकात्यायन का जन्म उज्जेनी

---

**१. निसीदनं अवन्तिपुरे रट्ठे अत्थरणं तदा। बुद्धवंस, पृष्ठ ७५ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।**

**२. पृष्ठ ५७।**

में ही हुआ था। भगवान् बुद्ध के आदेश पर उन्होंने उज्जेनी में धर्म-प्रचार किया और वहाँ की जनता को सद्धर्म में अनुरक्त बनाया। उन्हीं की प्रेरणा से चण्ड प्रद्योत की महिषी गोपालमाता देवी ने उज्जेनी में काञ्चन-वन उद्यान में एक विहार बनवाया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आधुनिक उज्जैन के समीप स्थित वेश्या टेकरी का स्तूप काञ्चन वन विहार की स्थिति को सूचित करता है। अशोक कुमार होते समय उज्जेनी का ही उपराज था और पाटलिपुत्र से उज्जयिनी जाते हुए मार्ग में वेदिस (विदिशा) या वेदिस गिरि नगर में उसने देवी नामक श्रेष्ठि-पुत्री से विवाह किया था। महेन्द्र का जन्म उज्जेनी में ही हुआ था।

काफ़ी समय बाद तक उज्जेनी बौद्ध-धर्म का केन्द्र बनी रही। द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व लंकाधिराज दुट्ठगामणि ने महास्तूप नामक विहार की आवार-शिला रखने का जो महोत्सव किया, उसमें भाग लेने के लिये उज्जयिनी के 'दक्षिणगिरि-विहार' से चालीस हज़ार भिक्षु गये थे।[1] बहुत बाद में चलकर हम बौद्ध सिद्धों की परम्परा को भी उज्जयिनी से सम्बद्ध पाते हैं।

चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने उज्जयिनी (उ-शे-येन्-न) का उल्लेख किया है। उसने इस नगर का विस्तार तीस 'ली' (करीब ५ मील) बताया है और कहा है कि उस समय यह एक घनी बस्ती वाली नगरी थी। सम्पूर्ण उज्जयिनी प्रदेश का विस्तार यूआन् चुआङ ने ६००० 'ली' या करीब एक हजार मील बताया है। कुछ भग्न विहारों का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है और कहा है कि नगर के बाहर एक स्तूप भी था।[2] वर्तमान मध्य-प्रदेश की उज्जैन ही निश्चयत: बुद्धकालीन उज्जेनी नगरी है। इस स्थान की खुदाई इस समय चल रही है और अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों के प्रकाश में आने की सम्भावना है।

तेलप्पणालि गाँव उज्जेनी के समीप स्थित था। स्थविर महाकच्चान श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध से मिलकर जब उज्जेनी को जा रहे थे तो मार्ग में वे इसी गाँव में ठहरे थे। एक निर्धन बालिका ने अपने सुन्दर बालों को काटकर

---

१. महावंस २९।३५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७०-२७१।

और उन्हें बेचकर स्थविर महाकच्चान को भिक्षान्न का दान किया था। इस बात को जब चण्ड प्रद्योत ने सुना तो प्रसन्न होकर उसने इस लड़की को अपनी रानी बना लिया। बाद में उसके एक पुत्र हुआ जो अपनी नानी के नाम पर गोपाल कहलाया। इसी की माता होने के कारण तेलप्पणालि गाँव की उपर्युक्त महिला, जो चण्डप्रद्योत की रानी बनी, गोपालमाता कहलाती थी। हम पहले देख ही चुके हैं कि उसने उज्जेनी में काञ्चन वन उद्यान मे एक विहार बनवाया था।

माहिस्सति (माहिष्मती) नगरी अत्यन्त प्राचीन थी। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के अनुसार बुद्ध-पूर्व युग के राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राज्यों में विभक्त किया था और उनकी अलग-अलग राजधानियाँ स्थापित की थीं। अवन्ती राज्य और उसकी राजधानी माहिष्मती उन्हीं में से एक थे। माहिष्मती नगरी दक्षिणापथ मार्ग पर पड़ती थी और प्रति-ष्ठान और उज्जयिनी के बीच में स्थित थी। कुछ विद्वानों ने माहिस्सति को महे-श्वर (इन्दौर) से मिलाया है और कुछ ने मान्धाता नामक नगर से जो नर्मदा के किनारे पर स्थित है। माहिस्सति की पूर्वोक्त स्थिति को देखते हुए हम उसे मान्धाता नगर से ही मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। माहिष्मती नगरी दक्षिण अवन्ती अर्थात् अवन्ति-दक्षिणापथ की राजधानी थी।

वेदिस (विदिशा) नगर दक्षिणापथ मार्ग पर गोनद्ध और कौशाम्बी के बीच स्थित था।[1] बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य यहाँ ठहरे थे। महेन्द्र और संघमित्रा की माँ देवी, जिससे अशोक ने कुमार होते समय पाटलिपुत्र से उज्जयिनी की ओर जाते हुए मार्ग में विदिशा नगरी (या विदिशागिरिनगर) में विवाह किया था, यहीं की निवासिनी थी। स्थविर महेन्द्र ने लंका को जाने से पूर्व कुछ समय वेदिस नगर में निवास किया था। उनकी माता देवी ने इस नगर में 'वेदिस-गिरि महाविहार' की स्थापना की थी।[2] बुद्धकालीन वेदिस (विदिशा) नगर

---

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व तथा पंचम परिच्छेद में बुद्धकालीन व्यापारिक मार्गों के विवेचन।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; मिलाइये महावंस १३।६-९ (हिन्दी अनुवाद)।

की आधुनिक भिलसा से या उससे तीन मील दूर बेसनगर से मिलाया गया है, जो अपने भग्नावशेषों, अभिलेखों तथा पुरातत्व सम्बन्धी अन्य सामग्री के लिये अन्यतम ख्याति प्राप्त कर चुका है। महाबोधिवंस के अनुसार वेदिस (विदिशा), की दूरी पाटलिपुत्र से ५० योजन थी। इसी ग्रन्थ के अनुसार वेदिस नगर को उन शाक्यों ने बसाया था जो विडूडभ के भय से भाग कर वहाँ गये थे।[1] इसे उत्तर-कालीन परम्परा पर ही आधारित माना जा सकता है। उपर्युक्त 'वेदिसगिरि महाविहार' के समीप ही अशोक के काल में साँची के स्मारकों का बनवाया जाना आरम्भ किया गया था, परन्तु 'साँची' नाम का उल्लेख पालि साहित्य में कहीं नहीं है। महाबोधिवंस के अनुसार विदिशा में 'हत्थाल्हकाराम' नामक एक अन्य बौद्ध विहार भी था।

गोनद्ध या गोनद्धपुर अवन्ती जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था, जो 'दक्षिणा-पथ' मार्ग पर स्थित था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य गोदावरी के तट के समीप स्थित अपने गुरु के आश्रम से चल कर प्रतिष्ठान और उज्जयिनी होते हुए गोनद्ध आये थे और फिर वहाँ से आगे चलकर उन्हें जो प्रसिद्ध नगर पड़ा था, वह वेदिस (विदिशा) था। इस प्रकार गोनद्ध नगर उज्जयिनी और विदिशा के बीच में स्थित था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[2] के अनुसार गोनद्धपुर का एक अन्य नाम गोधपुर भी था।

विदिशा और कौशाम्बी के बीच 'वनसव्हय' या 'वनसाव्हय' नामक स्थान था, जिसका उल्लेख हमें सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा में बावरि ब्राह्मण के शिष्यों की यात्रा के प्रसंग में मिलता है। यह एक नगर था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा में कहा गया है कि वनसव्हय का एक दूसरा नाम तुम्बव नगर भी था और वह वन सावत्थि भी कहलाता था।[3] विदिशा और कौशाम्बी के बीच में स्थित होने के कारण हम वनसव्हय को अवन्ती और वत्स राष्ट्रों में से किसी एक में रख सकते हैं।

---

१. पृष्ठ ९८-९९।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८३।

३. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८३।

कुररघर अवन्ती जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था। स्थविर सोण कुटिकण्ण यहीं के निवासी थे। इसीलिये वे "कुररघरिय सोण" भी कहलाते थे। इन्हीं के नाम से मिलते-जुलते एक दूसरे स्थविर सोण कोटिवीस थे, जो चम्पा के निवासी थे। काली और कातियानी (कात्यायनी) नामक उपासिकाएँ कुररघर की निवासिनी थीं। कुररघर के समीप एक पपात पब्बत था। स्थविर महाकात्यायन को हम कुररघर के पपात पब्बत पर विहार करते संयुत्त-निकाय के पठम-हालिद्दिकानि-सुत्त तथा दुतिय-हालिद्दिकानि-सुत्त में देखते हैं। अंगुत्तर-निकाय में भी उनके यहाँ विहार करने का उल्लेख है। कहीं-कहीं कुररघर शब्द का प्रयोग एक पर्वत के अर्थ में भी किया गया है, जिससे तात्पर्य कुररघर नगर के समीप स्थित पर्वत से ही हो सकता है। संयुत्त-निकाय के हलिद्दक-सुत्त में हम इस प्रकार स्थविर महाकात्यायन को कुररघर पर्वत पर विहार करते देखते हैं। दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल के विवेचन में हम पहले देख चुके हैं कि कुररघर नगर के समीप पपात पब्बत था। अत उससे ही यहाँ तात्पर्य समझना चाहिये।

वेलुगाम, जिसे वड्ढगाम भी कहा गया है, अवन्ती राज्य का एक गाँव था। स्थविर ऋषिदत्त (इसिदत्त) का जन्म इसी गाँव में हुआ था।[१]

संयुत्त-निकाय के लोहिच्च-सुत्त की अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने मक्करकट को एक नगर माना है। यह नगर इसी नाम के वन के समीप स्थित था।[२] वेलुकण्ड या वेणुकण्ट अवन्ती का एक प्रसिद्ध नगर था। स्थविर कुमापुत्र और उनके एक साथी भिक्षु अवन्ती के इस वेलुकण्ड नगर के ही निवासी थे।[३] एक बार धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन यहाँ गये थे और नन्दमाता ने उनका सत्कार किया था।[४] आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस नगर की दीवारों

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ २३८; देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ५१ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९७।

३. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ १६-१७ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

के चारों ओर उसकी रक्षा के लिये घने बाँसों के पेड़ लगाये गये थे, इसलिये इस नगर का नाम 'वेलुकण्ड' या 'वेणुकण्ट' पड़ा था।[१] हमें अवन्ती राष्ट्र के इस वेलुकण्ड नगर को मगध के दक्षिणागिरि जनपद के पास स्थित 'वेलुकण्टक' नामक बाँसों के वन से भिन्न समझना चाहिये, जिसका वर्णन हम मगध राज्य के प्रसंग में पहले कर चुके हैं।

जातक में लम्बचूलक नामक कस्बे का उल्लेख है, जिसे एक जगह राजा पजक के राज्य में बताया है और दूसरी जगह राजा चण्ड पज्जोत के राज्य में। निश्चयतः यह अवन्ती राज्य का ही एक कस्बा था।

दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त[२] में इन सात गण-तन्त्रों का उल्लेख है, जैसे कि :—

१. शाक्य.... कपिलवस्तु के— सक्या कापिलवत्थवा
२. कोलिय... रामग्राम के—कोलिया रामगामका
३. मौर्य..... पिप्फलिवन के—मोरिया पिप्फलिवनिया
४. मल्ल.....कुसिनारा के —मल्ला कोसिनारका
५. मल्ल.....पावा के—मल्ला पावेय्यका
६. बुलि..... अल्लकप्प के—बुलयो अल्लकप्पका
७. लिच्छवि...वैशाली के—लिच्छवी वेसालिका

इनके अतिरिक्त पालि साहित्य में इन तीन बुद्धकालीन गण-तन्त्रों का और उल्लेख है, जैसे कि (१) मिथिला के विदेह, (२) सुंसुमारगिरि के भग्ग और (३) केसपुत्त के कालाम। इन दस गण-तन्त्रों का भौगोलिक विवरण हम यहाँ पालि स्रोतों के आधार पर देंगे।

शाक्य (पालि सक्य या साकिय) जाति के लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। यही कारण है कि शाक्यमुनि बुद्ध पालि तिपिटक में कई बार "आदिच्चबन्धु" (आदित्य-

---

१. मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१७।

२. दीघ निकायो (दुतियो विभागो), पृष्ठ १३१-१३३ (बम्बई विश्व-विद्यालय द्वारा प्रकाशित संस्करण); देखिये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद,) पृष्ठ १५०-१५१ भी।

बन्धु) कहकर पुकारे गये हैं।[१] सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा में भगवान् बुद्ध को "राजा इक्ष्वाकु की सन्तान शाक्यपुत्र" "अपच्चो ओक्काक राजस्स सक्यपुत्तो" कहकर पुकारा गया है। इससे यही प्रकट होता है कि शाक्य सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और इक्ष्वाकु उनके पूर्व पुरुष माने जाते थे। शाक्य कुमार जब घर छोड़ कर तपस्या के लिये जा रहे थे तो मार्ग में राजगृह के पास पाण्डव पर्वत पर मगध-राज बिम्बिसार उनसे मिला था और उसने उनके माता-पिता और वंश आदि के सम्बन्ध में जब प्रश्न पूछा, तो उन्होंने कहा, "हिमालय की तराई के एक जनपद में कोसल देशवासी····एक राजा हैं। वे सूर्यवंशी (आदिच्चा नाम गोत्तेन) हैं और शाक्य जाति के (साकिया नाम जातिया) हैं। मैं उन्हीं के कुल से प्रव्रजित हुआ हूँ।"[२] इससे भी यही प्रकट होता है कि भगवान् का कुल जाति से 'शाक्य' और गोत्र से 'आदित्य' कहलाता था।[३] भगवान् बुद्ध को जो "गौतम" नाम से पुकारा जाता है, वह आचार्य बुद्धघोष के अनुसार उनके गोत्र का नाम था।[४], परन्तु धर्मानन्द कोसम्बी का बिलकुल गलत मत यह है कि यह उनका व्यक्तिगत नाम ही था।[५] भगवान् बुद्ध को संयुत्त-निकाय के पंचराज-सुत्त में "अंगीरस" कह कर पुकारा

---

१. "आदिच्चबन्धुस्स वचो निसम्म एको चरे खग्गविसाणकप्पो"। खग्ग-विसाण-सुत्त (सुत्त-निपात); "आदिच्चबन्धु सोरितोसि"। सभिय-सुत्त (सुत्त-निपात); वन्दामादिच्चबन्धुनं। सक्कपञ्ह-सुत्त (दीघ-निकाय)।

२. उजुं जानपदो राजा हिमवन्तस्स पस्सतो।·····कोसलेसु निकेतिनो॥ आदिच्चा नाम गोत्तेन, साकिया नाम जातिया। तम्हा कुला पब्बजितोम्हि·····॥ पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपातो)।

३. महावस्तु, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४६ में भी भगवान् बुद्ध को "आदित्य गोत्र" का कहा गया है।

४. "तं तं गोतम पुच्छामि", संयुत्त-निकाय के इस गाथांश की व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष "विसुद्धिमग्ग" १।२ (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण) में कहते हैं, "गोतमा ति भगवन्तं गोत्तेन आलपति"।

५. उपर्युक्त व्याख्या पर टिप्पणी करते हुए आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी कहते हैं "नामेन आलपतीति वत्तुं वट्टति...इदं भगवतो नाममेवाति मञ्ञाम'।

गया है। इससे उनका सम्बन्ध वैदिक ऋषि अंगिरा से जोड़ने की कोशिश में डा० थॉमस व्यथित जैसे हो गये हैं।[1] परन्तु, वास्तव में, जैसा कि संयुत्त-निकाय के विद्वान् हिन्दी-अनुवादकों ने अट्ठकथा के आधार पर दिखाया है, तथ्य यह है कि यहाँ "अंगीरस" शब्द का अर्थ है "जिसके अंग से रश्मियाँ निकलती हैं।"[2] यही अर्थ यहाँ प्रसंग के अनुसार ठीक भी बैठता है।

शाक्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति बुद्ध-पूर्व काल से चली आ रही थी, जिसका उल्लेख करते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने अम्बट्ठ नामक माणवक से कहा था, "अम्बट्ठ ! शाक्य राजा इक्ष्वाकु (ओक्काको) को पितामह कहकर मानते हैं। पूर्व काल में राजा इक्ष्वाकु ने अपनी प्रिय रानी के पुत्र को राज्य देने की इच्छा से अपने ओक्कामुख, करण्डु, हत्थिनिक और सीनिपुर नामक चार ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य से निर्वासित कर दिया। वे निर्वासित हो, हिमालय के पास सरोवर के किनारे एक बड़े शाक-वन में निवास करने लगे। जाति के बिगड़ने के डर से उन्होंने अपनी बहिनों के साथ संवास किया। तब राजा इक्ष्वाकु ने अपने अमात्यों और दरबारियों से पूछा, "कहाँ है भो, इस समय कुमार ?" उन्होंने कहा, "देव, हिमालय के पास सरोवर के किनारे महाशाक वन है। वहीं इस समय कुमार रहते हैं। वे जाति के बिगड़ने के डर से अपनी बहिनों के साथ संवास करते है।" तब राजा इक्ष्वाकु ने कहा, "अहो, कुमार शाक्य समर्थ हैं रे, महा शाक्य हैं रे कुमार !" तब से वे "शाक्य" नाम से ही प्रसिद्ध हुए। वही इक्ष्वाकु उनका पूर्व पुरुष था।" यह उद्धरण दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त से है, जिस पर व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने शाक्यों की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण "सुमंगलविलासिनी" में दिया है, जिसका पूरा उद्धरण यहाँ न देकर उसकी कुछ मुख्य बातों पर ही हम विचार करेंगे।

---

विसुद्धिमग्गदीपिका, पृष्ठ १; देखिये उनकी पुस्तक "भगवान् बुद्ध" (श्रीपाद जोशी-कृत हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०१-१०३ भी। आचार्य बुद्धघोष के मत के विपरीत होने के कारण कोसम्बी जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता।

१. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ २२-२३।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ७६, पद-संकेत १।

पहली बात यह है कि आचार्य बुद्धघोष ने इक्ष्वाकु तक ही शाक्य-वंश के पूर्व पुरुषों की परम्परा सीमित न मान कर उसके पूर्व की भी परम्परा का उल्लेख किया है और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात उनके विवरण की यह है कि उन्होंने शाक्यों के साथ-साथ कोलियो की भी उत्पत्ति का विवरण दिया है। सुमंगलविलासिनी के वर्णनानुसार शाक्य जाति के आदि पुरुष महासम्मत नामक राजा थे। महासम्मत के बाद उनके पुत्र रोज हुए और फिर क्रमशः वरोज, कल्याण, वरकल्याण, मन्धाता, वरमन्धाता, उपोसथ, चर, उपचर और मखादेव आदि अनेक राजा इक्ष्वाकु से पूर्व हुए। राजा इक्ष्वाकु की पाँच रानियाँ थी। उनमे से ज्येष्ठ के चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ थीं। चार पुत्रों के नाम थे ओक्कामुख, करकण्ड (करण्डु), हत्थिनिक और सीनिपुर और पाँच पुत्रियों के नाम थे पिया, सुप्पिया, आनन्दा, विजिता और विजितसेना। इन नौ सन्तानों को जन्म देने के बाद ज्येष्ठ रानी की मृत्यु हो गई। उसके बाद राजा इक्ष्वाकु ने एक और विवाह किया, जिससे उसका जन्तु नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी पुत्र के लिये राजा इक्ष्वाकु ने अपने पूर्व के चार पुत्रों और पाँच पुत्रियों को निर्वासित कर दिया। वे हिमालय चले गये, जहाँ ऋषि कपिल से उनकी भेंट हुई और ऋषि के आदेश पर उन्होंने उनके आश्रम के समीप एक नगर बसाया, जिसका नाम ऋषि के नाम पर "कपिलवत्थु" (कपिल-वस्तु) रक्खा गया। फिर उन्होंने जाति बिगड़ने के भय से दूसरी जगह से पत्नियाँ न लेकर अपनी ही भगिनियों से विवाह कर लिया और राजा इक्ष्वाकु के शब्दों में अपनी इस 'शक्यता' या समर्थता के कारण ही वे "शाक्य" कहलाये। जिस वन में ये लोग कपिल ऋषि के आश्रम के समीप निवास कर रहे थे, उसे अम्बट्ठ-सुत्त तथा सुमंगलविलासिनी में साक (शाक)-वन कहा गया है। डा० ई० जे० थॉमस ने सुझाया है कि यहाँ "शाक वन" का अर्थ सागौन का वन न लेकर शाल वन ही लेना चाहिये, क्योंकि सागौन के वन नैपाल की तराई की प्राकृतिक उपज नहीं हैं।[1] पालि विवरणों से जान पड़ता है कि "साक" शब्द में सम्भवतः श्लेष अभिप्रेत था और यह सम्भव है कि शाक-वन (शाल-वन) में निवास करने के कारण भी

---

**१. देखिये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ७, पद-संकेत २; मिलाइये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६।**

"शाक्य" नाम इन क्षत्रिय कुमारों ने पाया हो, क्योंकि "शाक्य" शब्द का अर्थ शाकवन में रहने वाले भी हो सकता है। अश्वघोष को भी "शाक्य" शब्द की यह व्याख्या मान्य थी।[1] अस्तु, चार भगिनियों से चार भाइयों ने विवाह कर लिया और ज्येष्ठ भगिनी को माता के पद पर समासीन किया। परन्तु इस ज्येष्ठ भगिनी को कुष्ठ रोग (कुट्ठ रोग) हो गया। दूसरों को भी यह रोग न लगे, यह सोचकर चारों भाई इस भगिनी को धरती के अन्दर एक निवास बना कर दूर जगह पर रख आये और उसके भोजन आदि का भी प्रबन्ध कर दिया। ऐसा हुआ कि इसी समय कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर राम नामक वाराणसी का राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर इसी स्थान के समीप एक बड़े कोल नामक वृक्ष के ऊपर निवास बना कर रह रहा था और एक औषध विशेष को खाकर रोग-मुक्त हो गया था। उसका परिचय इस शाक्य कुमारी से हुआ और उसने उसी औषध से इसे भी रोग-मुक्त कर दिया और बाद में दोनों ने विवाह कर लिया, जिससे उनके सोलह बार दो-दो जुड़वाँ अर्थात् कुल बत्तीस पुत्र हुए। तब तक इस बात की सूचना राम के ज्येष्ठ पुत्र को मिली और वह अपने पिता को लेने आया। राम ने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया, परन्तु यह कहा कि यहीं इन कोल वृक्षों को काटकर मेरे लिये नगर बसाओ। ऐसा ही किया गया। चूँकि कोल वृक्षों की स्थिति पर यह नगर बसाया गया था, इसलिये इसका नाम "कोल नगर" या "कोलिय नगर" पड़ा। जिस स्थान पर यह नगर बसाया गया था, वह जंगल में होने के कारण व्याघ्रों के पथ (व्यग्घपथ) में पड़ता था, इसलिये इसका एक नाम "व्यग्घपज्ज" या "व्यग्घपज्जा" भी रक्खा गया। राम और उसकी शाक्य-पत्नी तथा उनके बत्तीस पुत्र इस नगर में रहने लगे। चूँकि वे पहले कोल वृक्ष (कोल रुक्ख) में रहे थे और बाद में उसी के नाम पर बसाये गये "कोल नगर" में रहे, इसीलिये वे "कोलिय" कहलाये। अब इन बत्तीस कुमारों की माता ने एक दिन अपने पुत्रों से कहा, "बच्चो, कपिलवस्तु के शाक्य तुम्हारे मामा होते हैं।" उसके आदेश पर ये बत्तीस तरुण वहाँ गये और शाक्य राजाओं की कन्याओं से विवाह किया। तब से शाक्य

---

१. शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे। तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः। सौन्दरनन्द १।२४।

और कोलियों के पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के काल तक चले आ रहे थे। सुमंगलविलासिनी के अनुसार शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति का यह संक्षिप्त इतिहास है।

महावंस के द्वितीय परिच्छेद में महासम्मत से लेकर भगवान् बुद्ध तक की वंशावली दी गई है। उससे भी यही प्रकट होता है कि शाक्य सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और इक्ष्वाकु उनके पूर्वज थे। 'थेरगाथा' में एक जगह शाक्यों के लिये 'भगीरथ' शब्द का प्रयोग किया गया है[1] जिससे भी उनके सूर्यवंशी क्षत्रिय होने की मान्यता को समर्थन मिलता है। कुणाल जातक में शाक्यों के भगिनी-विवाह और कोलियों के पूर्वजों के कोल वृक्ष में निवास करने और इसीलिये यह नाम प्राप्त करने का उल्लेख है, जिससे इन दोनों जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उस सूचना को समर्थन मिलता है, जो अम्बट्ठ-सुत्त और सुमंगलविलासिनी में दी गई है।

बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ महावस्तु में भी शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विवरण दिया गया है, जो नामों की कुछ छोटी-मोटी विभिन्नताओं के सहित पालि विवरण के प्रायः समान ही है और कुछ बातों में उसका पूरक भी। महावस्तु में निश्चय तौर पर यह बताया गया है कि इक्ष्वाकु कोसल देश के राजा थे और साकेत उनकी राजधानी थी। साकेत से निर्वासित होकर ही शाक्यों के पूर्वज कपिल ऋषि के आश्रम में गये थे और वहाँ बस गये थे।[2] सुमंगलविलासिनी में निर्वासित पुत्रों की संख्या चार बताई गई है जब कि महावस्तु में पाँच और इसी प्रकार नामों में भी कुछ भिन्नता है। मूलभूत बात जो हमें महावस्तु में मिलती है, वह यह है कि शाक्यों के पूर्वज साकेतवासी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और जैसा हम पहले देख चुके हैं, पालि परम्परा के आधार पर भी यही बात सिद्ध है। सामान्यतः शाक्यों और शुद्धोदन और भगवान् बुद्ध के इक्ष्वाकुकुलीन सूर्यवंशी क्षत्रिय होने की बात महावस्तु में इतनी अधिक बार कही गई है[3] कि इस सम्बन्ध में सन्देह के लिये कुछ

---

१. ......समयो महावीर भगीरसानं। गाथा ५२७।

२. महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५१-३५२।

३. देखिये विशेषतः, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३०३; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४६-२४७।

अवकाश ही नहीं रह जाता और पालि परम्परा के आधार पर भगवान् बुद्ध को जो "राजा इक्ष्वाकु की संतान" कहा गया है, उसे पूरा समर्थन महावस्तु से प्राप्त होता है। महावस्तु में वाराणसी के राजा का नाम राम न बताकर "कोल" बताया गया है और उसी के वंशज होने के कारण कोलियों ने यह नाम पाया, ऐसा कहा गया है।[1]

महाकवि अश्वघोष ने अपनी रचनाओं में जगह-जगह पर शाक्यों के इक्ष्वाकु-वंशीय होने की बात दुहराई है। भगवान् बुद्ध के वंश का वर्णन करते हुए उन्होंने शुद्धोदन को इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न राजा बताया है।[2] एक अन्य स्थल पर शुद्धोदन के प्रसंग में "इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः' कहते हुए उन्होंने यही बात कही है।[3] भगवान् बुद्ध के लिये उन्होंने "इक्ष्वाकुकुलप्रदीपः"[4] और "इक्ष्वाकुचन्द्रमाः"[5] जैसे विशेषण प्रयुक्त किये हैं। बुद्ध-चरित (१७।६) में स्थविर अश्वजित् शारद्वती-पुत्र (सारिपुत्र) से कहते हैं, "मेरे गुरु इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुए हैं।" सौन्दर-नन्द (१।२४) में स्पष्टतः पालि परम्परा के समान ही कारण बताते हुए, जैसा हम पहले देख चुके हैं, बताया गया है कि इक्ष्वाकुवंशी ये लोग 'शाक्य' क्यों कहलाये। सौन्दरनन्द काव्य (६।३९) में नन्द की विरह-विधुरा पत्नी को एक स्त्री समझाती हुई कहती है, "इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न राजाओं के लिये तपोवन तो पैतृक सम्पत्ति-स्वरूप हैं।" "इक्ष्वाकुवंशे दायाद्यभूतानि तपोवनानि।" अतः पालि और संस्कृत स्रोतों से यह निश्चित है कि शाक्य इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय थे और ऐसा होने में वे गौरव अनुभव करते थे। ललितविस्तर का तो एक पूरा तीसरा परिच्छेद (कुलपरिशुद्धिपरिवर्तः) ही शाक्यों के कुल की विशुद्धि पर है, जिस पर वहाँ जोर दिया गया है। "शाक्यं कुलं चादृशु वीतदोषम्।"

---

१. महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५३।

२. बुद्ध-चरित १।१; शाक्यों के पूर्वजों को उन्होंने 'इक्ष्वाकवो' कहा है। देखिये सौन्दरनन्द १।१८।

३. बुद्ध-चरित ९।४।

४. बुद्ध-चरित ७।६।

५. बुद्ध-चरित १२।१।

पालि विवरणों से मालूम पड़ता है कि शाक्य लोग अपनी जाति के सम्बन्ध में बड़े अभिमानी थे। सम्भवतः इसी कारण वे अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करते थे। या तो उनके सम्बन्ध कोलिय जाति से थे, जो उनके साथ रक्त से सम्बन्धित और उन्हीं की एक उपशाखा थे, या वे अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करते थे। शुद्धोदन का श्वसुर अंजन शाक्य था और उसके पुत्र सुप्रबुद्ध की पुत्री भद्रा कात्यायनी शाक्यकुमार गौतम को ब्याही थी। इस प्रकार भगवान् बुद्ध की माता शाक्य अंजन की पुत्री थीं और राहुल-माता शाक्य अंजन के पुत्र सुप्रबुद्ध की दुहिता। परन्तु उत्तरकालीन पालि विवरणों में माता महामाया को कोलिय जनपद की राजकुमारी कहा गया है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि देवदह नगरी पर, जो महामाया की जन्म-भूमि थी, और जिसे शाक्यों का नगर ही बताया गया है, सम्भवतः शाक्य और कोलिय दोनों का संयुक्त अधिकार माना जाता था और, जैसा हम अभी कह चुके हैं, कोलिय शाक्यों की एक उपशाखा मात्र ही थे। शाक्य लोगों को इस बात पर सच्चा गौरव था कि उनके अन्दर भगवान् बुद्ध जैसा महापुरुष उत्पन्न हुआ। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद हम उन्हें आत्मगौरवपूर्वक याचना करते देखते हैं, "भगवा अम्हाकं ञातिसेट्ठो। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं" अर्थात् "भगवान् हमारी जाति में श्रेष्ठ थे। हमें भी उनकी धातुओं का एक भाग मिलना चाहिए।" जिस जाति में बुद्ध जैसा पुरुष उत्पन्न हुआ, वह उसके लिये सच्चे अर्थों में गर्व कर सकती थी।

शाक्यों का देश आधुनिक उत्तर-प्रदेश के उत्तर-पूर्व में नेपाल की सीमा से होता हुआ बहरायच और गोरखपुर के बीच स्थित था। उसके पश्चिम में कोसल देश की श्रावस्ती नगरी थी और पूर्व में रोहिणी नदी उसे कोलिय जनपद से विभक्त करती थी। उत्तर में शाक्य जनपद हिमालय के पार्श्व में (हिमवन्त पस्से) स्थित था और दक्षिण में या दक्षिण-पूर्व में वीर मल्लों का गणतन्त्र बसा हुआ था। शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु (कपिलवत्थु) नामक नगरी थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कपिलवस्तु की स्थापना ऋषि कपिल के आश्रम के पास राजा इक्ष्वाकु के चार निर्वासित पुत्रों ने की थी। इसीलिये इस नगरी का नाम 'कपिलवस्तु' रक्खा गया था। बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी समर्थन इस तथ्य को प्राप्त है। अश्वघोष ने अपने 'सौन्दरनन्द" काव्य के प्रथम सर्ग में, जिसका नाम 'कपिलवास्तु वर्णन'

है, विस्तार ६२ श्लोकों में कपिलवस्तु की स्थापना का वर्णन किया है, जो पालि विवरणों के मेल में है। महाकवि ने कपिलवस्तु को 'कपिलवास्तु' पुकारते हुए इस बात पर जोर दिया है कि कपिल ऋषि के आश्रम पर बसाये जाने के कारण ही उस नगर का यह नाम पड़ा, "कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि। यस्मात्तत्पुरं चक्रुस्तस्मात् कपिलवास्तु तत्।"[1] महावस्तु[2] में भी इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है और दिव्यावदान[3] में भी। बौद्ध संस्कृत साहित्य में कपिलवास्तु, कपिलाह्वयपुर और कपिलपुर जैसे नाम भी कपिलवस्तु के लिये प्रयुक्त किये गये है। अश्वघोष ने इस नगर को 'हिमालय की कोख' कहकर पुकारा है। "कुक्षि हिमगिरेरिव।"[4]

शाक्यों की कपिलवस्तु नगरी में उनका एक संस्थागार (संथागार) या सभा-भवन था, जहाँ वे आसनों पर बैठकर शासन-सम्बन्धी मन्त्रणा करते थे।[5] मज्झिम-निकाय के सेख-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के अवस्सुत-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि शाक्यों ने एक नया संस्थागार बनवाया था जिसके सम्बन्ध में उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की थी, "भन्ते! यहाँ हम कपिलवस्तु के शाक्यों ने अभी-अभी एक नया संस्थागार बनवाया है। भन्ते! आप उसका प्रथम परिभोग करें। भगवान् के प्रथम परिभोग करने के बाद शाक्य उसका उपभोग करेंगे।" भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर वहाँ जाकर उन्हें उपर्युक्त सुत्तों का उपदेश दिया था। "महावस्तु"[6] में शाक्यों के संस्थागार या सभा-भवन को 'शाक्य परिषद्' कहकर पुकारा गया है, जहाँ शाक्यों और कोलियों के एक विवाद के सुलझाये जाने का भी वर्णन है। बुद्ध-काल में कपिलवस्तु एक सम्पन्न एवं जनाकीर्ण नगरी थी। जातक के अनुसार वह एक प्राकार या परकोटे से घिरी हुई थी, जिसकी ऊँचाई १८ हाथ थी।

---

१. सौन्दरनन्द १।५७।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४८।
३. पृष्ठ ५४८।
४. सौन्दरनन्द १।४३
५. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।३)।
६. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५२-३५५।

"अट्ठावसहट्ठुब्भेदं पाकारं।"[१] महावस्तु[२] के अनुसार कपिलवस्तु सात प्राकारों से (सप्तहि पाकारेहि) घिरी हुई थी। "बुद्धचरित" और "सौन्दरनन्द" काव्यों के प्रथम सर्ग में अश्वघोष ने कपिलवस्तु नगर का जो वर्णन दिया है, उसे काव्यात्मक ही कहा जा सकता है, परन्तु उसमें कपिलवस्तु की जिस समृद्धि और कुशल नगर-रचना का वर्णन है, उसे पालि विवरणों से साधारणतः समर्थन प्राप्त होता है।

भगवान् बुद्ध के बाल्य-जीवन से सम्बद्ध तो कपिलवस्तु थी ही, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भी भगवान् ने कई बार उसे अपने आगमन से कृतार्थ किया। पहली बार भगवान् राजगृह से यहाँ गये और शाक्यों ने उन्हें कपिलवस्तु के समीप न्यग्रोधाराम में वास दिया। न्यग्रोध नामक शाक्य ने इस विहार को बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था, इसलिये उसके नाम पर इस विहार का नाम "न्यग्रोधाराम" पड़ा था।[३] इसी समय नन्द और राहुल की प्रव्रज्या हुई और महापजापती गोतमी ने इसी समय उन्हें अपने हाथ से काते-बुने नये दुस्स (धुस्से) के जोड़े को देने का भी संकल्प किया। भगवान् कपिलवस्तु में यथेच्छ विहार करने के पश्चात् अनूपिया होते हुए राजगृह लौट गये, जहाँ उन्होंने अपना द्वितीय वर्षावास किया। जैसा हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण में देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में राजा शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। इसी समय शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदी के पानी को लेकर झगड़ा हुआ। भगवान् इस समय वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहर रहे थे। वे वहाँ से कपिलवस्तु गये और न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) में ठहरे। यह भगवान् के द्वारा की गई कपिलवस्तु की दूसरी यात्रा थी। इसी समय महापजापती गोतमी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और वैशाली लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना पाँचवाँ वर्षावास किया। यहीं पर महापजापती गोतमी ने जाकर, आनन्द की सहायता से, भगवान् से भिक्षुणी बनने की अनुमति प्राप्त की और भिक्षुणी-संघ की स्थापना हुई। इसके बाद तिस्सा,

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ६३।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५।

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।

मित्ता, अभिरूपा नन्दा आदि अनेक शाक्य महिलाएँ भिक्षुणी-संघ की सदस्याएँ बनी। महा श्रावक अनुरुद्ध और भद्दिय कालिगोधापुत्र कपिलवस्तु-निवासी ही थे। इसी प्रकार राहुल, काल उदायि, नन्द, महानाम आदि की जन्मभूमि कपिलवस्तु ही थी। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध ने अपना पन्द्रहवाँ वर्षावास कपिलवस्तु में ही किया था। इस समय जो घटनाएँ घटी, उनका उल्लेख हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में कर चुके है। सम्भवतः इसी वर्ष की घटना है कि भगवान् कोसल देश में चारिका करते हुए एक बार कपिलवस्तु पधारे थे। उस समय सारी कपिलवस्तु में महानाम शाक्य को काफी ढूंढ़-ढाँढ़ करने पर भी ऐसी कोई अतिथिशाला नही मिली, जहाँ वह भगवान् को एक रात भर के लिये टिका सकता। अंगुत्तर-निकाय के भरण्डु-सुत्त में ऐसा कहा गया है। परन्तु ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण नही बताया गया है। भगवान् ने वह रात अपने पूर्व के गुरु-भाई भरण्डु कालाम के आश्रम में रह कर काटी। जब विडूडभ शाक्यों के विनाश पर उतारू हो गया था, तो हम भगवान् को, सम्भवतः उनके महापरिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व,[1] कपिलवस्तु के समीप एक विरल छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठे और अपने मौन प्रभाव से उसे इस दुष्कृत्य से तीन बार विरत करते देखते हैं।[2] कपिलवस्तु में भगवान् की यह अन्तिम झाँकी है, जिसे हम करते है।

ऊपर कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) का उल्लेख हम कर चुके हैं। मज्झिम-निकाय के चूलदुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त का उपदेश महानाम शाक्य के प्रति भगवान् ने कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में ही दिया था। इसी निकाय के मधुपिण्डिक-सुत्तन्त, सेख-सुत्तन्त तथा महा सुञ्ञता-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने न्यग्रोधाराम में ही दिया था। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के पिंडोल-सुत्त, पठम-

---

**१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ४४०, जहाँ इस घटना के समय भगवान् बुद्ध की आयु ७८ वर्ष की बताई गई है।**

**२. पालि विवरण (धम्मपदट्ठकथा) के अनुसार यह वृक्ष शाक्य राज्य की सीमा में ही था, जिसके पास ही एक घना वट वृक्ष कोसल राज्य की सीमा में था। फा-ह्यान ने इस स्थान को एक स्तूप के द्वारा अंकित, श्रावस्ती के दक्षिण-पूर्व ४ 'ली' की दूरी पर, देखा था। देखिये 'गाइल्स: ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६।**

महानाम-सुत्त तथा गिलान-सुत्त भी यही उपदिष्ट किये गये थे। अंगुत्तर-निकाय के चतुक्क-निपात में हम एक बार भगवान् को न्यग्रोधाराम में विहार करते देखते हैं। आयुष्मान् लोमस वंगीस को हम कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार करते संयुत्त-निकाय के कंखेय्य-सुत्त में देखते हैं।

कपिलवस्तु के समीप ही महावन था। वस्तुतः महावन उस बडे प्राकृतिक वन का नाम था, जो कपिलवस्तु से लेकर वैशाली तक फैला था और वहाँ से समुद्र-तट तक चला गया था।[1] वैशाली के समीप महावन में वहाँ की प्रसिद्ध कूटागार-शाला स्थित थी, जिसे 'महावन की कूटागार शाला' कहकर पालि साहित्य में पुकारा गया है और जिसका विवरण हम वैशाली के प्रसंग में देंगे। कपिलवस्तु के समीप महावन में हम दण्डपाणि शाक्य को भगवान् से संलाप करते मज्झिम-निकाय के मधुपिण्डिक-सुत्तन्त मे देखते है। संयुत्त-निकाय के समय-सुत्त से हमें पता लगता है कि एक बार भगवान् भिक्षु-संघ के सहित महावन में विहारार्थ गये थे।

कपिलवस्तु की दूरी राजगृह से ६० योजन पालि विवरणों में बताई गई है।[2] साकेत से वह छह योजन दूर थी, जिसका समर्थन चीनी यात्रियों के विवरणों से भी होता है।[3] कपिलवस्तु नगरी उस मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी, जो श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था और इस प्रकार यह नगरी उस समय के प्रायः सब महा-नगरों से जुड़ी हुई थी। श्रावस्ती से क्रमशः सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर और वैशाली होता हुआ उपर्युक्त मार्ग राजगृह तक आता था और इन सब उपर्युक्त नगरों के व्यापारिक सम्बन्धों को एक दूसरे से जोड़ता था। विशेषतः श्रावस्ती से कपिलवस्तु के व्यापारिक सम्बन्ध अधिक थे और वहीं होकर कपिलवस्तु के लोगों का दूसरी जगह आना-जाना प्रायः होता था। सिन्धु देश के घोड़े तक कपिल-वस्तु में पहुँचते थे, यह इस बात से विदित होता है कि जिस रथ में बैठकर बोधिसत्व

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६७; समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।

३. देखिये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १६-१७।

घूमने के लिये गये थे, उसमें "श्वेत कमल पत्र के रंग वाले चार मंगल सिन्धुदेशीय घोड़े" जोड़े गये थे।[१]

पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने कपिलवस्तु की यात्रा की थी। उसने इसके कई भग्नावशिष्ट कूटागारों का उल्लेख किया है।[२] फा-ह्यान श्रावस्ती से दक्षिण-पूर्व दिशा में १२ योजन चलकर नभिग नामक नगर में आया था जहाँ भगवान् ककुच्छन्द का जन्म हुआ था। इस स्थान से उत्तर में एक योजन से कुछ कम दूरी की यात्रा कर वह कनकमुनि के जन्म-स्थान पर आया और यहाँ से एक योजन से कुछ कम पूर्व मे चलकर वह कपिलवस्तु पहुँचा।[३] सातवीं शताब्दी ईसवीमें चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने श्रावस्ती के समीप से करीब ५०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में चलकर कपिलवस्तु प्रदेश (किल-पि-लो-फ-स्से-ति) में प्रवेश किया था। उसने नगरी कपिलवस्तु को "प्रासाद नगर" कहकर पुकारा है और उसका विस्तार १५ 'ली' बताया है। सम्पूर्ण कपिलवस्तु प्रदेश का विस्तार यूआन् चुआङ के समय में करीब ४००० 'ली' था। चीनी यात्री ने कपिलवस्तु को एक उजाड़ और वीरान अवस्था में पाया था और उसके अनेक प्राचीन स्थान उस समय पहचाने नहीं जाते थे। सम्पूर्ण प्रदेश में यूआन् चुआङ के मतानुसार उस समय १००० बौद्ध विहारों और १० नगरों के भग्नावशेष पाये जाते थे। कपिलवस्तु नगरी में यूआन् चुआङ के समय में एक छोटा सा संघाराम भी विद्यमान था जिसमें कुल ३० भिक्षु सम्मितिय सम्प्रदाय के निवास करते थे। कुछ देव-मन्दिरों का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है,[४] जिनमें एक ईश्वर-देव की भी मूर्ति थी।[५]

कपिलवस्तु नगरी में बुद्ध-जीवन से सम्बन्धित जिन स्मारकों का वर्णन यूआन् चुआङ ने किया है, उनका कुछ परिचय दे देना यहाँ आवश्यक होगा, क्योंकि उनसे

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६-३८।

३. वहीं, पृष्ठ ३६।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १-४।

५. वहीं, पृष्ठ १३।

वहाँ स्थित बुद्धकालीन स्थानों पर प्रकाश पड़ता है और उनकी पहचान के सम्बन्ध में कुछ आधार मिलता है। कपिलवस्तु के दक्षिण में करीब ५० 'ली' दूर यूआन् चुआङ ने एक प्राचीन नगर देखा था जिसे पूर्व के बुद्ध ककुच्छन्द (ककुसन्ध) का जन्म-स्थान बताया जाता था। यूआन् चुआङ ने यहाँ एक स्तूप भी देखा था। इस प्राचीन नगर के दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप था, जो उस स्थान को अंकित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध के धातुओं को कपिलवस्तु के शाक्यों द्वारा स्थापित किया गया था। इस स्तूप के सामने एक पाषाण-स्तम्भ था, जिसे अशोक ने स्थापित करवाया था और जिसकी ऊँचाई ३० फुट थी। उपर्युक्त प्राचीन नगर से ३० 'ली' उत्तर-पूर्व एक अन्य प्राचीन नगर के भग्नावशेष यूआन् चुआङ ने देखे थे जो पूर्व के बुद्ध कनक मुनि (क-नो-क-मो-नि) का निवास-स्थान माना जाता था।[1] ककुच्छन्द और कनक मुनि के जन्म-स्थानों की स्थिति के सम्बन्ध में हम फा-ह्यान के साक्ष्य का पहले उल्लेख कर ही चुके हैं। कपिलवस्तु के उत्तर-पूर्व ४० 'ली' की दूरी पर यूआन् चुआङ ने एक स्तूप के द्वारा अंकित वह स्थान देखा था जहां जामुन के पेड़ के नीचे बोधिसत्व ने ध्यान किया था।[2] कपिलवस्तु के उत्तर-पूर्व में कई सहस्र स्तूप बने हुए थे जो उन सहस्रों शाक्यों की स्मृति-स्वरूप थे जिन्हें विडूडभ ने मौत के घाट उतारा था।[3] हमारी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण

---

१. वहीं, पृष्ठ ५-७।

२. वहीं, पृष्ठ ७; कपिलवस्तु की उत्तर-पूर्व दिशा में ही फा-ह्यान ने भी इस स्थान को देखा था। दूरी के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कुछ न कह कर केवल कई 'ली' दूर ही कहा है। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७-३८।

३. वहीं, पृष्ठ ८-१०; फा-ह्यान ने भी उस स्थान को स्तूप के द्वारा अंकित देखा था जहाँ विडूडभ (जिसे उसने वैदूर्य कह कर पुकारा है) ने शाक्य वंश की स्त्रियों का संहार किया था। देखिये गाइल्स: ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७; यूआन् चुआङ के वर्णन के आधार पर इस प्रकार विडूडभ के द्वारा शाक्यों के संहार के स्थान को तिलौराकोट (कपिलवस्तु) के उत्तर में ही होना चाहिये। इस प्रकार उसे वर्तमान सागरहवा के आसपास माना जा सकता है। परन्तु कुछ लोग गौटिहवा को यह स्थान मानना चाहते हैं, जो तिलौराकोट के

साक्ष्य कपिलवस्तु के जिस स्थान के सम्बन्ध में चीनी यात्री ने दिया है, वह न्यग्रोधाराम के बारे में है। कपिलवस्तु के तीन या चार 'ली' दक्षिण में यूआन् चुआङ ने एक वन में एक अशोक-स्तम्भ को देखा था। यह वन ही 'नि—कु—लु' या न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने प्रथम बार कपिलवस्तु में आने पर और उसके बाद कई बार निवास किया था। अशोक-स्तम्भ इस वन में उस स्थान को अंकित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध अपने पिता शुद्धोदन से मिले थे और उन्हें उपदेश दिया था।[1] इस प्रकार यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर न्यग्रोधाराम विहार कपिलवस्तु के ३ या ४ 'ली' अर्थात् करीब आधा मील या उससे कुछ अधिक दूर दक्षिण में स्थित था। हम अभी देखेंगे कि तिलौराकोट को कपिलवस्तु की ठीक आधुनिक स्थिति माना जा सकता है। उस अवस्था में हम निगलीवा या निगलिहवा गाँव को, जो तिलौराकोट से ४ मील उत्तर-पूर्व मे स्थित है, न्यग्रोधाराम की स्थिति नहीं मान सकते, जैसा कि कुछ लोगों ने बताने का प्रयत्न किया है। हमें न्यग्रोधाराम को तिलौराकोट के दक्षिण में कहीं ढूंढ़ना पड़ेगा, उससे करीब आधा मील या पौन मील की दूरी पर।

स्मिथ ने कपिलवस्तु को बस्ती जिले के पिपरहवा (पिपरावा) नामक स्थान से मिलाया था। उनका कहना था कि पिपरहवा के भग्नावशेष ही फा-ह्यान को कपिलवस्तु के रूप में दिखाये गये थे, जब कि यूआन् चुआङ ने तिलौराकोट को कपिलवस्तु के रूप मे देखा था।[2] यद्यपि यह बात जमने वाली नहीं दीखती, परन्तु इन दोनों चीनी यात्रियों ने कपिलवस्तु की स्थिति के सम्बन्ध में जो विवरण दिये हैं वे इतने विभिन्न प्रकार के हैं कि इसके अलावा और कोई दूसरा निष्कर्ष निकाला ही नहीं जा सकता और न स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में एक मत हो

---

दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यूआन् चुआङ के वर्णन से तो इसे समर्थन प्राप्त नहीं होता।

१. वहीं, पृष्ठ ११; फा-ह्यान ने भी इस स्थान का उल्लेख किया है। देखिये गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७।

२. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३९ में स्मिथ द्वारा लिखित टिप्पणियाँ।

सकता है। इसलिये इन विवरणों के स्थान पर हमें पुरातत्व-सम्बन्धी खनन-कार्य और प्राप्त अभिलेखों से ही इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश मिल सकता है। यूआन् चुआङ के विवरण के आधार पर श्रावस्ती कपिलवस्तु के उत्तर-पश्चिम में थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि श्रावस्ती से ५०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में चलकर चीनी यात्री कपिलवस्तु आया था। कपिलवस्तु और श्रावस्ती की पारस्परिक स्थितियों का यह विवरण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। सहेट-महेट के रूप में श्रावस्ती की पहचान निश्चित हो जाने पर कपिलवस्तु उसके दक्षिण-पूर्व ही हो सकती है, जिससे मेल मिलाना कठिन है। इसीलिये कनिंघम और स्मिथ ने यूआन् चुआङ के विवरण में कही-कही काट-छाँट करने का प्रस्ताव किया है और स्मिथ ने इसी कारण दो भिन्न-भिन्न नगरों की कल्पना की है जिन्हें कपिलवस्तु के रूप में फा-ह्यान और यूआन् चुआङ ने देखा था। जैसा हम अभी कह चुके है, खनन-कार्य और अभिलेखों से इस सम्बन्ध में हमें कुछ अधिक स्पष्ट प्रकाश मिलता है और वह इस प्रकार है। मार्च सन् १८९५ में मागधी भाषा में एक स्तम्भ पर लिखा हुआ अभिलेख नेपाल के निगलीवा नामक गाँव के समीप मिला था। यह स्थान तिलौराकोट से करीब ४ मील उत्तर-पूर्व दिशा में है। इस अभिलेख के अनुसार राजा पियदसि (अशोक) ने अपने अभिषेक के चौदहवे वर्ष में इस स्थान पर स्थित कोणागमन (कोणाकमन) बुद्ध के स्तूप को दुगुना बड़ा किया था और अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष में यहाँ आकर उसकी पूजा की थी। चूंकि फा-ह्यान ने अपने यात्रा-विवरण में कोणागमन बुद्ध के इस स्तूप का उल्लेख किया है और इस स्तूप से एक योजन दूर पूर्व में कपिलवस्तु को स्थित बताया है,[1] अतः यह जान पड़ा कि कपिलवस्तु की स्थिति इस अभिलेख की प्राप्ति से निश्चित हो गई है। परन्तु बाद में पता चला कि जिस स्थान पर उपर्युक्त स्तम्भ मिला था वह उसकी वास्तविक स्थिति नही थी और वह कहीं अन्यत्र से वहाँ लाया गया था। उसमें वर्णित स्तूप के भी चिन्ह वहाँ कहीं आसपास नही पाये गये, (स्वर्गीय बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी को भी वे सन् १८९९ में कहीं नही मिले, देखिए उनकी एँ रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि

---

१. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६।

एण्टिक्विटीज इन दि तराई, नेपाल एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु, पृष्ठ ३०), यद्यपि डा० फूहरर साहब ने, जिन्होंने उपर्युक्त स्तम्भ और उस पर लिखित अभिलेख की खोज की थी, अपनी कल्पना से स्तूप की प्राप्ति का भी विस्तृत वर्णन "मोनोग्राफ औन बुद्ध शाक्यमुनीज बर्थप्लेस इन दि नेपाल तराई" में कर दिया, जिसे अप्रामाणिक होने के कारण बाद में प्रसार से रोका गया। सौभाग्यवश सन् १८९६ में नेपाल की सीमा में, निग्लीवा से १३ मील दक्षिण-पूर्व में रुम्मनदेई नामक स्थान पर एक अन्य अशोक-स्तम्भ पाया गया, जिसपर ब्राह्मी लिपि में एक अभिलेख अंकित था। यह स्तम्भ भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान पर गाड़ा गया था और इसके अभिलेख में लुम्बिनी ग्राम (लुम्मिनि गाम) का स्पष्ट उल्लेख है। "लुम्मिनि गामे उबलिके कटे"। इस "लुम्मिनि गाम" के निर्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह स्तम्भ लुम्बिनीवन के उस स्थान पर गाड़ा गया था जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। अतः आधुनिक रुम्मनदेई ही बुद्धकालीन लुम्बिनी-वन है जहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, यह तो इस अभिलेख से स्पष्ट हो ही जाता है, रुम्मनदेई के रूप में लुम्बिनी की स्थिति निश्चित हो जाने पर यह भी उतना ही सुनिश्चित हो जाता है कि कपिलवस्तु को इस स्थान (रुम्मनदेई) के पश्चिम में होना चाहिये, क्योंकि पालि विवरण के अनुसार लुम्बिनी वन कपिलवस्तु के पूर्व में कपिलवस्तु और देवदह नगरों के बीच में स्थित था। वर्तमान तिलौराकोट लुम्बिनी (रुम्मनदेई) से पश्चिमोत्तर दिशा में करीब १० या १२ मील की दूरी पर स्थित है। अतः तिलौराकोट को हम आसानी से कपिलवस्तु की आधुनिक स्थिति मान सकते है। जैसा हम पहले कह चुके है, यूआन् चुआङ के विवरण के आधार पर स्मिथ को तिलौराकोट के रूप में कपिलवस्तु की आधुनिक स्थिति स्वीकार्य थी। रायस डेविड्स[1], स्वर्गीय बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी[2] और राहुल सांकृत्यायन[3] जैसे

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २१५-२१६, (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि एण्टिक्विटीज इन दि तराई, नेपाल एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु (कलकत्ता, १९०१), पृष्ठ ४९।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ७; पृष्ठ ५४७।

विद्वानों ने भी पर्याप्त ऊहापोह के बाद तिलौराकोट को ही कपिलवस्तु की ठीक आधुनिक स्थिति माना है। फिर भी जब तक स्वयं तिलौराकोट की खुदाई से कपिलवस्तु के सम्बन्ध में स्वतन्त्र साक्ष्य न मिलें, हमें इस पहचान को केवल आनुमानिक ही मानना पड़ेगा। इस क्षेत्र की आगे खुदाई की कितनी भारी आवश्यकता है, यह बताने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जिस लुम्बिनी के शाल-वन में भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, वह शाक्य जनपद का ही एक अंग था। पालि साहित्य में लुम्बिनी को एक जनपद (जनपदे लुम्बिनेय्ये—नालक-सुत्त) कहकर पुकारा गया है, परन्तु यहाँ प्राप्त अशोक के अभिलेख में लुम्बिनी को एक गाँव (लुम्मिनि गामे) कहा गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में यहाँ एक विशाल शालोद्यान था, जो कपिलवस्तु और देवदह के बीच में स्थित था और जिस पर इन दोनों नगर वालों का अधिकार माना जाता था।[1] जैसा हम पहले देख चुके हैं, लुम्बिनी की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह गया है। वह निश्चयतः वर्तमान रुम्मनदेई नामक स्थान ही है जो पूर्वोत्तर रेलवे के नौतनवा स्टेशन से करीब १० मील पश्चिम में है और जहाँ गड़ा हुआ अशोक-स्तम्भ निर्विवाद रूप से घोषणा कर रहा है, "हिद बुधे जाते सक्यमुनि ति।" अर्थात् "यहीं शाक्यमुनि (बुद्ध) उत्पन्न हुए थे।" जैसा हम पहले देख चुके हैं, लुम्बिनी-वन की इस निर्विवाद पहचान ने ही कपिलवस्तु की पहचान करने में भी सहायता की है। लुम्बिनी की गणना चार मुख्य बौद्ध तीर्थ-स्थानों में की जाती है, क्योंकि यहाँ भगवान् तथागत उत्पन्न हुए थे। शेष तीन महान् बौद्ध तीर्थ-स्थान है, बोध-गया, जहाँ भगवान् ने ज्ञान प्राप्त किया, इसिपतन मिगदाय, जहाँ उन्होंने प्रथम धर्मोपदेश किया और कुसिनारा, जहाँ उन्होंने अनुपाधि शेष-निर्वाण-धातु में प्रवेश किया।[2] इन चार पुण्य-स्थानों को दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में दर्शनीय और संवेजनीय अर्थात् वैराग्य उत्पन्न कराने वाले कहा गया है। रुम्मनदेई में गढ़े जिस अशोक-स्तम्भ का हमें पहले उल्लेख कर चुके हैं, उसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि अपने राज्याभिषेक

---

१. देखिये जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६८ (हिन्दी अनुवाद)।

२. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

के बीस वर्ष बाद लुम्बिनी ग्राम (लुम्मिनि गाम) की यात्रा अशोक ने की थी और भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान होने के कारण इस गाँव को राज-कर से मुक्त कर दिया था। "यहाँ भगवान् उत्पन्न हुए थे, इसलिए लुम्बिनी ग्राम का आठवाँ भाग, जो शुल्क (बलि) के रूप में लिया जाता था, उसे छोड़ दिया गया।" बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' में भी अशोक की इस स्थान की यात्रा का वर्णन है। अशोक-स्तम्भ के स्थान पर ही खड़े होकर सम्भवतः उपगुप्त ने उनसे कहा था, "अस्मिन् महाराज, प्रदेशे भगवान् जातः।" पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान ने लुम्बिनी वन की यात्रा की थी। उसने कपिलवस्तु से लुम्बिनी की स्थिति को पचास 'ली' पूर्व में बताया है।[1] युआन् चूआङ ने भी लुम्बिनी-वन की यात्रा की थी। उसने इसे "ल-फ-नि" कहकर पुकारा है और इसके समीप एक छोटी नदी का उल्लेख किया है, जिसे उस समय लोग तेल नदी कहकर पुकारते थे।[2] तिलार नदी के रूप में यह नदी आज भी लुम्बिनी के पास विद्यमान है और इसके पानी में आज भी तेल की गन्ध आती है। रुम्मनदेई (लुम्बिनी शालोद्यान) से १२ मील दूर दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित पिपरहवा स्तूप और उसके ब्राह्मी अभिलेख का उल्लेख हम आगे मोरियों के प्रदेश का विवरण देते समय करेंगे।

पालि निकायों में देवदह को प्रायः शाक्यों का ही कस्बा (निगम) बताया गया है। मज्झिम-निकाय के देवदह-सुत्तन्त के आदि में कहा गया है, "एक समय भगवान् शाक्य देश में शाक्यों के निगम देवदह में विहार करते थे"। संयुत्त-निकाय के देवदहखण-सुत्त में भी हम भगवान् को "शाक्यों के निगम" देवदह में विहार करते देखते हैं। महावंस २।१६ मे भी देवदह के राजा को शाक्य बताया गया है। भगवान् बुद्ध की माता महामाया देवी, मौसी महाप्रजावती गौतमी और पत्नी भद्रा कात्यायनी, देवदह नगरी की ही थीं। महाप्रजावती गौतमी ने तो 'अपदान' में अपना परिचय देते हुए कहा भी है, "पच्छिमे च भवे दानि जाता देवदहे पुरे।

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३८।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चूआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५।

पिता अञ्जन सक्को मे माता मम सुलक्खणा। ततो कपिलवत्थुस्मिं सुद्धोदनघरं गता।" अर्थात् "इस अन्तिम जन्म में मैंने देवदह नगर में जन्म लिया। मेरे पिता अञ्जन शाक्य थे और माता सुलक्षणा। फिर मैं कपिलवस्तु में राजा शुद्धोदन के घर गई।" स्थविर पक्ख और स्थविर रक्खित, जिनके उद्‌गार थेरगाथा में सन्निहित हैं, देवदह नगर के ही निवासी थे। ऐसा लगता है कि देवदह कस्बे पर शाक्यों और कोलियों का संयुक्त अधिकार माना जाता था। देवदह नगरी रोहिणी नदी के पूर्वी किनारे से लगी हुई बसी थी। इस प्रकार सीमा के विचार से तो वह कोलिय जनपद में ही थी और इसीलिये सम्भवतः उसे उत्तरकालीन साहित्य में कोलिय जनपद की राजधानी मान लिया गया है। भगवान् बुद्ध देवदह में कई बार गये थे। इस नगर का नाम देवदह क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में पपंचसूदनी[1] तथा सारत्थप्पकासिनी[2] में कहा गया है कि इस नगर के पास देवदह नामक एक मंगल पुष्करिणी थी, जिसके कारण इस नगर का भी नाम "देवदह" पड़ गया। "देव कहते हैं राजाओं को। यहाँ शाक्य राजाओं की सुन्दर मंगल पुष्करिणी थी, जिसपर पहरा रहता था। वह देवों का दह (पुष्करिणी) होने के कारण देवदह कहलाती थी। उसी को लेकर वह निगम (कस्बा) भी देवदह कहा जाता था।"[3] पपंचसूदनी तथा जातकट्ठकथा से हमें पता चलता है कि इस देवदह निगम के समीप ही (अविदूरे) लुम्बिनी-वन था, जिसके सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं। 'महावस्तु' में देवदह को 'देवडह' कहकर पुकारा गया है।

शाक्यों और कोलियों की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए हम पहले देख चुके हैं कि मूल नगर, जो कोलियों ने बसाया था, "कोल नगर" या "व्यग्घपज्जा" (व्याघ्रपद्या) कहलाता था। कनिंघम ने हार्डी का अनुगमन कर इसे देवदह मान लिया है।[4] परन्तु देवदह को चूंकि सर्वत्र पूर्वकालीन पालि साहित्य में शाक्यों

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८१०।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८६।

३. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४२७, पद-संकेत १ में उद्धृत अट्ठकथा।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४७७।

का ही नगर बताया गया है, इसलिए हम "कोल नगर" या "व्यग्घपज्जा" को देवदह न मानकर रामगाम मानना ही अधिक ठीक समझते हैं, क्योंकि वस्तुत: कोलियों का आदि निवास-स्थान यही नगर (रामगाम) था और केवल यहीं के कोलियों को हम भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके धातुओं में भाग माँगने आते देखते हैं, देवदह के शाक्यों या कोलियों को नहीं, जो कपिलवस्तु के शाक्यों के ही अधीन थे। हमें देवदह को अवश्य 'कोल नगर' या 'व्यग्घपज्जा' से अलग नगर मानना चाहिये।

ऊपर हम देवदह के समीप स्थित शाक्यों की मंगल-पुष्करिणी (मंगलपोक्खरणी) का उल्लेख कर चुके है। जब गौतम बोधिसत्व मंगल पुष्करिणी के तट पर प्रमोद विहार कर रहे थे तो उस समय उन्हें राहुल के जन्म की सूचना मिली थी।[1] इस मंगल पुष्करिणी से तात्पर्य शाक्यों की देवदह-स्थित मंगल पुष्करिणी से ही है, जो लुम्बिनी के भी समीप थी। रुम्मनदेई के वर्तमान भग्नावशेषों के दक्षिण में एक पुराना तालाब है। इसे शाक्यों की मंगल-पुष्करिणी के स्थान पर माना जा सकता है।

देवदह से कपिलवस्तु की दूरी पालि विवरणों में पाँच योजन बताई गई है। इस आधार पर भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने उसे आधुनिक निचलौल के पास मनियराभार (जिला गोरखपुर) से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[2] भिक्षु

---

१. जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ४६; अट्ठसालिनी, पृष्ठ ३० (देवनागरी संस्करण); मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; अट्ठसालिनी का उद्धरण देते हुए डा० विमलाचरण लाहा ने लिखा है कि मंगल-पोक्खरणी के तट पर बुद्ध को राहुल की मृत्यु का समाचार मिला था। (ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ३८)। यह गलत है। अट्ठसालिनी में स्पष्टत: यही उल्लेख है कि यहाँ विहार करते हुए गौतम बोधिसत्व को राहुल के जन्म का समाचार मिला। "...मंगलपोक्खरणीतीरे निसिन्नो....राहुलकुमारस्स जातसासनं सुत्वा....।" पृष्ठ ३०।

२. देखिये "धर्मदूत", अक्टूबर-नवम्बर १९४७, पृष्ठ १३२ में उनके "शाक्य जनपद का लुम्बिनी शालोद्यान" शीर्षक लेख का अंश।

धर्मरत्न एम० ए० ने अभी हाल में इस स्थान की यात्रा कर प्रस्ताव किया है कि वर्तमान सिहपुर से दो मील पूर्व की ओर दुतिहवा नामक स्थान है जहाँ काफी भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। सम्भवतः यही स्थान उनके मतानुसार प्राचीन देवदह हो सकता है।[1] कुछ लोग बनरसिहा गाँव (जिला गोरखपुर) को भी देवदह बताना चाहते है। इसी प्रकार की कुछ और कल्पनाएँ-जल्पनाएं भी है। वस्तुतः जब तक खनन-कार्य इस प्रदेश में नही होता, निश्चयपूर्वक देवदह तथा अन्य कई स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में कुछ नही कहा जा सकता।

शाक्यों का एक अन्य प्रसिद्ध कस्बा चातुमा नामक था। इस कस्बे के समीप आँवलों के पेड़ों का एक वन था जो "आमलकी-वन" कहलाता था। मज्झिम-निकाय के चातुम-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि भगवान् एक बार इस कस्बे में गये थे और आमलकी-वन में ठहरे थे। इसी सुत्त मे आनन्द आदि भिक्षुओ के यहाँ निवास करने का उल्लेख है। चातुमा के शाक्यों का इस कस्बे में एक संस्थागार था, जहाँ वे सार्वजनिक कार्यों के लिये एकत्र होते रहते थे, यह सूचना भी हमे उपर्युक्त सुत्त में मिलती है।

सामगाम शाक्य जनपद में एक गाँव था, जो दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त की सूचना के अनुसार, शाक्यों के वेधञ्ञा नामक नगर के पास था। मज्झिम-निकाय के सामगाम-सुतन्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था। इसी गाँव में जब भगवान् विहार कर रहे थे, तो धर्मसेनापति सारिपुत्र के अनुज चुन्द समणुद्देस ने पावा से आकर आनन्द को यह सूचना दी थी कि निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) ने पावा में निर्वाण प्राप्त किया है। आनन्द ने इस बात की सूचना बाद में भगवान् को दी[2]। अंगुत्तर-निकाय[3] के वर्णनानुसार सामगाम में एक सुरम्य पुष्करिणी थी जिसमें कमल के फूल सदा खिले रहते थे। सामगाम का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस

---

१. देखिये "धर्मदूत" मई-जून १९५५ में प्रकाशित उनका "देवदह की खोज में" शीर्षक लेख, पृष्ठ ३६।

२. सामगाम-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।१।४)।

३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०९।

गाँव में साम, सामक या सामाक अर्थात् सवाँ बहुत अधिकता से होता था। इस-लिए सवाँ की अधिकता के कारण (सामकानं उस्सन्नत्ता) इस गाँव ने यह नाम पाया। *"सामगामं ति संखं गतं।"*[1]

शाक्य जनपद का एक कस्बा सक्कर या सक्खर नामक था। यहाँ आनन्द के साथ भगवान् एक बार गये थे। संयुत्त-निकाय के उपड्ढ-सुत्त का उपदेश भग-वान् ने आनन्द के प्रति इसी कस्बे में दिया था।[2] पंचशिख का पुत्र मच्छरिय कोसिय, जिसका उल्लेख सुधाभोजन जातक में है, यहीं का निवासी था।[3] सक्कर या सक्खर की दूरी श्रावस्ती के जेतवनाराम से ४५ योजन बताई गई है।[4]

शाक्यों के एक प्रसिद्ध गाँव या जनपद का नाम सिलावती (शिलावती या शीलवती) था। यहाँ भगवान् ने संयुत्त-निकाय के सम्बहुल-सुत्त तथा समिद्धि-सुत्त का उपदेश दिया था।[5] स्थविर बन्धुर भी यहीं के निवासी थे। "बुद्धचर्या"[6] में इसे सुह्म जनपद में दिखा दिया गया है, जिसमें संशोधन की आवश्यकता है।

मेदलुम्प (मेतलूप) शाक्य जनपद का एक प्रसिद्ध कस्बा था। भगवान् यहाँ गये थे और मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त का उपदेश यहीं उन्होंने राजा प्रसेनजित् को दिया था। शाक्यो का यह कस्बा कोसल देश के नग-रक या नंगरक नामक कस्बे से केवल तीन योजन की दूरी पर था, ऐसी सूचना हमें उपर्युक्त सुत्त में मिलती है।[7] जिस गाँव में कोसलराज प्रसेनजित् की भग-वान् से भेंट हुई, उसे मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त में मेदलुम्प या मेत-

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८२९।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६१९-६२०।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६७।

४. उपर्युक्त के समान।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १०१-१०२।

६. पृष्ठ २७४, ५६६।

७. "सौम्य कारायण! नगरक से कितनी दूर पर शाक्यों का वह मेतलूप नगर है?" "महाराज, दूर नहीं, तीन योजन है। बाकी बचे दिन में पहुँचा जा सकता है।"

लूप कहा गया है, परन्तु जातक[1] तथा धम्मपदट्ठकथा[2] में इसी घटना का उल्लेख करते हुए गाँव का नाम उलुम्प या उलुम्पा बताया गया है। अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं है कि उलुम्प या उलुम्पा और मेदलुम्प या मेतलूप एक ही गाँव के विभिन्न नाम थे। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी) के आधार पर डा० मललसेकर ने इस गाँव के नाम का एक पाठान्तर "मेदतलुम्प" भी दिया है।[3] मेदलुम्प या मेदतलुम्प-गाँव का यह नाम क्यो पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि यहाँ मेद (चर्बी) के रग के पाषाण अधिकता से पाये जाते थे, इसलिये इस गाँव का यह नाम पड़ा। "मेदवण्णा पासाणा किरेत्थ उस्सन्ना अहेसुं, तस्मा मेदतलुम्पं ति संखं गतं।"[4]

शाक्यो का एक गाँव वेधञ्ञा नामक था, जहाँ एक आम्रवन प्रासाद था। भगवान् यहाँ गये थे और पासादिक-सुत्त का उपदेश दिया था।[5]

सुमंगलविलासिनी के अनुसार वेधञ्ञा मे शाक्यों के आम्रवन में एक धनुर्वेद-शिल्प का शिक्षणालय था, जो "सिप्पुग्गहन पासाद" कहलाता था। यहाँ तीर चलाने की शिक्षा दी जाती थी। मनोरथपूरणी में कहा गया है कि इसके विद्यार्थी एक योजन तक तीर चलाने की योग्यता रखते थे। वेधञ्ञा (पाठान्तर वेदञ्ञा) मूलतः शाक्यो के एक परिवार के लोगों का नाम था जो बाद में उस स्थान के लिये प्रयुक्त होने लगा जहाँ वे लोग रहते थे। वेधञ्ञा (वैधन्वा) नाम पड़ने का कारण आचार्य बुद्धघोष ने यह बताया है कि वे लोग धनुर्विद्या में अत्यन्त विशेषता-प्राप्त थे।[6] दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि सामगाम, जो भी शाक्यों का एक गाँव था, वेधञ्ञा के पास ही स्थित था।

खोमदुस्स शाक्य जनपद में ब्राह्मणों का एक कस्बा था। संयुत्त-निकाय के

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १५१।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।
३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६६३।
४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५३।
५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५९।
६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९०५।

खोमदुस्सक-सुत्त में हम इस गाँव के ब्राह्मणो को सार्वजनिक कार्य से सभागृह में इकट्ठे होते देखते हैं। इसी समय भगवान् यहाँ आ निकले और इन ब्राह्मणों को सन्तों की पहचान पर उपदेश दिया। क्षौम वस्त्रों (खोमदुस्सा) के निर्माण की अधिकता के कारण (उस्सन्नत्ता) इस कस्बे का यह नाम पड़ा था।[1]

कोलियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर हम पहले विवरण दे चुके हैं। वे भी शाक्यों के समान महासम्मत की सन्तान ही थे, अतः क्षत्रिय थे। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उन्होंने भी उनके धातुओं में अपना भाग माँगते हुए आत्मगौरव-पूर्वक कहा था। "भगवा पि खत्तियो, मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतोसरीरानं भागं"। अर्थात् "भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। हमें भी भगवान् की अस्थियों का अंश मिलना चाहिये।" उन्हें यह अंश मिला भी था और उस पर उन्होंने धातु-चैत्य बनवाया था। कोलियों के दो भाग थे। एक देवदह के कोलिय कहलाते थे और दूसरे रामग्राम के। वस्तुतः रामग्राम के कोलियों को ही मूल और स्वतंत्र कोलिय राष्ट्र मानना अधिक ठीक जान पड़ता है। देवदह के कोलिय वस्तुतः शाक्यों के ही अधीन थे और उनके स्वतन्त्र अस्तित्व के पालि तिपिटक में प्रायः साक्ष्य नही मिलते। भगवान् बुद्ध की धातुओं में भाग माँगने भी केवल रामग्राम के कोलिय ही आये थे। यह आश्चर्यजनक और खेद-जनक ही है कि देवदह के कोलियों या शाक्यो को हम इस अवसर पर नहीं देखते।

कोलिय जनपद शाक्य राज्य के पूर्व में, उससे कुछ नीचे हटकर, रोहिणी के उस पार स्थित था। रोहिणी नदी इन दोनों राज्यों की सीमा थी। राजगृह से ये दोनों गण-राज्य पश्चिम दिशा में पड़ते थे। काल उदायी राजगृह में निवास करते हुए भगवान् से अपनी जन्म-भूमि में चलने के लिये प्रार्थना करता हुआ कहता है, "पश्चिमाभिमुख हो रोहिणी को पार करते हुए आपको शाक्य और कोलिय देखें।"[2] कोलिय जनपद के उत्तर-पूर्व में मोरिय गणतंत्र का राज्य था और उसके

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

२. "पस्सन्तु तं साकिया कोलिया च पच्छामुखं रोहिणियं तरन्तं"। थेरगाथा, गाथा ५२९ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

भी उत्तर-पूर्व में आगे चलकर मल्लों का। गोरखपुर जिले की सदर तहसील और उसके आसपास के क्षेत्र को हम साधारणतः कोलिय जनपद की स्थिति मान सकते है।

संयुत-निकाय में भगवान् बुद्ध और पाटलि ग्रामणी का एक सम्वाद उल्लिखित है, जिससे हमें पता लगता है कि कोलिय लोग अपने राष्ट्र मे एक पुलिस-दल भी रखते थे जिसका काम चोर-डाकुओं की खोज करना और उन्हें पकड़ना था। इस पुलिस दल के सिपाही लम्बे-लम्बे बाल रखते थे। "ग्रामणी, कोलियों के लम्बे-लम्बे बाल वाले सिपाहियो को जानते हो?" "हाँ भन्ते, मै उन्हें जानता हूँ।" "ग्रामणी, कोलियों के लम्बे-लम्बे बाल वाले सिपाही किस लिये रक्खे गये है?" "भन्ते, चोरों से पहरा देने के लिये और दूत का काम करने के लिये रक्खे गये है।"[1]

कुणाल जातक से हमें पता लगता है कि रोहिणी नदी का बाँध बाँध कर उसके जल से शाक्य और कोलिय दोनों गणतत्रों के लोग अपने-अपने खेतों की सिंचाई करते थे। एक बार ज्येष्ठ (जेट्ठमूल) मास में जब दोनों की खेती सूख रही थी, नौकरों के साधारण विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया और महान् रक्तपात की आशंका हो गई। परन्तु भगवान् बुद्ध के समझाने से दोनों पक्षों में सुबुद्धि आ गई और आपत्ति टल गई।[2]

कोलियों की प्रथम शाखा की राजधानी देवदह नगरी पर वस्तुत. शाक्य और कोलियों का समान अधिकार माना जाता था। यही कारण है कि पालि निकायो मे, जैसा हम पहले देख चुके है, देवदह को शाक्य जनपद का नगर बताया गया है और उस रूप में उसका उल्लेख हम पहले कर भी चुके है।

कोलियों की दूसरी शाखा की राजधानी रामगाम कोलियों का आदिम नगर था। यह 'कोलनगर' या व्यग्घपज्जा ही था, यह हम पहले कह चुके हैं। महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम पहले देख चुके है कि रामग्राम के कोलियों ने भगवान् बुद्ध की धातुओं का एक अंश प्राप्त किया था और उस पर उन्होंने अपने

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५९४।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ६८, मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५६; सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७२।

नगर रामग्राम में एक स्तूप का निर्माण किया था। बुद्धवंस की धातुभाजनिय कथा में भी इस बात का उल्लेख है। "एको च रामगामम्हि"। इस स्तूप के सम्बन्ध में "महावंस"[1] में कहा गया है, "रामगाम का स्तूप गंगा के किनारे बना हुआ था। वह गंगा के उतार-चढ़ाव में टूट गया। प्रकाशवान् धातु का करण्ड (पिटारी) बहकर समुद्र में प्रविष्ट हो गया।" महावंस के इस विवरण में रामगाम को स्पष्टतः गंगा नदी के किनारे स्थित बताया गया है, परन्तु चीनी यात्री फा-ह्यान और चूआन् चूआङ ने जिस रामग्राम को देखा, वहाँ गंगा या अन्य किसी नदी का उल्लेख नहीं है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने रामग्राम नगर को भग्न अवस्था में, परन्तु उसके स्तूप को अच्छी अवस्था में, देखा था और उसके समीप एक पुष्करिणी का भी उसने उल्लेख किया है जिसमें एक नाग रहता था। फा-ह्यान लुम्बिनी वन से पाँच योजन पूर्व में चलकर "लन्-मो" या रामग्राम में पहुँचा था[2]। युआन् चुआङ ने भी सातवीं शताब्दी ईसवी में "लन्-मो" या "राम देश" (रामग्राम) की यात्रा की थी और वह भी लुम्बिनी वन से ही वहाँ गया था और इन दोनों स्थानों की दूरी उसने २०० 'ली' या करीब ३३⅓ मील बताई है जो फा-ह्यान के पाँच योजन (लगभग ४० मील) विवरण से लगभग मिलती है[3]। इन दोनों चीनी यात्रियों के वर्णनों के आधार पर कनिंघम ने रामग्राम को कपिलवस्तु और कुशीनगर के बीच में मानकर उसे आधुनिक देवकाली नामक गाँव से मिलाया था।[4] चीनी यात्रियों के विवरणानुसार दूरी के विचार से तो कनिंघम की यह पहचान ठीक जान पड़ती है, परन्तु उन्होंने जो दिशाएँ इन स्थानों की दी है उनसे यह मेल नहीं खाती। दिशाओं में उलट-पुलट करना तो कनिंघम का प्रसिद्ध ही है। फिर "महावंस" में जो रामग्राम को गंगा के किनारे पर स्थित होने की बात कही गई है, उसका भी इससे समाधान नहीं होता और इसीलिये कनिंघम

१. ३१।२५-२६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३८-३९।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८२; मिलाइये वाटर्स : औन् युआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८२-४८५।

को उसे केवल सिंहली भिक्षुओं की मनगढ़ंत कल्पना मानना पड़ा है।[१] ए० सी० एल० कारलायल ने वर्तमान रामपुर देवरिया को रामग्राम बताया था।[२] उनका मत इस बात पर आधारित था कि इस स्थान के ५०० फुट उत्तर-पूर्व में एक भग्न स्तूप मिला था जिसे उन्होंने कोलियों के रामग्राम का स्तूप मान लिया था। परन्तु यह पहचान प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती, क्योंकि युआन् चुआङ के वर्णनानुसार रामग्राम का स्तूप इस नगर के दक्षिण-पूर्व में स्थित था, न कि उत्तर-पूर्व में। स्मिथ का आग्रहपूर्वक मत था कि रामग्राम को हमें धर्मोली (धर्मपुरी) के आसपास नेपाल और गोरखपुर की सीमा पर खोजना चाहिए।[३] डा० राजबली पाण्डेय का कहना है कि गोरखपुर के समीप स्थित आधुनिक रामगढ़ ताल ही प्राचीन रामग्राम की स्थिति को सूचित करता है।[४] परन्तु इस रामगढ़ ताल के पास आज कोई स्तूप नही मिलता। इसका समाधान उन्होंने यह कहकर किया है कि सम्भवतः या तो रापती (अचिरवती) इसे बहा ले गई या रामगढ़ ताल ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया।[५] चूँकि महावंस के साक्ष्य पर हम पहले रामग्राम-स्तूप के गंगा नदी के द्वारा बहा ले जाने की बात का उल्लेख कर ही चुके हैं, अतः उसके आधार पर डा० राजबली पाण्डेय के तर्क को माना जा सकता है। कुछ भी हो, हमे "महावंस" मे वर्णित गंगा नदी की तो उपेक्षा करनी ही पड़ेगी। उसे या तो सामान्यतः कोई नदी मात्र मानना पड़ेगा, जिस अर्थ में गंगा का प्रयोग कहीं-कहीं पालि साहित्य में कर दिया गया है, या उसे इस प्रसंग में अचिरवती नदी भी मान सकते है। वस्तुतः जब तक नेपाल की तराई में खुदाई का काम

---

१. वहीं, पृष्ठ ४८४-४८५।

२. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इंडिया, भाग २२, वर्ष १८७५; डा० लाहा ने इस पहचान को स्वीकार किया है। देखिये उनकी "हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया", पृष्ठ ११९।

३. देखिये वाटर्स के "औन् युआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३९ में स्मिथ द्वारा लिखित टिप्पणी।

४. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७०।

५. उपर्युक्त के समान।

अग्रसर न हो तब तक इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। फा-ह्यान के समान यूआन् चुआङ ने भी रामग्राम-स्तूप के समीप एक कुण्ड में एक नाग के रहने और स्तूप की प्रदक्षिणा करने की बात कही है और इस बात का भी उल्लेख किया है कि राजा अशोक ने रामग्राम-स्तूप की धातुओं को निकलवाने का प्रयत्न किया था, परन्तु उपर्युक्त नाग की प्रार्थना पर उसने अपने विचार को छोड़ दिया था।[1] महाकवि अश्वघोष ने भी इसी प्रकार की बात कही है।[2] दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी कहा गया है, "पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामगाम में नागराजों से पूजा जाता है"। "एकं च दोणं पुरिसवरुत्तमस्स रामगामे नागराजा महेन्ति"। महावंस[3] में भी नागों के द्वारा रामग्राम स्तूप की पूजा की बात प्रकारान्तर से कही गई है। इन सब प्रसंगों में नागों से तात्पर्य रामग्राम के नागवंशी क्षत्रियों से है, ऐसा अभिमत डा० राजबली पाण्डेय ने प्रकट किया है।[4] सारनाथ की खुदाई में चुनार के पत्थर का बना हुआ एक आलम्बन मिला है, जिस पर नागों के द्वारा पूजित एक स्तूप दिखाया गया है। इसे रामग्राम के नागों के द्वारा पूजित स्तूप से मिलाने का प्रस्ताव कई विद्वानों ने किया है। इस प्रकार नागों से सम्बन्धित रामग्राम के कोलियों की एक समस्या है, जिसका पूर्ण समाधान होना अभी बाकी है। यूआन् चुआङ ने हमें बताया है कि रामग्राम-स्तूप ईटों का बना हुआ था और उसकी ऊँचाई १०० फुट थी।[5] रामग्राम-स्तूप के समीप एक श्राम-

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑफ फा-ह्यान, पृष्ठ ३९; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

२. "रामपुर में स्थित आठवाँ मूल स्तूप उस समय नागों से रक्षित था, इसलिये राजा ने उस स्तूप से धातुओं को प्राप्त नहीं किया, अपितु उन धातुओं में उसकी श्रद्धा और बढ़ गई।" बुद्ध-चरित, २८।६६।

३. ३१।२७-३० (हिन्दी अनुवाद)।

४. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ६९।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

गेर-विहार का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है।[1] अब हम कोलियों के कुछ अन्य निगमों और ग्रामों के विवरण पर आते हैं।

कक्करपत्त कोलिय जनपद का एक कस्बा था, जहाँ एक बार भगवान् बुद्ध गये थे। यहीं दीघजानु नामक कोलिय रहता था, जिसे भगवान् ने उपदेश दिया था, जो अंगुत्तर-निकाय[2] के दीघजानु-सुत्त में निहित है। वर्तमान ककरहवा बाजार ही बुद्धकालीन कक्करपत्त नामक निगम जान पड़ता है। यह स्थान भारत-नेपाल की सीमा के पास स्थित है।

सज्जनेल कोलिय जनपद का एक कस्बा था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे।[3] यहीं सुप्पवासा कोलियधीता निवास करती थी।

उत्तर या उत्तरक कोलियों का एक कस्बा था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे। यहीं पाटलि ग्रामणी उनसे मिलने आया था और उसे पाटलि-सुत्त का उपदेश दिया गया था।[4]

कुण्डी या कुण्डिया नामक ग्राम कोलिय जनपद में था। इसी के समीप कुण्डधान-वन था। उससे थोड़ी दूर पर ही साणवासि नामक पर्वत था, जहाँ आनन्द ने कुछ समय के लिये निवास किया था। कुण्डी ग्राम के कुण्डधान-वन में निवास करते समय ही भगवान् ने सुप्रवासा कोलिय दुहिता को सुखी और चंगी होने का आशीर्वाद दिया था।[5] कुण्डी, कुण्डिय, कुण्डिया या कुण्डिकोल नामक एक अन्य ग्राम कुरु जनपद में भी था, जिसका परिचय हम कुरु राष्ट्र के विवरण पर आते समय देंगे।

सापुग या सापुगा नामक एक अन्य निगम कोलियों का था। यहाँ एक बार आनन्द चारिका करते हुए गये थे और कुछ काल तक निवास किया था।[6] सापुग या सापुगा के निवासी "सापुगिया" कहलाते थे।[7]

---

१. वहीं, पृष्ठ २०-२१।
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ २८१।
३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२।
४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९३-५९४।
५. उदान-पृष्ठ २३ (हिन्दी अनुवाद)।
६. अंगुत्तर निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९४।
७. उपर्युक्त के समान।

हलिद्दवसन (हरिद्रवसन) कोलिय जनपद का एक प्रसिद्ध कस्बा था। यहाँ एक बार भगवान् गये थे और मज्झिम-निकाय के कुक्कुरवतिक-सुत्तन्त का उपदेश दिया था।[१] संयुत्त-निकाय के मेत्त-सुत्त का उपदेश भी यहीं दिया गया था।[२] गोव्रतिक तपस्वी पुण्ण कोलियपुत्त और कुक्कुरव्रतिक अचेल सेणिय इसी कस्बे के निवासी थे।[३] इस कस्बे का यह नाम आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार इसलिये पड़ा कि जब यह बसाया जा रहा था तो मंगलमय मुहूर्त में हल्दी के रंग के वस्त्र (हलिद्दवसन) पहन कर लोगों ने नक्षत्र-पर्व मनाया था।[४]

मोरिय (मौर्य) लोग क्षत्रिय (खत्तिया) थे और महापरिनिब्बाण-सुत्त में अन्य गणों और संघों के साथ-साथ, जिन्होंने भगवान् के धातुओं के अंशों को प्राप्त करने की प्रार्थना की थी, उनका भी उल्लेख है। वे कुछ देर बाद वहाँ पहुँचे थे, जब कि धातुओं का बँटवारा हो चुका था। इसलिये धातुओं में से तो अंश उन्हें मिल नहीं सके, परन्तु उन्होंने बचे हुए अंगारों को ही प्राप्त किया, जिन पर उन्होंने अपने नगर पिप्फलिवन में स्तूप रचना की। यह स्तूप इसीलिये अंगार-स्तूप (अंगार-थूपो) कहलाता था। 'बुद्धवंस' में कहा गया है "अंगारथूपं कारेसु मोरिया तुट्ठ-मानसा।"[५] यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि शाक्यों से अलग उनका उल्लेख महापरिनिब्बाण-सुत्त में किया गया है। इससे प्रकट होता है कि मोरिय लोग शाक्यों से पृथक् एक क्षत्रिय राष्ट्र थे। परन्तु महावंस-टीका में उनकी उत्पत्ति कपिलवस्तु के शाक्यों से ही कही गई है। इस ग्रंथ के अनुसार मोरिय लोग वास्तव में वे शाक्य ही थे जो विडूडभ के भय से भागकर हिमालय प्रदेश मे चले गये थे, और वहाँ पीपल के वृक्षों के एक वन में नगर बसा कर रहने लगे थे, जिसका नाम इसी कारण "पिप्फलिवन" पड़ा था। यह परम्परा उत्तरकालीन जान पड़ती

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २३१-२३३।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६७१-६७३।

३. कुक्कुर-वतिक सुत्तन्त (मज्झिम० २।१।७)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।

५. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

है। हम जानते हैं कि मौर्यों का स्वतन्त्र गण-तन्त्र भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय ही विद्यमान था। यह सम्भव है कि विडूडभ के कपिलवस्तु को विनष्ट किये जाने के पूर्व ही मोरिय लोग, जो शाक्यो की एक शाखा थे, कपिलवस्तु से पिप्फलिवन में जाकर बस गये हों। विडूडभ के द्वारा शाक्यो का विनाश सम्भवतः बुद्ध-परिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व किया गया था। अतः इतनी जल्दी पिप्फलिवन के मोरियों का एक स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माण करना सम्भव नही जान पड़ता। शाक्यो के विवरण में हम देख चुके है कि कोलिय शाक्यों की एक उपशाखा ही थे। परन्तु महापरिनिब्बाण-सुत्त में शाक्यों से पृथक् उनका उल्लेख है। अतः यदि मोरिय शाक्यों की एक शाखा या उपशाखा रहे भी हों, तो भी एक पृथक् राष्ट्र के रूप में उनका उल्लेख किया जा सकता था, जैसा कि कोलियों के सम्बन्ध में।

कहा गया है कि जिस प्रदेश मे "मोरिय" लोग रहते थे, वहाँ मोर बहुत अधिक थे और उनके शब्दों से वह प्रदेश गुंजायमान रहता था। इसलिए उन लोगों का यह नाम पड़ा। एक अनुश्रुति यह भी है कि जिस नगर को मोरिय लोगों ने बसाया उसके मकान मोर की गर्दन के समान नीले रंग के पत्थरों से बने हुए थे, इसलिए उन लोगों का यह नाम पड़ा। यह भी कहा गया है कि मोरिय लोग अपने नगर की शोभा से अत्यन्त मुदित रहते थे, इसलिए उनका यह नाम पडा। "अत्तानं नगर-सिरिया मोदापी ति"। महावंस-टीका के अनुसार पिप्फलिवन के मोरिय मगध के मौर्य सम्राटों के पूर्वज थे। इस टीका में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (चन्दगुत्त) को पिप्फलिवन के मोरिय राजा की प्रधान महिषी का पुत्र बताया गया है। महावंस-टीका में यह भी कहा गया है कि अशोक की माता धम्मा मोरिय राजकुमारी ही थी।

मोरिय लोगों का प्रदेश, जिसे आकार में अति छोटा ही होना चाहिए, कोलियों के उत्तर-पूर्व और मल्ल राष्ट्र के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में स्थित था। उसके उत्तर या उत्तर-पूर्व में मल्ल राष्ट्र था और दक्षिण में मगध राज्य। कनिघम का मत है कि मौर्य गणतंत्र कुसिनारा से अधिक दूरी पर नही था।[१] पिप्फलिवन नामक नगर, जो मोरिय लोगों की राजधानी था, और जिसके कारण ही वे "पिप्फलिवनिया मोरिया" या पिप्फलिवन के मोरिय कहलाते थे,

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९३।

आधुनिक क्या स्थान हो सकता है, इसका अभी सम्यक् रूप से निर्णय नहीं हो सका है। फिर भी अधिकतर विद्वानों का मत है कि यूआन् चुआङ ने जिस "न्यग्रोध वन" को देखा था, वह सम्भवतः पिप्फलिवन नगर ही था।[1] इस वन से पूर्वोत्तर दिशा में चलकर चीनी यात्री कुशीनगर पहुँचा था।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि न्यग्रोधवन या पिप्फलि वन, जैसा उसे यूआन् चुआङ ने देखा, कुशीनगर (वर्तमान कसया) से दक्षिण-पश्चिम दिशा में था। इस बात का ध्यान रखते हुए ए० सी० एल० कार्लायल ने मौर्यों के पिप्फलि वन की पहचान आधुनिक राजधानी या उपधौलिया (उपधौली) के डीह से की थी, जो गोरखपुर के दक्षिण-पूर्व १४ मील की दूरी पर गुर्रा नदी के तट पर स्थित है।[3] महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम पहले देख चुके हैं कि मोरिय लोगों ने भगवान् बुद्ध की चिता के अंगारों को ही प्राप्त कर उन पर अपने प्रदेश में एक स्तूप बनाया था। फा-ह्यान ने कहा है कि उसने इस स्तूप को सिद्धार्थ के द्वारा छन्दक को लौटाये जाने के स्थान से चार योजन पूर्व में और कुशीनगर (कुशनगर) से बारह योजन पश्चिम मे स्थित देखा था।[4] इस प्रकार इसे हम मोरियों के पिप्फलि नगर की स्थिति मान सकते हैं। परन्तु निश्चित स्थान का निर्धारण करना कठिन है। सन् १८९७-९८ में वर्तमान पिपरहवा गाँव में, जो रुम्मनदेई (लुम्बिनी) से १२ मील दक्षिण-पश्चिम में, और तिलौराकोट (कपिल-वस्तु) से करीब १० मील दक्षिण-दक्षिण पूर्व में स्थित है, प्रसिद्ध अंग्रेज़ ज़मींदार पीपी साहब ने खुदाई का काम करवाया था और उसमें बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई थी, जिसमें एक ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ लेख, एक घड़ा और उसके ऊपर सोने की मछली का ढक्कन भी मिला था। इन्हीं आधारों पर फ्लीट ने इस स्थान को

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३-२४; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९१-४९२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५।

३. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द अठारहवीं, टूर इन दि गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट इन १८७५-७६ एण्ड १८७६-७७।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४०।

कपिलवस्तु से मिलाया था,[1] परन्तु पीपी साहब और रायस डेविड्स् के मतानुसार यह पिपरहवा स्थान नवीन कपिलवस्तु को सूचित करता है जिसे विडूडभ के द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु को विनष्ट कर दिये जाने के पश्चात् बचे हुए शाक्यों ने बसाया था। यह बात मोरियों के पूर्व वर्णित इतिहास को देखते हुए पिपरहवा को पिप्फलिवन मानने के विरोध में नहीं जाती, क्योंकि महावंस-टीका के अनुसार पिप्फलिवन के मोरिय भी शाक्य ही थे, जिन्होने कपिलवस्तु के विनाश के बाद पिप्फलिवन को बसाया था। 'पिपरहवा' शब्द में 'पिप्फलिवन' का पूरी ध्वनि भी विद्यमान है। अत. हम पिपरहवा को भी बुद्धकालीन पिप्फलिवन नगर की स्थिति मान सकते हैं। परन्तु यह अन्तिम निर्णय नही है। अधिकतर हमारा ध्यान उपधौली की ओर ही अब भी जाता है।

मल्ल रट्ठ (मल्ल राष्ट्र) दो भागो में विभक्त था, जिनकी राजधानियाँ क्रमश. कुसिनारा और पावा में थी। इन्ही के आधार पर "मल्ला कोसिनारका' (कुसिनारा के मल्ल) और "मल्ला पावेय्यका" (पावा के मल्ल), ये दो भाग इस वीर जाति के प्रदेशों के अनुसार कहलाते थे। कुसिनारा और पावा के बीच की दूरी दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमगलविलासिनी) मे तीन गावुत (करीब ६ मील) बताई गई है। "पावा नगरतो तीणि गावुतानि कुसिनारानगरं"। इससे प्रकट होता है कि ये दोनों राष्ट्र एक-दूसरे से अधिक दूरी पर नही थे। ककुत्था नदी इन दोनों प्रदेशों की विभाजक सीमा थी। भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण कुसिनारा के मल्लो के 'ग्राम-क्षेत्र' मे ही हुआ था। इसीलिये उन्होंने कहा था, "भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो। न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं" अर्थात् "भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्र मे परिनिर्वृत्त हुए है। हम उनकी धातुओं का भाग किसी को न देगे।" परन्तु द्रोण ब्राह्मण की सलाह पर जब भगवान् की धातुओं का विभाजन हुआ तो अन्य संघों और गणों की तरह मल्ल राष्ट्र की इन दोनों शाखाओं ने भी अपना अलग-अलग भाग पाया। मल्ल लोग वाशिष्ठ गोत्र के क्षत्रिय थे, क्योंकि महापरिनिब्बाण-सुत्त मे आनन्द कुसिनारा के मल्लो को इसी नाम से संबोधित करते दिखाये गये हैं। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में मल्ल राष्ट्र की उपर्युक्त

---

१. जर्नल आँव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०६, पृष्ठ १८०।

दोनों शाखाओं का उल्लेख हमें मिलता है और इसी प्रकार कुस जातक में भी। जैन "कल्पसूत्र" में हमें "नव मल्लई", नव मल्लकि या नौ मल्ल राजाओं के संघ का उल्लेख मिलता है, परन्तु पालि तिपिटक में उनमें से केवल उपर्युक्त दो का ही उल्लेख है।

मल्ल राष्ट्र वज्जि गणतन्त्र और कोसल राज्य के बीच, हिमालय की तराई में, स्थित था। उसके पूर्व या दक्षिण-पूर्व में वज्जि गण-राज्य था जिससे उसकी सीमा सम्भवतः मही (गण्डक) नदी के द्वारा विभक्त थी। मल्ल गणतन्त्र के पश्चिमोत्तर मे शाक्य जनपद था और पश्चिम में सम्भवतः अचिरवती (रापती) नदी के द्वारा उसकी सीमा कोसल राज्य से विभक्त थी।[1] मल्ल राष्ट्र के दक्षिण में मगध राज्य था। मल्ल राष्ट्र की पश्चिम दिशा में ही, कुछ नीचे हटकर, उसके और शाक्य जनपद के बीच, कोलिय राज्य था। मल्ल राष्ट्र और मगध के बीच मोरियों का छोटा सा राज्य स्थित था।

मल्ल राष्ट्र की सीमाओं के ऊपर निर्दिष्ट विवरण से स्पष्ट है कि मगध और कोसल राज्य तथा वज्जि गणतन्त्र उसके पड़ोसी थे। बुद्धकालीन गणतन्त्रों में सबसे अधिक शक्तिशाली वस्तुतः वज्जि और मल्ल ही थे। दीघ-निकाय के जन-

---

१. इस प्रकार मल्ल राष्ट्र कोसल देश के पूर्व में था। इसके विपरीत आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने कहा है, "मल्लों का राज्य वज्जियों के पूर्व में और कोसल देश के पश्चिम में था।" (भगवान् बुद्ध, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३९)। यह नितान्त भ्रामक है। वस्तुतः मल्ल राज्य वज्जियों के पश्चिम या उत्तर-पश्चिम में था और कोसल देश के पूर्व में। कपिलवस्तु से चलकर गौतम बोधिसत्व क्रमशः शाक्य, कोलिय और मल्ल गण-राज्यों में यात्रा करते हुए वज्जियों की वैशाली में आये थे। इससे यह निश्चित है कि वज्जि गण-राज्य से पश्चिम या उत्तर-पश्चिम दिशा में क्रमशः मल्ल, कोलिय और शाक्य गण-राज्य अवस्थित थे। स्वयं आचार्य कोसम्बी ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ ३९ पर ही आगे चल कर लिखा है, "मगध देश से कोसल देश की ओर जाने का रास्ता मल्लों के राज्यों से होकर गुजरता था।" तो फिर मल्लों का राज्य कोसल देश के पश्चिम में किस प्रकार हो सकता था? वस्तुतः वह उसके पूर्व में ही था, अचिरवती और मही नदियों के बीच का प्रदेश।

वसभ-सुत्त में इन दोनों पड़ोसी गणतन्त्रों का साथ-साथ उल्लेख किया गया है। "वज्जिमल्लेसु।" इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक सुत्तन्त में भी इन दोनों गण राज्यों का उल्लेख साथ-साथ किया गया है। परन्तु मल्ल राष्ट्र के सम्बन्ध लिच्छवियों के साथ सम्भवतः अच्छे नहीं थे, यह धम्मपदट्ठकथा में वर्णित उस संघर्ष-मय ढंग से प्रकट होता है जिससे बन्धुल मल्ल अपनी पत्नी मल्लिका को वैशाली की अभिषेक-पुष्करिणी मे स्नान करवाने ले गया था। मल्ल लोग कोसल राज्य की सेवा करना पसन्द करते थे, यह भी बन्धुल मल्ल के उदाहरण से स्पष्ट होता है, यद्यपि वे बड़े स्वाभिमानी और स्वतन्त्रताप्रिय थे, यह भी बन्धुल मल्ल और दीघ कारायण के उदाहरणों से तथा मल्लिका के अपने पति की हत्या के बाद के व्यव-हार से स्पष्ट हो जाता है। मगधराज अजातशत्रु की दृष्टि भी मल्ल राष्ट्र पर रहती थी और बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद अधिक दिन तक सम्भवतः यह गणराष्ट्र अपनी स्वतन्त्र सत्ता को कायम नही रख सका।

मल्ल गणतन्त्र की प्रथम शाखा की राजधानी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, कुसिनारा थी। कुसिनारा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक नगला मात्र था। आनन्द ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में उसे एक क्षुद्र और जंगली नगला "कुड्डनगरकं, उज्जंगलनगरकं" मात्र कहा था। परन्तु भगवान् ने आनन्द को याद दिलाते हुए कहा था कि कुसिनारा प्राचीन काल में कुशावती नाम से एक प्रधान नगर था। "आनन्द ! यह कुसिनारा पूर्व काल मे राजा महासुदर्शन की कुशावती नामक राज-धानी थी, जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाई मे बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तार मे सात योजन थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओं की राजधानी आलकमन्दा. . . .कुशावती राजधानी दिन-रात हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, खाइये-पीजिये, इन दस शब्दों से शून्य न होती थी"[1]। कुसिनारा में भगवान् ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था, इसलिये इसकी गणना चार महान् बौद्ध तीर्थ-स्थानों मे है। कुसिनारा के सम्बन्ध मे ही यह

---

१. दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४३-१४४; मूल पालि के लिये देखिये दीघ-निकायो, दुतियो विभागो, पृष्ठ ११६-११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कहा जाता है, "इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बाणधातुया परिनिब्बुतो ति।" कुसिनारा को एक दर्शनीय और वैराग्यप्रद (संवेजनीय) स्थान बताया गया है। दिव्यावदान[1] के अनुसार जब मगधराज अशोक ने कुशीनगर की यात्रा की तो भगवान् की इस परिनिर्वाण-भूमि को देखकर वे भावावेश के कारण मूर्छित हो गये थे।

कुसिनारा में भगवान् पावा से ककुत्था नामक नदी को पार कर गये थे। यह उनकी अन्तिम यात्रा की बात है, जब भगवान् कुसिनारा में परिनिर्वाण-प्राप्ति के हेतु गये थे। इसके पूर्व भी भगवान् ने कई बार कुसिनारा की यात्रा की थी। एक बार वे आपण से कुसिनारा गये थे और वहाँ से आतुमा चले गये थे।[2] इसी यात्रा के समय कुसिनारा के मल्लों ने अपने संस्थागार में सभा कर निश्चय किया था, "जो भगवान् की अगवानी को नहीं जाय, उसको पाँच सौ दण्ड।"[3] रोज मल्ल, जो पहले बुद्ध-धर्म में प्रसन्न नहीं था, इसी समय भगवान् के दर्शन कर उनका उपासक बना था और विशेषतः शाक-भाजी से उसने भगवान् का सत्कार किया था।[4] जब आनन्द ने मल्लों को भगवान् के महापरिनिर्वाण की सूचना दी, उस समय मल्ल अपने संस्थागार में किसी सार्वजनिक कार्य से इकट्ठे हुए थे।[5] मल्लों के संस्थागार के पास ही बन्धुल मल्ल की भार्या के माँ-बाप का घर था।

चीनी यात्री फा-ह्यान ने कुसिनारा की यात्रा की थी और उसने इसे पिप्फलिवन के मोरियों के अंगार-स्तूप के पूर्व मे बारह योजन की दूरी पर स्थित बताया है, और वैशाली से कुसिनारा की दूरी २५ योजन बताई है।[6] यूआन चुआङ ने दूरी का तो उल्लेख नहीं किया है, परन्तु केवल मोरियों के उपर्युक्त स्तूप से उत्तर-पूर्व दिशा में एक घने जंगल को पार करने के बाद, जिसमे जंगली हाथी, डाकू और

---

१. पृष्ठ ३९४।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५३।
३. वहीं, पृष्ठ २५२।
४. वहीं, पृष्ठ २५२-२५३।
५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४७-१४८।
६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४०-४१।

शिकारी पाये जाते थे, अपना कुसि-नगर (कोउ-शिह्-न-क-लो) में पहुँचना दिखाया है।[1] सन् १८६१ की ऐतिहासिक खुदाई के परिणामस्वरूप कनिंघम ने वर्त्तमान कसया (जिला गोरखपुर) और विशेषतः उसके समीप अनुरुधवा गाँव के टीले को प्राचीन कुसिनारा बताया था,[2] जिसके सम्बन्ध में यद्यपि वाटर्स[3] और स्मिथ[4] ने सन्देह प्रकट किया था, परन्तु बाद की खोजों ने इस पहचान को प्रायः निश्चित प्रमाणित कर दिया है। सन् १८७६-७७ में परिनिर्वाण मंदिर स्तूप के पूर्णतः प्रकाश में आने से यह बात और भी सुप्रमाणित हो गई है। इसी समय परिनिर्वाण मन्दिर के अन्दर एक ऊँचे मंच पर भगवान् बुद्ध की २० फुट लम्बी परिनिर्वाण-मूर्ति यहाँ मिली। इस मंच की एक पटिया पर पाँचवी शताब्दी का यह लेख भी उपलब्ध हुआ " देयधर्मोऽयं महाविहारस्वामिनो हरिवलस्य। प्रतिमा चेयं घटिता दिन्नेन माथुरेण"। इससे स्पष्ट हुआ कि इस मूर्ति के स्वामी हरिवल और शिल्पी मथुरा के दिन्न थे। कुशीनगर की खुदाई में प्राप्त कई मुद्राओं पर इस प्रकार के लेख उत्कीर्ण मिले है जैसे कि, श्री महापरिनिर्वाणविहारे भिक्षुसंघस्य", "कुसनगर"[5] आदि। एक ताम्रपत्र की प्राप्ति भी कसया में हुई है, जिसके लेख का एक अंश है "परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट।"[6] इन सब तथ्यों से इस स्थान का भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण-भूमि होना पूर्णतः निश्चित हो गया है। कसया गोरखपुर से ३२ मील पूर्व तथा देवरिया से २१ मील उत्तर में स्थित है।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५।

२. आर्कलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३; एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९४।

३. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४।

४. अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृष्ठ १६७, पद-संकेत ५ (चतुर्थ संस्करण)।

५. देखिये आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९१०-११; पृष्ठ ६२।

६. आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९११-१२, पृष्ठ १७, १३४।।

कुसिनारा के दक्षिण-पश्चिम दिशा में उसके समीप ही मल्लों का "उपवत्तन" नामक शाल-वन था, जो हरिण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था।[१] इस उपवत्तन शालवन में ही भगवान् ने अन्तिम निवास किया था और यहीं युगल शाल-वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। महापरिनिब्बाण-सुत्त की अट्ठकथा में कहा गया है कि उपवत्तन उद्यान से शाल-वृक्षों की पंक्ति पूर्व की ओर जाकर उत्तर की ओर मुडती थी। इस मोड (उपवत्तन) पर स्थित होने के कारण ही इस शालोद्यान का नाम 'उपवत्तन' पडा था। उपवत्तन शालवन को कनिंघम ने वर्तमान कसया के माथाकुँवर कोट से मिलाया था।[२] यह कोट वर्तमान परिनिर्वाण मंदिर से दक्षिण-पश्चिम दिशा मे ४०० गज की दूरी पर स्थित है। अन्तिम बार कुसिनारा मे आने से पूर्व भी भगवान् यहाँ आये थे। अगुत्तर-निकाय[३] के एक कुसिनारा-सुत्त का उपदेश भगवान् ने मल्लो के उपवत्तन शालवन में ही दिया था। माथाकुँवर कोट के दक्षिण-पश्चिम दिशा में २५०० फुट की दूरी पर अनुरुधवा गाँव के पास एक टीला और चारों ओर भग्नावशेष फैले हुए है। इस स्थान को मल्लो की प्राचीन राजधानी माना जा सकता है।

भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद उनके शरीर को उपवत्तन शाल-वन से कुसिनारा नगर में उसके उत्तर वाले दरवाजे से ले जाया गया था और फिर मध्य में होते हुए उसके पूर्व दिशा वाले द्वार से निकल कर नगर के पूर्व ओर स्थित "मुकुट बन्धन" नामक मल्लों के चैत्य मे भगवान् के शरीर का दाह-संस्कार किया गया था।[४] यह चैत्य "मुकुट बन्धन" इसलिये कहलाता था कि यहाँ मल्ल राजाओं का

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २२२।

२. आर्कलोजिकल सर्वे ऑव इंडिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३; मिलाइये एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४९४-४९६।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३८।

४. महापरिनिब्बाण-सुत्त में कहा गया है कि मल्लों का पहला इरादा यह था कि भगवान् के शरीर को नगर के दक्षिण-दक्षिण ले जाकर, बाहर से बाहर नगर के दक्षिण में उसका दाह-संस्कार करें। परन्तु देवताओं का मन्तव्य यह था कि "मयं भगवतो सरीरं....उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा, उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा

अभिषेक किया जाता था और उनके सिर पर मुकुट बाँधा जाता था।[१] मल्लों ने इस अवसर पर सात दिन तक उत्सव मनाया था। मुकुटबन्धन चैत्य को वर्तमान रामाभार तालाब के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल-स्तूप के खण्डहर से मिलाया गया है, जो माथाकुँवर के कोट से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है।[२]

बलिहरण वनसण्ड नामक वन या वनखण्ड कुसिनारा के समीप ही स्थित था। भगवान् यहाँ कई बार गये थे और निवास किया था। मज्झिम-निकाय के किन्ति-सुत्तन्त तथा अंगुत्तर-निकाय के दो कुसिनारा-सुत्तों का उपदेश कुसिनारा के बलि-हरण-वनखण्ड में ही दिया गया था।

मल्लों की दूसरी शाखा की राजधानी पावा थी। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में भोगनगर से चलकर पावा आये थे और पावा से चलकर कुसिनारा पहुँचे थे। इस प्रकार पावा भोगनगर और कुसिनारा के बीच मे स्थित था। जैसा हम पहले देख चुके है, पावा से कुसिनारा की दूरी तीन गावुत या करीब ६ मील थी। पावा और कुसिनारा के बीच मे ही भगवान् को पुक्कुस मल्लपुत्र नामक व्यापारी मिला था। इसी मार्ग के बीच मे ककुत्था नदी पड़ती थी, जिसे भगवान् ने पार किया था। पावा के समीप ही चुन्द कर्मारपुत्र का आम्रवन था जहाँ भगवान् ठहरे थे। चुन्द पावा का ही निवासी था और उसके यहाँ भगवान् ने अन्तिम भोजन किया था। संगीति-परियाय-सुत्त (दीघ० ३।१०) के अनुसार जब भगवान् पावा नगर में चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन में विहार कर रहे थे तो मल्लों ने एक नया संस्थागार हाल ही में बनवाया था जिसमे प्रथम निवास करने की उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की थी। भगवान् वहाँ पाँच सौ भिक्षुओ के सहित गये थे और धर्मोपदेश किया था। एक पूर्व अवसर पर भी भगवान् पावा में गये थे और

---

मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा, पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं, एत्थ भगवतो सरीरं झापेस्सामा'ति।" देवताओं के अभिप्राय के अनुसार ही कार्य किया गया।

१. दिव्यावदान (पृष्ठ २०१) में मल्लों के एक 'मुकुटबन्धन' ("मकुट-बन्धनं") नामक चैत्य का उल्लेख वैशाली के प्रसंग में भी किया गया है।

२. आर्केलौजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३।

वहाँ के अजकलापक या अजकपालिय नामक चेतिय मे ठहरे थे। "उदान"[1] में इसका उल्लेख है। इस चैत्य में अजकलाप नामक यक्ष को बकरों की बलि दी जाती थी। इस यक्ष ने बुद्ध को डराने का प्रयत्न किया था। परन्तु भगवान् ने उसे विनीत किया· स्थविर खण्ड सुमन की जन्म-भूमि पावा नगरी ही थी।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पावा निगण्ठों का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र-स्थान था। दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के सामगाम-सुत्तन्त से हमे मालूम होता है कि जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर (निगण्ठ नाटपुत्त) का निर्वाण यहीं हुआ था। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, पावा की निश्चित स्थिति पालि विवरण के अनुसार भोगनगर और कुसिनारा के बीच में थी। कनिंघम ने उसे गोरखपुर के पडरौना नामक गाँव से मिलाया था।[2] यह स्थान कसया से गण्डक की ओर १२ मील की दूरी पर है। यहाँ २२० फुट लम्बा, १२० फुट चौड़ा और १४ फुट ऊँचा एक टीला कनिंघन को मिला था और कुछ बुद्ध-मूर्तियाँ भी। कनिंघम की इस पहचान को प्रामाणिक न मान सकने का केवल यह एक कारण हो सकता है कि पडरौना कसया (कुशीनगर) से बारह मील उत्तर-पूर्व में है। अतः इसे यदि हम प्रामाणिक मानें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वैशाली से आगे बढ़ते हुए भगवान् बुद्ध पहले उस स्थान पर गये जहाँ आज पडरौना है और फिर इस स्थान से १२ मील दक्षिण-पश्चिम लौटकर कुसिनारा आये जिसकी स्थिति आज कसया के रूप में प्रायः निश्चित हो चुकी है। इसी एक आपत्ति को ध्यान मे रखते हुए कार्लायल ने आगे खोज की और कसया से प्रायः दस मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित फाजिलनगर (फाजिलपुर) के टीलों मे, विशेषतः मठियाँव डीह से पावा

---

१. पृष्ठ ८ (हिन्दी अनुवाद); मूल पालि के पाठ के अनुसार अजकलापक या अजकपालिय चैत्य पाटलिग्राम में था, परन्तु अट्ठकथा में "पावाय" पाठ है, जिसके आधार पर मललसेकर ने इस चेतिय को पावा में ही माना है।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९८; आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १८६१-६२, पृष्ठ ७४-७६।।

को मिलाया।[1] डा० राजबली पाण्डेय[2] और त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी[3] ने इस पहचान को स्वीकार किया है। परन्तु हमें यह नही जंचती। इसका कारण यह है कि केवल एक मात्र दिशा को ध्यान में रखते हुए यह पहचान की गई है। अतः इसमें यह मान लिया गया है कि भगवान् बुद्ध दो स्थानों के बीच में सीधी दिशा से ही चलते थे, आगे जाकर पीछे नहीं मुड़ सकते थे, या चक्करदार मार्ग नहीं ले सकते थे। हम समझते हैं ऐसा कोई बन्धन भगवान् बुद्ध के लिये नहीं था और न उनके मार्गों की दिशाओं का ही कहीं उल्लेख है। वस्तुतः भगवान् बुद्ध एक मुक्त पुरुष की भाँति विहार करते थे, ब्रह्म विहार करते थे, यात्रा नहीं करते थे। इसलिये यदि अन्य प्रमाणों के आधार पर किसी स्थान की स्थिति निश्चित होती दिखाई पड़े तो केवल दिशा का ध्यान कर हमें उसे निषिद्ध नहीं कर देना चाहिये। बावरि के शिष्यों ने गोदावरी के तट से राजगृह तक पहुँचने के लिये कितना टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग लिया था और कितना चक्कर लगाकर वे वहाँ पहुँचे थे, यह सर्वविदित ही है। वेरंजा के जिस मार्ग से भगवान् लौटकर श्रावस्ती पहुँचे, वह भी कितना टेढ़ा-मेढ़ा था। अतः पडरौना (पावा) से वे कसया (कुशीनगर) आ सकते थे और इस आधार पर हमें इस स्थान की पहचान के सम्बन्ध में आपत्ति नहीं करनी चाहिये। एक मूल आपत्ति जो हो सकती है वह यह है कि सुमंगलविलासिनी में, जैसा हम पहले देख चुके हैं, पावा से कुसिनारा की दूरी तीन गावुत बताई गई है। "पावानगरतो तीणि गावुतानि कुसिनारानगरं"। तीन गावुत (पौन योजन) आजकल की गणना में करीब ६ मील ही हो सकते हैं। चूँकि पडरौना कसया से करीब १२ मील की दूरी पर है, अतः यह एक वास्तविक कठिनाई पडरौना को पावा मानने में हमारे मतानुसार है। यह कठिनाई फाजिलनगर या सठियाँव डीह को भी पावा मानने में उतनी ही है, क्योंकि यह स्थान भी कसया से करीब दस मील दूर है।

---

१. देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, सन् १८७५-७६ ई०।

२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।

३. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ २५।

इस कठिनाई का जैसे बड़ी आसानी से समाधान करते हुए और यह दिखाते हुए कि "कुशीनगर से इसकी दूरी और दिशा दोनों ठीक हैं", डा० राजबली पाण्डेय ने लिखा है, "लङ्का के बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश और महावंश के अनुसार कुशीनगर से १२ मील दूर गण्डकी नदी की ओर पावा नगरी स्थित थी"[१]। पता नहीं, दीपवंस और महावंस मे कहाँ पर यह बात लिखी है ? डा० राजबली पाण्डेय ने दीपवंस और महावंस के परिच्छेदों या पृष्ठों का कोई उल्लेख नहीं किया है, जहाँ से उन्होंने यह सूचना ली है। अत: उनके कथन को समझना कठिन है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कुशीनगर से पावा की दूरी पालि परम्परा में तीन गावुत (करीब ६ मील) ही मानी गई है। तब फिर दीपवंस और महावंस में १२ मील का उल्लेख कहाँ है ? गण्डकी नदी भी लेखक की अपनी व्याख्या है। ककुत्था नदी से अतिरिक्त इस नदी (गण्डकी) को लेखक ने पावा और कुशीनगर के बीच स्थित बताया है और वह भी दीपवंस और महावंस के साक्ष्य पर ! "दीपवंश और महावंश में यह भी लिखा हुआ है कि पावा और कुशीनगर के बीच गण्डकी के अतिरिक्त एक और छोटी नदी ककुत्था थी जिसके किनारे भगवान् बुद्ध ठहरे और जलपान किये थे[२]।" ककुत्था नदी की बात तो ठीक है, परन्तु 'गण्डकी' नदी के नाम का उल्लेख तो दीपवंस या महावंस में कहीं नहीं है। डा० राजबली पाण्डेय ने अपनी कल्पना या व्याख्या का आरोप दीपवंस और महावंस पर किया है, जो वैज्ञानिक मार्ग नहीं कहा जा सकता। अत: पावा को फाजिल नगर से मिलाने के लिये जो तर्क डा० राजबली पाण्डेय ने दिये है, वे हमें ग्राह्य नहीं जान पड़ते।

पालि विवरण के आधार पर हम कह चुके हैं कि जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर (निगण्ठ नाटपुत्त) की मृत्यु पावा मे ही हुई थी। जैन लोग गलत या सही रूप से भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि को वर्तमान पावा पुरी मानते हैं जो बिहार शरीफ से करीब ७ मील दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित है। पालि का पावा यह स्थान कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो कुशीनगर से इसकी दूरी में कोई संगति नहीं है और फिर राजगृह के इतने समीप स्वतन्त्र मल्लों की राजधानी पावा

---

१. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।

२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।

किस प्रकार हो सकती है? इसी प्रकार कुशीनगर से १२ मील दूर रामकोला स्टेशन (पूर्वोत्तर रेलवे) के समीप पपउर गाँव को भी बुद्धकालीन पावा मानने का कोई प्रश्न नहीं उठता। पालि विवरणों में हम देख चुके हैं कि चुन्द पावा का निवासी था और वही अपने आम्रवन में उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन दान किया था। परन्तु यूआन् चुआङ ने चुन्द के घर को कुशीनगर में देखा था।[1] इसी आधार पर कुछ विद्वानो की प्रवृत्ति, जिनमें डा० लाहा भी सम्मिलित हैं, पावा और कुशीनगर को एक ही नगर मानने की हुई है।[2] परन्तु पालि विवरण मे हम स्पष्टतापूर्वक देख चुके हैं कि कुसिनारा पावा से तीन गावुत दूर था और पावा से चलकर भगवान् कुसिनारा पहुचे थे, अतः पावा और कुशीनगर को एक स्थान कभी नही माना जा सकता। वर्तमान अवस्था मे हम कनिघम का अनुसरण कर पडरौना को ही बुद्धकालीन पावा मानना अधिक ठीक समझते है, इस सजग अनुभूति के साथ कि इस स्थान की वर्तमान दूरी पालि विवरणों से नही मिलती। इस क्षेत्र की अधिक खुदाई होने पर (जो अभी होने जा रही है) हमें कसया से ६ मील (३ गावुत) या उसके आसपास पावा के भग्नावशेषों को खोजने के लिये सन्नद्ध रहना चाहिये।

अब हम मल्ल राष्ट्र के कुछ अन्य निगमों और ग्रामों का परिचय देंगे, जिनके सम्बन्ध मे यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि वे "कोसिनारका" मल्लों के राज्य मे स्थित थे या "पावेय्यका" मल्लों के। हम केवल साधारणतः मल्ल राष्ट्र में उन्हे मानकर यहाँ उनका उल्लेख करेंगे।

उरुवेलकप्प मल्ल राष्ट्र का एक कस्बा था। भगवान् कई बार यहाँ गये थे। संयुत्त-निकाय के भद्द-सुत्त[3] और मल्लिक-सुत्त[4] का उपदेश इस कस्बे में ही दिया

---

१. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१-३२।

२. देखिये डॉ० लाहा की हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११६; मिलाइये वही, पृष्ठ ९७।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८७-५८८।

गया था। अंगुत्तर-निकाय में भी आनन्द को साथ लेकर भगवान् के यहाँ जाने का उल्लेख है। आनन्द को यहाँ ठहरने का आदेश देकर भगवान् स्वयं दिन के ध्यान के लिये समीपस्थ महावन में चले गये थे। इसी समय तपस्सु नामक एक गृहस्थ आनन्द से आकर मिला था। आनन्द उसे लेकर भगवान् के पास गये। भगवान् ने उसे दुःख की उत्पत्ति और निरोध का उपदेश दिया, जिससे उसके चित्त को शान्ति मिली।[1]

भोगनगर (भोगगामनगर भी पाठ) मल्ल राष्ट्र का एक प्रसिद्ध नगर था, जो वैशाली और पावा के बीच में स्थित था। वैशाली से चलकर भगवान् क्रमशः भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भोगनगर पहुँचे थे और फिर वहाँ से चलकर पावा पहुँचे थे। इस प्रकार भोगनगर की ठीक स्थिति जम्बुगाम और पावा के बीच में थी। वैशाली और पावा के बीच में पड़ने वाले उपर्युक्त पाँच गाँवों (भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम और भोगनगर) में से केवल प्रथम दो (भण्डगाम और हत्थिगाम) के विषय में तो हमें पालि विवरण में यह सूचना मिलती है कि वे निश्चयतः वज्जि जनपद मे थे। शेष तीन के सम्बन्ध में कोई सूचना हमें पालि साहित्य में नहीं मिलती कि वे किस जनपद में मम्मिलित थे। भोगनगर को लाहा ने "इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म"[2] में निश्चयतः मल्लों का एक नगर माना है। महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भोगनगर को वज्जि जनपद में लिख कर उसके सामने एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है।[3] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भोगनगर को वज्जि-संघ का ही एक अंग माना है।[4] सबसे अधिक चौकाने वाली बात यह है कि

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८-४४८।

२. पृष्ठ ५३-५४; मिलाइये ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ १४।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५। बाद में उन्होंने अपने मत में निश्चित परिवर्तन कर दिया जान पड़ता है, क्योंकि 'साहित्य-निबन्धावली', पृष्ठ १८६, में उन्होंने भोगनगर को वज्जि राष्ट्र की सीमाओं के बाहर ही माना है।

४. देखिये आगे सोलह महाजनपदों के प्रसंग में वज्जि जनपद का विवरण।

डा० मललसेकर ने भी भोगनगर को वज्जि जनपद का ही एक कस्बा माना है।[१] इस प्रकार भोगनगर को वज्जि या मल्ल राष्ट्र में से किसमे माना जाय इसके सम्बन्ध में विप्रतिपत्ति है। हम भोगनगर को पाव के अधिक समीप होने के कारण मल्ल राष्ट्र में ही मानना अधिक ठीक समझते हैं। तिब्बती परम्परा की प्रवृत्ति भी इस ओर ही अधिक है।

भोगनगर में "आनन्द चैत्य" नामक एक चैत्य था, जहाँ भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में ठहरे थे। यहीं भिक्षुओं को उन्होंने चार महाप्रदेशों (महापदेसा) का उपदेश दिया था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य दक्षिणापथ के प्रतिष्ठान नगर से चलकर श्रावस्ती आये थे और फिर वहाँ से राजगृह गये थे। श्रावस्ती से राजगृह तक की इस यात्रा मे उन्हें जो प्रसिद्ध नगर पड़े थे, उनमें एक भोगनगर भी था। श्रावस्ती से प्रारम्भ कर वे स्थान इस प्रकार हैं, श्रावस्ती, सेतव्या, कपिल-वस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, वैशाली और राजगृह। इस प्रकार भोगनगर उस महापथ का, जो उत्तर में श्रावस्ती से लेकर दक्षिण-पूर्व में राजगृह तक जाता था, एक महत्वपूर्ण पड़ाव स्थान था। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने प्रस्ताव किया है कि बिहार राज्य की तमकुही रियासत से ६ मील पश्चिम में वर्तमान बदराँव गाँव को बुद्धकालीन भोगनगर माना जा सकता है, क्योंकि इसकी स्थिति पालि विवरण के अनुकूल है और इसके समीप एक प्राचीन स्तूप के भग्नावशेष भी मिले हैं तथा अन्य खण्डहर भी इसके चारों ओर स्थित हैं, जिनकी खुदाई होना अत्यन्त आवश्यक है।[२]

अनूपिया मल्लो का एक प्रसिद्ध निगम था। महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८९) में इसे अनोमिय कह कर पुकारा गया है और इसे मल्ल राष्ट्र में ही स्थित माना गया है। शाक्यकुमार ने महाभिनिष्क्रमण के बाद अनोमा नदी को पार कर अनूपिया के आम्रवन में सात दिन तक ध्यान किया था। पालि परम्परा के अनुसार यह कस्बा कपिलवस्तु से तीस योजन दूर था और इतनी ही दूरी इसकी राजगृह से थी। इस प्रकार कपिलवस्तु और राजगृह के बीच में यह

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

२. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १८।

स्थित था[१]। अनूपिया कपिलवस्तु के पूर्व में स्थित था, क्योंकि शाक्य कुमार ने घर से चलकर शाक्य कोलिय और मल्ल, इन तीन प्रदेशों को क्रमशः पार किया था। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अन्य कई बार भी भगवान् अनूपिया में आये थे। प्रथम बार जब भगवान् कपिलवस्तु गये तो वहाँ से लौटते हुए अनूपिया होते हुए ही राजगृह आये थे। इसी समय अनूपिया के आम्रवन में भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि की प्रव्रज्या हुई थी। मल्लपुत्र दब्ब की प्रव्रज्या भी अनूपिया में ही हुई थी, जो उनकी ननसाल थी। दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त में भी हम भगवान् को अनूपिया कस्बे में विहार करते देखते हैं। यहीं भार्गव गोत्र परिव्राजक का आश्रम (आराम) था, जहाँ भगवान् एक बार गये थे। सुखविहारी-जातक का उपदेश अनूपिया के आम्रवन में ही दिया गया था। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने यह मत प्रकट किया है कि मझन नदी के खंडहरो को, जिन्हें आजकल "घोड़टप" कहा जाता है, हम अनूपिया की प्राचीन स्थिति मान सकते हैं,[२] परन्तु यह पहचान उपर्युक्त पालि विवरणों से पूरी तरह मेल नहीं खाती, अतः उसे निश्चित नहीं कहा जा सकता। बौद्ध संस्कृत साहित्य की परम्परा अनूपिया की स्थिति के सम्बन्ध में पालि विवरणों से मेल नहीं खाती। उदाहरणतः महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८९) में उसे कपिल-वस्तु से १२ योजन दूर बताया गया है और ललितविस्तर (पृष्ठ २२५) में मल्लों के प्रदेश को पार कर मैनेय लोगों के प्रदेश में इस कस्बे को, जिसे यहाँ अनुवैनेय कहकर पुकारा गया है) कपिलवस्तु से छह योजन दूर बताया है। जब तक दूरी की इन विभिन्नताओं का समाधान न कर लिया जाय केवल पालि परम्परा के आधार पर कोई एकाङ्गी निर्णय नहीं दिया जा सकता।

मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम का, जिसे आधुनिक थानेश्वर से मिलाया गया है, परिचय हम विनय-पिटक के महावग्ग के आधार पर द्वितीय परिच्छेद में दे चुके हैं। इसी नाम का एक अन्य थूण नामक

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३ (हिन्दी अनुवाद)।

२. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ ५९।

ब्राह्मण-ग्राम मल्ल राष्ट्र में भी था। उदान[1] से हमें पता चलता है कि भगवान् बुद्ध एक बार कुछ भिक्षुओं को साथ लेकर इस गाँव में गये थे और यहाँ के ब्राह्मणों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। जातक[2] से भी हमें मल्ल राष्ट्र में स्थित सम्भवतः इसी थूण ब्राह्मण-ग्राम का परिचय मिलता है, जिसे वहाँ मिथिला और हिमवन्त के बीच में स्थित बताया गया है। इससे प्रकट होता है कि यह थूण ब्राह्मण-ग्राम मल्ल राष्ट्र की पूर्वी सीमा पर स्थित था।

बुलि गणतंत्र के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अधिक नहीं है। उनका प्रदेश अल्लकप्प था, जिसके नाम पर ही वे "अल्लकप्पका बुली" अर्थात् "अल्लकप्प के बुलि" कहलाते थे। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें पता चलता है कि बुलियों ने भी भगवान् की धातुओं के एक अंश को प्राप्त कर अल्लकप्प में उसके ऊपर एक स्तूप की रचना की थी। 'बुद्धवस' में भी इसके सम्बन्ध में उल्लेख है। "एको च अल्लकप्पके।"[3] पालि के अल्लकप्प को सम्भवतः जैन प्राकृत साहित्य के 'आमल-कप्पा' से मिलाया जा सकता है। धम्मपदट्ठकथा[4] से हमें पता चलता है कि अल्ल-कप्प का विस्तार केवल दस योजन था। अतः यह राज्य बहुत छोटा था। अल्ल-कप्प की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। एक विद्वान् ने बुलियों के प्रदेश को आधुनिक बलिया से मिलाने का प्रयास किया है,[5] परन्तु विस्तार को ध्यान में रखते हुए इसे सत्य के निकट नहीं कहा जा सकता। धम्मपदट्ठकथा में अल्लकप्प के राजा की वेठदीप के राजा वेठदीपक के साथ मित्रता का वर्णन है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अल्लकप्प सम्भवतः वेठदीप के समीप था। परन्तु यह वेठदीप कहाँ था, इसका भी कुछ ठीक पता नहीं लगाया जा सकता। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हम जानते हैं कि जिस द्रोण

---

१. पृष्ठ १०६-१०७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६२।

३. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ १६१।

५. देखिये धर्मदूत, अप्रैल १९५५, पृष्ठ २७८-२८०।

नामक ब्राह्मण ने भगवान् की धातुओं के आठ भाग किये थे, वह वेठदीप का था। इस द्रोण ब्राह्मण ने जिस कुम्भ में भगवान् के फूल रक्खे थे, उसको सबकी अनुमति से उसने स्वयं ले लिया था और उस पर उसने वेठदीप में एक स्तूप बनवाया था। बुद्धवंस मे भी इस बात का उल्लेख है। "कुम्भस्स थूप कारेसि ब्राह्मणो दोणसाव्हयो।"[1] कुम्भ-स्तूप (कुम्भथूपो) को कुम्भ-चैत्य (कुम्भ चेतियो) भी कहकर पुकारा गया है। यूआन् चुआङ ने इस "कुम्भ-स्तूप" की स्थिति को "मो-ह-शो-लो" या महासार (वर्तमान मसार, आरा से ६ मील पश्चिम) से १०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में बताया है।[2] अतः इसे सम्भवतः आरा के समीप कहीं होना चाहिए। एक अन्य विद्वान् ने आधुनिक बिहार राज्य मे चम्पारन के समीप बेतिया (बेत्तिया) को वेठदीप माना है।[3] रॉकहिल द्वारा उल्लिखित तिब्बती परम्परा के अनुसार द्रोण ब्राह्मण द्रोणसम नगर का निवासी था और वहीं उसने कुम्भ-स्तूप की स्थापना की थी।[4] इसका आधार लेकर उसे कुशीनगर से मिलाने का प्रयत्न किया गया है। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने सम्भवतः इसी प्रकार वेठदीप को कुशीनगर से सम्बन्धित किया है।[5] बुद्ध-शिष्य स्थविर अभिभूत, जिनके उद्गार थेरगाथा मे निहित है, वेठदीप के निवासी थे।[6]

लिच्छवि, जिन्हें महावस्तु[7] में 'लेच्छवि' और जैन प्राकृत साहित्य में 'लेच्छई'

---

१. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (देवनागरी संस्करण)।

२. वाटर्स : ऑन् यूआन चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६०-६१।

३. देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९३, पद-संकेत ३; मिलाइये दे : ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ ३०।

४. दि लाईफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ १४६।

५. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री-लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ७१४।

६. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

७. जिल्द पहली, पृष्ठ २५४।

कहकर पुकारा गया है, एक शक्तिशाली गणतन्त्र के रूप में बुद्ध-काल में संगठित थे। लिच्छवि गणतन्त्र, जिसकी राजधानी वैशाली थी, वस्तुतः वज्जि संघ का ही एक अंग था और कुछ हालतों में उससे एकाकार भी था। लिच्छवियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर यहाँ कुछ कह देना आवश्यक होगा। आचार्य बुद्धघोष ने खुद्दक-पाठ की अट्ठकथा में एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार प्राचीन काल में वाराणसी के राजा की प्रधान महिषी की कोख से एक बार दो मांस के लोथड़े, जो एक दूसरे से जुड़े हुए थे और लाख के या बन्धूक पुष्प के समान लाल रंग के थे , उत्पन्न हुए। राजा के भय से रानियों ने उन दोनों जुड़वाँ मांस के लोथड़ो को गंगा में प्रवाहित करवा दिया। एक तपस्वी की दृष्टि उन पर पड़ी और उसने उन्हें उठा लिया। धीरे-धीरे उनमें जान आने लगी उनमें से एक ने लड़के और दूसरे ने लड़की का रूप प्राप्त किया। इन दोनों बच्चो का शरीर स्वच्छ पारदर्शी मणि के समान था । जो कुछ उनके पेट में जाता था, बाहर से स्पष्ट दिखाई पड़ता था। उनके खाल तो थी ही नहीं , इसलिये वे "निच्छवि" (छवि-चमड़ी-रहित) कहलाने लगे। चूँकि वे दोनों बच्चे एक दूसरे से छवि या चमड़ी के द्वारा जुड़े हुए थे (लीना छवि) इसलिये भी उन्हें "लिच्छवि" कहकर पुकारा जाने लगा। तपस्वी ने इन दोनों बच्चों को लालन-पालन के लिये पड़ोस के गड़रियों को सौप दिया। परन्तु ये दोनों बच्चे गड़रियों के लड़कों को तंग करते थे। तब इन्हे उनसे वर्जित (वज्जितब्बा) कर दिया गया। इसलिये वे "वज्जि" कहलाये। तपस्वी को इन बच्चों के कुल का पता था। उसने राजा से कहकर उनके लिये ३०० योजन भूमि प्राप्त कर ली और दोनों का एक दूसरे से विवाह कर दिया। तब से उनके द्वारा बसाया गया प्रदेश "वज्जि" कहलाने लगा। एक नगरी की भी राजधानी के रूप में स्थापना की गई, परन्तु उपर्युक्त दोनों तरुण-तरुणियों का परिवार तेजी से बढ़ने लगा और जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण नगरी को तीन बार विशाल किया गया (विसालिकता)। तभी से इसका नाम वैशाली पड़ गया। यही लिच्छवि जाति और उनकी नगरी वैशाली का पालि परम्परा के अनुसार संक्षिप्त इतिहास है। लिच्छवि गणतन्त्र तथा उसके प्रदेश का भौगोलिक विवरण हम आगे वज्जि जनपद का विवेचन करते समय देंगे।

विदेह बुद्ध-पूर्व काल में एक राजतन्त्र था, परन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में हम उसे एक गणतंत्र के रूप में देखते हैं। विदेह राज्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गङ्गा, पश्चिम में मही (गण्डक) नदी और पूर्व में कोसी नदी से घिरा हुआ था। वस्तुतः विदेह गणतन्त्र भी विशाल वज्जि संघ का ही एक अंग था। इसलिये उसके प्रदेश की ठीक विभाजक रेखाये नही खीची जा सकतीं। मज्झिम-निकाय के चूल-गोपालक सुत्तन्त मे इतना निश्चित जान पड़ता है कि मगध देश से गंगा पार विदेह राष्ट्र था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में बुद्ध-पूर्व काल के राजा रेणु के प्रधान मंत्री ब्राह्मण महागोविन्द ने भारतवर्ष को जिन सात खण्डों में बाँटा था और उनकी अलग-अलग राजधानियाँ स्थापित की थी, उनमे एक विदेह राज्य भी था, जिसकी राजधानी मिथिला थी। हम पहले द्वितीय परिच्छेद मे देख चुके है कि चक्रवर्ती राजा मान्धाता (मन्धाता) के साथ पूर्व विदेह (पुब्ब-विदेहो) महाद्वीप मे कुछ निवासी आये थे और जम्बुद्वीप मे ही बस गये थे। जिस प्रदेश मे वे बसे उसका नाम उन्ही के नाम पर "विदेह" जनपद पड गया। विदेह राष्ट्र का विस्तार सुरुचि जातक के अनुसार ३०० योजन था और उसकी राजधानी मिथिला सात योजन विस्तृत थी। एक अन्य जातक-कथा के अनुसार विदेह राज्य मे सोलह हजार गाँव थे।[1] महाजनक जातक मे चम्पा और मिथिला के बीच की दूरी ६० योजन बताई गई है और इसके वर्णन से विदित होता है कि इन दोनो नगरों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे। बुद्ध-काल में विदेह समृद्ध राष्ट्र था और गन्धार जातक के अनुसार गन्धार देश के तक्षशिला नगर तक उसके व्यापारिक सम्बन्ध थे तथा उसके राजकुमार वहाँ शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। मिथिला से कम्पिल्ल और इन्दपत्त तक व्यापारियों के जाने के उल्लेख है।[2] श्रावस्ती के व्यापारी भी अपना माल बेचने के लिये विदेह तक पहुँचते थे। विदेह की राजधानी मिथिला एक निश्चित योजना के अनुसार बसाई गई थी। महाजनक जातक मे इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जो काल्पनिक न होकर तथ्य पर आधारित मालूम पड़ता

---

१. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६७।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४४७।

है। यहाँ कहा गया है कि यह नगर समृद्ध, विशाल और सभी ओर से प्रकाशित था। (मिथिलं फीतं विसालं सब्बतो पभं), सुविभक्त, भागशः सुशोभित (विभत्तं भागसोभितं), अनेक प्राकारों और तोरणों से युक्त (बहुपाकार-तोरणं,) दृढ़ अट्टालिकाओं तथा कोठो से युक्त (दलह मट्टाल कोट्ठकं), गायों, घोड़ों तथा रथों से भरा हुआ (गवास्सरथपीलितं) तथा आराम-वनों और उद्यान-वनों की पंक्तियों से युक्त (उय्यानवनमालिनिं) था[1]। यहीं कहा गया है कि सौमनस्य से युक्त यशस्वी विदेह राजा के द्वारा इसका निर्माण करवाया गया था। "मापितं सोमनस्सेन वेदेहेन यसस्सिना"।

महा उम्मग्ग जातक में कहा गया है कि मिथिला नगर के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में चार विशाल दरवाजे थे जिनके समीप "यवमज्झक" आकार के चार विशाल व्यापारिक कस्बे (निगम) बसे हुए थे। मिथिला नगरी आधुनिक जनकपुर ही है, जो बिहार राज्य के उत्तरी भाग में स्थित है। मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त से हमें मालूम होता है कि भगवान् एक बार मिथिला में गये थे और वहाँ के मखादेव-आम्रवन में ठहरे थे। आचार्य बुद्धघोष द्वारा निर्दिष्ट परम्परा के अनुसार यह आम्रवन मिथिला के एक पूर्वकालीन राजा मखादेव ने बनवाया था। इसीलिये उसका यह नाम पड़ा था।[2] एक दूसरी बार भी हम भगवान् को विदेह में चारिका करते हुए मिथिला के मखादेव आम्रवन में पहुँचते मज्झिम-निकाय के ब्रह्मायु-सुत्तन्त में देखते है। इसी सुत्त मे हमें यह भी सूचना मिलती है कि ब्रह्मायु नामक एक ब्राह्मण, जिसकी आयु १२० वर्ष की थी, इस समय मिथिला में रहता था। मिथिला में ही जब भगवान् निवास कर रहे थे तो वासेट्ठी (वाशिष्ठी) नामक एक कुलीन स्त्री, जिसका जन्म वैशाली में हुआ था और एक उच्च कुल में ही जिसका विवाह हुआ था, पुत्र-शोक से व्याकुल होकर उन्मत्त अवस्था मे भगवान् के पास पहुँची थी और उनके दर्शन उसने वहाँ किये थे। 'अथ द्दस्सामि सुगतं नगरं मिथिलं

---

१. पूर्ण विवरण के लिए देखिये जातक, छठा खण्ड, पृष्ठ ५१-६२ (हिन्दी अनुवाद)।

२. पपञ्चसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।

गतं"[१]। वाराणसी की सुन्दरी नामक स्त्री का पिता सुजात ब्राह्मण, जो पुत्र-वियोग से खिन्न था, भगवान् के दर्शनार्थ मिथिला गया था और वहाँ जाकर प्रव्रजित हो गया था।[२]

ऊपर हम कह चुके हैं कि बुद्ध-पूर्व काल में विदेह एक राजतन्त्र था। मखादेव जातक और निमि जातक में मिथिला के राजवंश के आदि पुरुष का नाम मखादेव बताया गया है। मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुतन्त में भी कहा गया है कि पूर्व काल में मिथिला का एक धार्मिक, धर्मराजा ('धम्मिको धम्मराजा') था, जिसका नाम मखादेव था। इस मखादेव को डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने शतपथ-ब्राह्मण के माथव विदेघ से मिलाया है।[३] भरहुत-स्तूप के अभिलेख तथा चुल्ल-निद्देस में मखादेव का उल्लेख है। मखादेव, मघादेव और माथव वस्तुतः एक ही शब्द 'महा-देव' के विभिन्न रूप हैं, ऐसा डा० बड़ुआ और सिंह ने भी माना है।[४] इस प्रकार जातक और शतपथ-ब्राह्मण में विदेह राज्य के आदि पुरुष के सम्बन्ध में प्रायः एक मत है, ऐसा कहा जा सकता है। महाजनक जातक में मिथिला के दो महाजनक राजाओं का उल्लेख है, जिनमें से एक को हम औपनिषद जनक से मिला सकते है।[५] औपनिषद जनक को हम महाभारत में कहते सुनते हैं, "मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन"। यही बात महाजनक जातक के महाजनक ने भी कही है। "सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किंचनं। मिथिलाय दह्यमानाय न मे किंचि अदह्यथा।" मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त, मखादेव जातक, कुम्भकार जातक और निमि जातक मे निमि नामक एक अन्य विदेह-राज का भी उल्लेख है, जिसे किसी व्यक्ति का नाम मानने के

---

१. थेरीगाथा, पृष्ठ १४; देखिये वही, पृष्ठ ६४ भी (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. वही, पृष्ठ २९-३१ तथा ७४-७५।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ५४-५५।

४. भरहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ ७८-८०।

५. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ५७; मिलाइये रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १९ (प्रथम भारतीय संस्करण)।

साथ-साथ विदेह के राजाओं का एक कुल-नाम भी माना जा सकता है जिस प्रकार "ब्रह्मदत्त" काशी के राजाओं का कुल-नाम था। कुम्भकार-जातक में विदेहराज निमि को गन्धार देश के राजा नग्गजि (नग्नजित्) और पंचाल देश के राजा दुम्मुख (दुर्मुख) का समकालीन बताया गया है। निमि का पुत्र, मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त के अनुसार, कलार जनक (सं० कराल जनक) था।[1] साधीन जातक में मिथिला के राजा साधीन (स्वाधीन) का उल्लेख है और इसी प्रकार सुरुचि जातक में विदेह-राज सुरुचि का तथा महा नारद-कस्सप जातक में मिथिलाधिपति अगति (या आनन्द जी के अनुवाद के अनुसार अग) का, जिनके विस्तार में यहाँ भौगोलिक दृष्टि से जाना ठीक न होगा। महानारदकस्सप जातक मे विदेह राष्ट्र में मनाये जाने वाले 'कुमुदनी' नामक महोत्सव का भी वर्णन है।

भग्ग (भर्ग) लोगों का गणराज्य सुमुमारगिरि के आसपास स्थित था। डॉ० मललसेकर ने उसे श्रावस्ती और वैशाली के बीच स्थित बताया है,[2] परन्तु अपनी इस मान्यता का उन्होंने कोई कारण नही दिया। महापंडित राहुल साकृत्यायन के मतानुसार भर्ग देश की सीमा मे "बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिलों के गंगा के दक्षिण वाले प्रदेश का कितना ही भाग सम्मिलित था।"[3] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भर्ग राज्य को विन्ध्य प्रदेश मे यमुना और शोण नदियों के बीच स्थित बताया है।[4] सुसुमारगिरि को वस्तुत.

---

१. इस कराल जनक राजा के सम्बन्ध में महाकवि अश्वघोष ने दो अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है। एक तो यह कि उसने एक ब्राह्मण-कन्या का हरण किया था (बुद्ध-चरित ४।८०) और दूसरी यह कि सदाचार से शून्य होने के कारण इस राजा का राज्य उजाड़ हो गया था (बुद्ध-चरित १३।५)।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४५।

३. मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६१, पद-संकेत १; बुद्धचर्या, पृष्ठ ८७, पद-संकेत ६; डा० विमलाचरण लाहा ने राहुल सांकृत्यायन के मत को "ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया", पृष्ठ १४१-१४२, में उद्धृत किया है।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९३।

आधुनिक चुनार और उसके आसपास की पहाड़ियों से ही मिलाना चाहिये। अतः भर्ग राज्य की सीमाओं के सम्बन्ध में राहुलजी का मत सर्वाधिक ठीक है। सुसुमारगिरि मे ही भेसकलावन (केसकलावन भी पाठान्तर) नामक मृगदाव या मृगोद्यान था जहाँ, भगवान् भग्ग देश मे चारिका करते हुए अक्सर ठहरते थे। इस मृगोद्यान मे भी इसिपतन मिगदाय के समान मृगों को अभय दिया गया था और वे वहाँ स्वच्छन्द बिचरते थे। इसलिये यह स्थान भी भेसकलावन मिगदाय के नाम से प्रसिद्ध था।[1] महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित (२१।३२) मे भार्गसो (भार्गवो) के प्रदेश मे भगवान् बुद्ध के द्वारा भेषक यक्ष को दीक्षित किये जाने का वर्णन किया है। सम्भवत इस भेषक (या भेष) यक्ष से सम्बन्धित ही 'भेसकलावन' था।

सुसुमारगिरि एक शान्त और रमणीय स्थान था, जो ध्यान के लिये अनुकूल माना जाता था। स्थविर सिगाल-पिता यहाँ ध्यान करने के लिये गये थे।[2] हम देख चुके है कि भगवान् ने अपना आठवाँ वर्षावास भर्ग देश के सुसुमारगिरि-स्थित भेसकलावन मिगदाय मे ही किया था और यही नकुल-पिता, जिसका घर इसके समीप ही था, उनसे मिलने आया था। इस घटना का वर्णन संयुत्त-निकाय के दो 'नकुल-पिता' सुत्तो मे है।[3] स्थविर सिरिमण्ड की प्रव्रज्या भेसकलावन मे ही हुई थी[4] और यही स्थविर महामोग्गल्लान ने मार को पराजित किया था।[5] मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त, अगुत्तर

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८६७; दिव्यावदान, पृष्ठ १८२, में 'भेसकलावन' को 'भीषणिकावन' कहकर पुकारा गया है।

२. "बुद्ध का उत्तराधिकारी भिक्षु भेसकलावन में है"। थेरगाथा, पृष्ठ ८ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३२१-३२२; दूसरा भाग, पृष्ठ ४९८; महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (२१।३२) में नकुल के वृद्ध माता-पिता पर बुद्ध द्वारा अनुग्रह करने की बात कही है।

४. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ १२९ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

५. वहीं, पृष्ठ २६८।

निकाय[1] और विनय-पिटक के चुल्लवग्ग[2] मे हम उदयन-पुत्र राजकुमार बोधि को सुसुमारगिरिनगर मे अपने नव-निर्मित कोकनद प्रासाद में भगवान् बुद्ध का स्वागत करते देखते हैं। धोनसाख जातक मे भी सुसुमारगिरिनगर-स्थित बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद का उल्लेख है। इस प्रासाद का यह नाम क्यो पडा, इसका उल्लेख हम वस राज्य का विवेचन करते समय कर चुके है। मज्झिम-निकाय के अनुमान-सुत्तन्त और मारतज्जनिय सुत्तन्त हमे इस बात की सूचना देते है कि भगवान् बुद्ध के ऋद्धिमान् शिष्य महामोग्गल्लान ने भी दो बार सुसुमारगिरि पर विहार किया था। सिरिमण्ड स्थविर का जन्म-स्थान सुसुमारगिरिनगर ही था।

सुसुमारगिरि पर भग्गो का नगर स्थित था जो सुसुमारगिरिनगर कहलाता था और उनकी राजधानी था। सुसुमारगिरिनगर की गणना अभिधानप्पदीपिका मे बुद्धकालीन भारत के मुख्य २० नगरो में की गई है।[3] सुसुमारगिरि (सुसुमार-गिर भी पाठ अट्ठकथा मे है) नगर का यह नाम पडने का आचार्य बुद्धघोष ने यह कारण बताया है कि जब यह नगर बसाया जा रहा था तो पास के सरोवर से सुसुमार (शिशुमार-मगर) का शब्द सुनाई पडा था।[4] "केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया"[5] मे भग्ग राज्य को वज्जि सघ का एक अग बताया गया है, जिसके लिए पालि साहित्य मे कोई स्पष्ट आधार नही मिलता। जैसा हम वस राज्य के विवरण मे देख चुके है, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भग्ग गणराज्य वस (वत्स) राज्य की अधीनता या उसके प्रभाव मे आ गया था। डा० विमलाचरण लाहा का कहना है कि भग्गों पर कौशाम्बी का आधिपत्य थोडे दिन तक ही रहा और वे एक गणतन्त्र के रूप मे भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय विद्यमान थे, जैसा कि इस बात से प्रकट होता है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त मे गणतन्त्रो की जो सूची

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९१; जिल्द छठी, पृष्ठ ८५।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४३६-४३७।

३. देखिये आगे चौथे परिच्छेद में बुद्धकालीन भारत के नगरों की जनसंख्या का विवेचन।

४. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६५।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

दी गई है, उसमें भर्ग-देश का उल्लेख है।[1] पता नही डा० लाहा ने यह किस प्रकार लिख दिया है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में तो भग्गों या उनके देश का कहीं भी उल्लेख नहीं है। वहाँ तो केवल उन सात गणतन्त्रों का उल्लेख है, जिनका नाम-निर्देश हम गणतन्त्रों सम्बन्धी अपने इस विवेचन के आरम्भ में कर चुके है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर भग्गों का एक स्वतन्त्र गणतन्त्र बुद्ध के परिनिर्वाण के समय विद्यमान था। चूंकि महापरिनिब्बाण-सुत्त में भग्गों का उल्लेख नहीं है, इसलिये हम यह भी नही कह सकते कि उस समय गणतन्त्र के रूप में उनकी सत्ता ही नही थी, क्योंकि उसके विद्यमान रहते हुए भी यह सम्भव हो सकता था कि वे बुद्ध के धातुओं में भाग लेने न आते। महापरिनिब्बाण-सुत्त में केवल उन गणतन्त्रो का उल्लेख है जो भगवान् बुद्ध की धातुओं में अंश प्राप्त करने आये थे। अत. उनमे भग्गों का नाम न होना एक निषेधात्मक साक्ष्य है जिससे हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुंच सकते और उसके अभाव में विनय-पिटक, अंगुत्तर-निकाय तथा मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त आदि के ऊपर निर्दिष्ट साक्ष्य से हम भग्ग गणतन्त्र को बुद्ध के जीवन-काल मे वत्सराज्य के प्रभाव या अधीनता में आया मान सकते है।

कालाम लोगों के बारे में भी हमे बुलियों के समान बहुत कम मालूम है। सम्भवत. आलार कालाम, जो भगवान् बुद्ध के पूर्व गुरु थे और जिनका आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच में स्थित था, इसी जाति के थे।[2] इसी प्रकार भरण्डु कालाम, जिसका आश्रम कपिलवस्तु में था और जो भगवान् बुद्ध का पुराना सब्रह्मचारी था, कालाम जाति का ही था। अंगुत्तर-निकाय के भरण्डु-सुत्त से हमे

---

१. "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म", पृष्ठ ३३; "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म" (लन्दन, १९४१), पृष्ठ ३४। "ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया" (पूना, १९४३), पृष्ठ २८७, में भी डॉ० लाहा ने यही बात दुहराई है।

२. मिलाइये, "स कालामसगोत्रेण तेनालोक्यैव दूरतः। उच्चैः स्वागत-मित्युक्तः समीपमुपजग्मिवान्"। बुद्धचरित १२।२।

सूचना मिलती है कि एक बार जब भगवान् कपिलवस्तु में गये तो महानाम शाक्य ने उनके निवास की व्यवस्था भरण्डु कालाम के आश्रम में ही की। कालाम भी अन्य गणतन्त्रों की भाँति क्षत्रिय ही थे। उनके निगम का नाम केसपुत्त था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे। इस अवसर पर उन्होंने कालामों को उपदेश भी दिया था, जो अंगुत्तर-निकाय के केसपुत्तिय-सुत्त में निहित है। इस सुत्त से हमें यह भी पता चलता है कि अनेक धर्म-सम्प्रदायों के आचार्य केसपुत्त नगर में अपने-अपने मतों का प्रचार करने आया करते थे। इस सुत्त के आरम्भ में इस प्रकार कहा गया है, "एक समय भगवान् कोसल में चारिका करते. . .जहाँ कालामों का केसपुत्त नामक निगम था, वहाँ पहुचे।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कालामों का प्रदेश कोसल राज्य के अधीन माना जाता था। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने कालामों के केसपुत्त को शतपथ-ब्राह्मण के केशी लोगों से मिलाने का सुझाव दिया है, जो गोमती नदी के किनारे के प्रदेशों में बसे हुए थे।[1] सुझाव अत्यन्त कल्पना-प्रसूत होने पर भी भौगोलिक स्थिति के विचार से असंगत नहीं जान पड़ता।

सोलह महाजनपदों (सोलस महाजनपदा) का सर्वप्रथम प्रामाणिक उल्लेख हमें अंगुत्तर-निकाय में मिलता है। यहाँ उनका निर्देश इस क्रम से किया गया है, यथा (१) अङ्ग, (२) मगध, (३) काशी, (४) कोसल, (५) वज्जि, (६) मल्ल, (७) चेतिया चेतिय, (८) वंस, (९) कुरु, (१०) पंचाल, (११) मच्छ, (१२) सूरसेन, (१३) अस्सक, (१४) अवन्ती, (१५) गन्धार और (१६) कम्बोज। "सो इमेसं सोलसन्नं महाजनपदानं पहूतसत्तरतनानं इस्सराधिपच्चं रज्जं कारेय्य, सेय्यथीदं—अंगानं, मगधानं, कासीनं, कोसलानं, वज्जीनं, मल्लानं, चेतीनं (चेतियानं), वंसानं, कुरूनं, पञ्चालानं, मच्छानं, सूरसेनानं, अस्सकानं, अवन्तीनं, गन्धारानं, कम्बोजानं।"[2] यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन जनपदों का प्रयोग बहुवचन में किया गया है, जैसे कि अंगानं, मगधानं, कासीनं आदि। पालि

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ. १९३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६० (अट्ठक-निपात)।

तिपिटक में अन्यत्र भी इसी प्रकार के प्रयोग किये गये हैं, जैसे कि, "एकं समयं भगवा अंगेसु चारिकं चरमानो. . .[१]" । "एक समय भगवान् अंगों में चारिका करते हुए. . .।" "कोसलेसु चारिकं चरमानो।[२] (कोसलों में चारिका करते हुए. . .।" "एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति" ।[३] "एक समय भगवान् कुरुओं में विहरते थे", आदि। इससे यह प्रकट होता है कि आरम्भ में जनपदों का स्वरूप जन-जातियों के रूप में था और भौगोलिक अर्थ उनके साथ जुड़ा हुआ नहीं था, परन्तु बाद में स्वाभाविक रूप से इन नामों का प्रयोग उन प्रदेशों या राज्यों के लिये होने लगा जहाँ वे जातियाँ रहती थीं। इन जनपदो की विभिन्न प्रकार की सूचियाँ हमें स्वयं पालि तिपिटक में मिलती है। इस प्रकार दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में हमें केवल दस जनपदों का, दो-दो के जोड़ों के रूप में, इस प्रकार उल्लेख मिलता है, "काशी और कोसल, वज्जि और मल्ल, चेति और वंस, कुरु और पंचाल, मच्छ और सूरसेन।[४]" इन्द्रिय-जातक मे इन सात जनपदों का उल्लेख है, सुरट्ठ, लम्बचूलक, अवन्ती, दक्खिणापथ, दण्डक, कुम्भवतिनगर और अरंजरा।[५] खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ 'निद्देस' के उत्तर-खण्ड चुल्ल-निद्देस में गन्धार जनपद के स्थान पर योन (यवन) जनपद का उल्लेख है और कलिंग नामक एक अन्य जनपद का यहाँ अधिक उल्लेख है।[६] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'महावस्तु' में भी सोलह महाजनपदों का उल्लेख है, परन्तु उनके नाम वहाँ नहीं दिये गये है। केवल इतना कहा गया है "जम्बुद्वीपे सोडशहि महाजनपदेहि[७]।" परन्तु एक अन्य प्रसंग मे, जहाँ बुद्ध-ज्ञान के वितरित किये जाने की बात कही गई है, वहाँ १६ जनपदों के नाम लिये गये

---

१. सोणदण्ड-सुत्त (दीघ० १।४)।

२. लोहिच्च-सुत्त (दीघ० १।१२); तेविज्ज-सुत्त (दीघ० १।१३); चंकि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।५)।

३. मागन्दिय-सुत्त (मज्झिम० २।३।५)।

४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १६०।

५. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

६. निद्देस, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।

७. महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २।

है, यथा, अङ्ग, मगध, वज्जी, मल्ल, काशी, कोसल, चेदि, वत्स, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, पंचाल, शिबि, दशार्ण, अस्सक और अवन्ती।[1] इस प्रकार इस १६ जनपदों की सूची में पालि सूची के गन्धार और कम्बोज नामक दो जनपद तो छोड़ दिये गये है और शिबि और दशार्ण नामक दो नये जनपद जोड़ दिये गये है। ललितविस्तर में भी बोधिसत्व के भावी कुल के सम्बन्ध में तुषित-लोक के देवताओं के द्वारा विचार किये जाने के प्रसग मे सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के सोलह जनपदों (सर्वस्मिन् जम्बुद्वीपे षोडश जानपदेषु), का उल्लेख है, परन्तु उनमे से केवल आठ के नाम लिये गये है, यथा, मगध, कोसल, (कौशल) वग, वैशाली, अवन्ती (प्रद्योतकुल), मथुरा, कुरु (हस्तिनापुर महानगर) और मिथिला।[2] महाबोधिवंस[3] में, जो एक उत्तरकालीन (ग्यारहवी शताब्दी ईसवी की) रचना है, सोलह महाजनपदों को "सोलस महादेसा" या "सोलस महापदेसा" कहकर पुकारा गया है। बौद्ध साहित्य के बाहर भी विभिन्न जनपदो के विवरण हमें मिलते है।[4] यहाँ हम पालि स्रोतों के आधार पर विभिन्न जनपदों के राजनैतिक भूगोल का विवरण देंगे।

---

१. महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

२. पृष्ठ २०-२२

३. पृष्ठ १५२।

४. जैन आगम के भगवती-सूत्र (१५) में सोलह महाजनपदों का उल्लेख है, परन्तु उनके जो नाम वहाँ दिये गये हैं, वे हैं, अंग, वंग, मगध, मलय, मालव (मालवय), अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पढ, लाढ (राढ), बज्जि (वज्जि), मोलि, कासी, कोसल, अवाह और सम्भुत्तर। मिलान करने से ज्ञात होगा कि इस विवरण के छह जनपद तो बिलकुल वही हैं जो कि पालि सूची के, जैसे कि, अंग, मगध, वंस (जिसे भगवती-सूत्र में वच्छ कह कर पुकारा गया है), वज्जि, काशी और कोसल। डा० विमलाचरण लाहा ने कुछ सन्देहपूर्वक सुझाव दिया है कि कदाचित् भगवती-सूत्र का मोलि वही है जो पालि सूची का मल्ल जनपद (इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ १९)। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भी मोलि को मल्ल का विकृत रूप माना है (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९६)। डा० रायचौधरी का यह भी मत है कि भगवती-सूत्र का

अंगुत्तर-निकाय में निर्दिष्ट सोलह महाजनपदों का भौगोलिक विवरण देने से पहले हमें उनके युग पर कुछ विचार कर लेना चाहिये। इस विषय में सबसे प्रथम याद रखने की बात यह है कि जिस समय यह सूची बनाई गई थी, उस समय से बुद्ध-काल की राजनैतिक परिस्थिति में कुछ परिवर्तन हो गये थे। उदाहरणतः, जैसा हम आगे देखेंगे, उपर्युक्त सूची में अंग जनपद का एक स्वतन्त्र स्थान है, परन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग मगध राज्य का ही एक अंग हो गया था और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नाम मात्र को रह गया था। यही हालत काशी जनपद की थी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल मे काशी उसी प्रकार कोसल राज्य का एक अंग हो गया था, जिस प्रकार अंग मगध का। कुछ अन्य जनपदों के भी स्वतन्त्र अस्तित्व इसी प्रकार मिट रहे थे, या मिट चुके थे और तत्कालीन राजनैतिक भूगोल की एक प्रवृत्ति छोटे-छोटे जनपदों के समीपी राज्यों में विलीनीकरण के द्वारा एक सार्व-भौम सत्ता की स्थापना की ओर थी। इस प्रकार कुरु और उत्तर-पंचाल का काफी भाग कोसल राज्य में जा चुका था और सूरसेन जनपद अवन्ती के प्रभाव में था। चेदि और दक्षिण-पंचाल के कुछ भाग पर वंस राज्य का अधिकार हो गया था।

---

मालव (मालवय) वही है जो पालि सूची की अवन्ती और उन्होंने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि अंगुत्तर-निकाय की सूची भगवती-सूत्र की सूची की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, क्योंकि भगवती-सूत्र में भारत की पूर्वी और दक्षिणी दिशाओं के अधिक दूरस्थ भागों की जानकारी की सूचना मिलती है। (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९६)। डा० ई० जे० थॉमस का कहना है कि भगवती-सूत्र की सूची सम्भवतः दक्षिण में तैयार की गई थी, क्योंकि उसमें उत्तर भारत के कम्बोज और गन्धार जनपदों का उल्लेख नहीं है। देखिये उनकी "हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट", पृष्ठ ६। महाभारत के कर्ण-पर्व में कुरु, पंचाल, शाल्व, मत्स्य, चेदि, शूरसेन, नैमिष, मागध, कोसल, काशी, अंग, कलिंग, गान्धारक और मद्रक, इन १४ जनपदों का उल्लेख है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में गन्धार, अवन्ती, कोसल, उशीनर, विदेह, मगध, अंग और वंग जनपदों का उल्लेख है। विभिन्न सूचियाँ विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। अतः उनमें बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियों के कारण अनिवार्य रूप से विभिन्नताएँ आ गई हैं।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय तो स्थिति यहाँ तक उत्पन्न हो रही थी कि विशाल वज्जि संघ भी मगध राज्य में जाने वाला था और विडूडभ के विनाश के उपरान्त सम्पूर्ण कोसल राज्य भी। मल्लों के दो छोटे गणतंत्रात्मक राज्य भी बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद, जैसा हम पहले मल्ल गणराज्य के विवेचन में देख चुके हैं, अधिक दिन तक अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम नहीं रख सके। इस प्रकार जहाँ तक भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, सोलह महाजनपदों में से अधिकांश अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुके थे, और कई की स्थिति डाँवाडोल थी। अतः सोलह महाजनपदों के युग को हम भगवान् बुद्ध के जीवन-काल से एक या दो शताब्दी पूर्व का मान सकते हैं। परन्तु दूसरी ओर हम देखते हैं कि यद्यपि काशी और अंग जैसे जनपद बुद्ध के जीवन-काल में अपने स्वतन्त्र राजनैतिक अस्तित्व को खो चुके थे, परन्तु उनका जनपदीय स्वरूप और परम्पराएँ अभी सुरक्षित थीं, जैसा कि इस बात से प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध के समय में भी वहाँ क्रमशः कोसल और मगध के राजाओं ने 'काशिराज' (कासिक राजा) और 'अंगराज' (अंगराजा) नाम से अपने सम्बन्धी जागीरदारों को छोड़ रक्खा था। इसलिये सोलह महाजनपदों की स्थिति भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी कही जा सकती है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सोलह महाजनपदों का युग भगवान् बुद्ध के जीवन-काल या उससे कुछ पूर्व का है। अब हम अलग-अलग जनपदों के भौगोलिक विवरण पर आते हैं।

अंग जनपद को धम्मपदट्ठकथा[1] में एक "रट्ठ" (राष्ट्र) कहकर पुकारा गया है। बुद्ध-पूर्व काल में अंग एक स्वतन्त्र राष्ट्र था, परन्तु बुद्ध के जीवन-काल में वह मगध के अधीन होकर उसका एक अंग हो गया। पालि तिपिटक में अंग और मगध को एक साथ रखकर "अंग-मगध" (अंगमगधा) के द्वन्द्व समास के रूप में अक्सर प्रयुक्त किया गया है।[2] उरुवेला के जटिल संन्यासी उरुवेल कस्सप (उरु-

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४।

२. "अंगमगधा"। जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५), "अंगमगधानं"। महासकुलुदायि-सुत्तन्त (मज्झिम०। २। ३। ७); "अंगो च मगधा"। थेरीगाथा, गाथा ११० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये महावग्गो

विल्व काश्यप) ने जो महायज्ञ किया था उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि अंग और मगध के लोग, जो उरुवेला के चारों ओर बसे हुए थे, बहुत सा खाद्य-भोज्य लेकर आये थे।[1] चम्पेय्य जातक के अनुसार चम्पा नदी (वर्तमान चाँदन) अंग और मगध की विभाजक प्राकृतिक सीमा थी, जिसके पूर्व और पश्चिम ये दोनों जनपद क्रमशः बसे हुए थे। इस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल में जब कि अंग एक स्वतन्त्र राष्ट्र था, अंग वह प्रदेश माना जाता था जो मगध के पूर्व मे चम्पा नदी के उस पार बसा हुआ था। अंग जनपद की पूर्वी सीमा सम्भवतः राजमहल की पहाड़ियाँ थी। उसकी उत्तरी सीमा कोसी नदी थी और दक्षिण मे उसका विस्तार समुद्र तक था। कनिंघम का मत है कि अंग जनपद का विस्तार आधुनिक बिहार राज्य के भागलपुर और मुंगेर जिलों के प्रायः समान था।[2] उनके इस मत को डा० विमलाचरण लाहा[3]

---

(विनय पिटकं), पठमो भागो, पृष्ठ ४१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ६३ (भारतीय ज्ञानपीठ काशी संस्करण); मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१; गोपथ-ब्राह्मण (२।९) मे भी अंग और मगध का "अंग-मगधा" के रूप में संयुक्त रूप से उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के व्रात्य-काण्ड में मगध के लोगों के साथ-साथ अंग जनपद-वासी भी व्रात्य अर्थात् वैदिक संस्कृति के बहिर्भूत बताये गये हैं। इस सम्बन्ध मे देखिये महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की पुस्तक "मगधन लिटरेचर" का प्रथम लेक्चर "दि आरीजिनल इनहेबीटेन्टस् ऑव मगध" शीर्षक भी (पृष्ठ १-२१); मिलाइये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११। रामायण और महाभारत मे भी अंग लोगों का उल्लेख है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी (४।१।१७०; २।४।६२) मे अंग देश का उल्लेख वंग, कलिंग और पुण्ड्र आदि के साथ मिला कर किया है।

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४६।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ६; इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ५०; इण्डोलोजीकल स्टडीज़, भाग तृतीय, पृष्ठ ४८।

और नन्दोलाल दे[1] ने स्वीकार किया है और स्मिथ[2] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[3] का भी प्राय: इसी प्रकार का मत है। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद में सम्मिलित माना है।[4]

अंग जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए "सुमंगलविलासिनी"[5] में कहा गया है कि इस प्रदेश में 'अंग' (अंगा) नामक लोग रहते थे, इसलिये यह जनपद उनके नाम पर 'अंग' कहलाया। 'अंग' लोगों ने यह नाम अपने अंगों (शरीरों) की सुन्दरता के कारण पाया। धीरे-धीरे यह नाम रूढि के द्वारा (रूल्हिवसेन) उन लोगों के स्थान पर उस जनपद या प्रदेश के लिये भी प्रयुक्त होने लगा, जहाँ वे रहते थे।

भगवान् बुद्ध ने वाराणसी के बाद (मगध के साथ) अंग देश को अपने धर्म-प्रचार का केन्द्र बनाया। अंग में किये गये उनके प्रचार-कार्य का विस्तृत विवरण विनय-पिटक[6] में है। जातकट्ठकथा की निदान-कथा में कहा गया है कि अंग-मगध प्रदेश के दस सहस्र कुल-पुत्र भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के साथ उनकी राजगृह से कपिलवस्तु की यात्रा में गये थे।[7]

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ७।

२. अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३२ (चतुर्थ संस्करण)।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४२; दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३१७।

४. जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १८९७, पृष्ठ ९५।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ ७२९। महाभारत (१।१०४।५३-५४) में कहा गया है कि अंग देश का यह नाम उसके एक अंग नामक राजा के नाम पर पड़ा। इस राजा को ऐतरेय ब्राह्मण (८।४, २२) के अंग वैरोचन से मिलाया गया है। रामायण (१।२३।१४) के अनुसार अंग देश का यह नाम पड़ने का यह कारण था कि क्रुद्ध शिव से भयभीत होकर मदन यहाँ भाग कर आया था और यहीं अपने अंग (शरीर) को छोड़कर वह अनंग हुआ था।

६. पृष्ठ ८९-९४ (हिन्दी अनुवाद)।

७. देखिये जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ६३ (भारतीय ज्ञानपीठ

अंग और मगध में बुद्ध-पूर्व काल से शत्रुता की एक परम्परा सी चली आ रही थी। दोनों में शक्ति के लिये संघर्ष चला आ रहा था, जिसमें कभी सफलता एक पक्ष को मिल जाती थी, कभी दूसरे को। इस प्रकार के भाग्य-परिवर्तन के अनेक उदाहरण जातकों[1] में मिलते हैं। यह निश्चित है कि बुद्ध-पूर्व काल में अंग एक स्वतन्त्र, बलिष्ठ और समृद्ध राष्ट्र था। एक समय था जब स्वयं मगध अंग राष्ट्र में सम्मिलित था[2] और उसका राज्य समुद्र तक फैला था। विधुर पण्डित जातक में राजगह (राजगृह) को अंग राज्य की राजधानी बताया गया है। यह इसी समय की परिस्थिति को प्रकट करता है। एक दूसरे जातक में उल्लेख है कि एक बार अंगराजा (अंगराज) ने मगध राजा को हरा दिया और उसकी सेना उसे खदेड़ती हुई चम्पा नदी तक ले गई जिसमें हताश होकर मगधराज कूद पड़ा। बाद में नाग-राज की सहायता से उसने दुबारा अंगराज पर चढ़ाई की और इस बार सफलता उसके हाथ लगी[3]। एक जगह जातक में ऐसा भी उल्लेख है कि ब्रह्मवड्ढन (वाराणसी) के राजा मनोज ने एक बार अंग और मगध दोनों जनपदों को जीत लिया।[4] अंगराज ब्रह्मदत्त ने (बिम्बिसार के पिता) भाति या भातिय को युद्ध में परास्त कर दिया था, ऐसा दीपवंस[5] में उल्लेख है। चम्पेय्य जातक से हमें पता चलता है कि अंग और मगध में सत्ता के लिये प्राय: लगातार युद्ध चलता रहता था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में उल्लेख है कि अत्यन्त प्राचीन काल में

---

काशी संस्करण); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११२ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

१. देखिये विशेषत: जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४; जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६; जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७१ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

२. देखिये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७२ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४-४५५ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६।

५. ३।५२।

जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) के राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राज्यों में विभक्त किया था। इनमें से एक अंग राज्य था। इस सुत्त के अनुसार अंग देश का राजा इस समय धृतराष्ट्र (धतरट्ठ) था। डॉ० जी० पी० मललसेकर का मत है कि धृतराष्ट्र द्वारा शासित यह अंग कोई दूसरा देश होना चाहिये।[1] परन्तु ऐसा मानना अनिवार्य नही है। महाभारत के कर्ण-पर्व के आधार पर हम जानते हैं कि कर्ण अंग देश का राजा था। "अंगेषु वर्तते कर्ण येषामधिपति-र्भवान्"। पार्जिटर ने पुराणों के आधार पर दिखाया है कि मगध के राजवंश की नीव कुरु के पुत्र सुधन्वा ने डाली थी। इसी वंश के राजा बृहद्रथ ने, जिसका पुत्र जरासन्ध था, बार्हद्रथ वंश की नीव डाली थी और गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनाया था।[2] अतः दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त मे धतरट्ठ (धृतराष्ट्र) को जो अंग देश का राजा बताया गया है, उसमें भी कुछ न कुछ ऐतिहासिक आधार हो सकता है और हमें धृतराष्ट्र द्वारा शासित अंग देश को अलग देश मानने की आवश्यकता नही है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग पूरी तरह मगध की अधीनता मे आ गया। इसके अनेक प्रमाण हमें पालि तिपिटक मे मिलते है। राजगृह को, जो मगध की राजधानी था, अंग और मगध देशो की आमदनी का मुख कहा गया है।[3] इससे यह प्रकट होता है कि उस समय अंग मगध में ही सम्मिलित था। धम्मपदट्ठकथा मे स्पष्टतापूर्वक कहा गया है कि तीन सौ योजन अंग-मगध के राज्य में बिम्बिसार की आज्ञा चलती थी। विनय-पिटक मे कहा गया है कि मगध में ८०,००० गॉव थे।[4] यह संख्या अंग और मगध के गाँवों को मिलाकर ही थी। बुद्ध-काल में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार अंग और मगध दोनों देशों का ही राजा माना जाता

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १७।

२. एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन, पृष्ठ ११८, २८२।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १५, टिप्पणी।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, टिप्पणी २; देखिये वहीं पृष्ठ १९९, २००, २०१; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८ भी।

था और दोनों देशों के लोग उसका आदर करते थे।[1] दीघ-निकाय के सोणदण्ड-सुत्त में कहा गया है कि चम्पा-निवासी प्रसिद्ध ब्राह्मण सोणदण्ड (स्वर्णदण्ड) को चम्पा की सारी आय राजा बिम्बिसार की ओर से दान में मिली हुई थी। वह ब्राह्मण "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त. . .जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य सहित राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय चम्पा का स्वामी था"।[2] चूंकि चम्पा नगरी अंग देश में सम्मिलित थी, अतः उसका किसी ब्राह्मण को दान करना बिम्बिसार के लिये तभी सम्भव हो सकता था जब अंग जनपद पर उसका आधिपत्य हो, अतः स्पष्टतः इससे यह प्रकट होता है कि अंग मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के राज्य मे सम्मिलित था।[3] फिर भी अंगराजा (अंगराज) की स्थिति एक जागीरदार के रूप में बिम्बिसार ने इसलिये कायम कर रक्खी थी कि अंग लोगों की भावनाओं को धक्का न पहुँचे।[4] यह अंगराजा सम्भवतः बिम्बिसार का ही कोई सम्बन्धी था और चम्पा में रहता था। एक ब्राह्मण को पाँच सौ कार्षापण प्रतिदिन भिक्षा-स्वरूप यह देता था।[5] इसके अतिरिक्त उसका कोई उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नही है। हम कोसल राज्य के विवरण में देख चुके हैं कि इसी प्रकार काशी में, जो कोसल राजाओं का विजित था, प्रसेनजित् ने अपने सगे भाई को काशिराज के रूप में

---

१. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९९; मिलाइये थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ५४४ भी।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४४।

३. तिब्बती दुल्व मे स्पष्टतापूर्वक उल्लेख किया गया है कि युवराज होने के समय ही बिम्बिसार ने अंग देश के अन्तिम स्वतन्त्र शासक ब्रह्मदत्त को मारकर उसकी राजधानी चम्पा पर अधिकार कर लिया था और उसके पिता ने उसे वहाँ का उपराज बना दिया था। देखिये हार्डी : ए मैनुअल ऑव बुद्धिज्म, पृष्ठ १६३, टिप्पणी।

४. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन : मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ज (प्राक्कथन)।

५. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।४।

स्थापित कर रक्खा था। इसी नीति का यह परिणाम था कि अंग और मगध तथा काशी और कोसल के लोगों में पारस्परिक स्नेह और सौहार्द, को हम बुद्ध-काल में पाते हैं।

यद्यपि अंग और मगध के राजाओं में बुद्ध-पूर्व काल में काफी संघर्ष चला और जब तक अंग पूर्णतः मगध में सम्मिलित नहीं हो गया, यह संघर्ष प्रायः चलता ही रहा। परन्तु इन दोनों जनपदों के लोगों में सदा मित्रता के सम्बन्ध रहे और दोनों के लोगों के एक दूसरे के यहाँ आने-जाने के उल्लेख मिलते हैं।[1] वर्ष मे एक बार इन दोनों जनपदों के लोग मिलकर महाब्रह्मा की पूजा बड़े ठाटबाट से करते थे, जिसका संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा में विस्तृत विवरण उपलब्ध है।[2] प्रतिवर्ष चम्पा के तट पर इन दोनो जनपदों के निवासी यज्ञ करते थे और प्रभूत सामग्री दान करते थे।[3] गया प्रदेश में जटिल साधुओं के महायज्ञ में, जो साल में एक बार होता था, ये लोग प्रभूत सामग्री लेकर उपस्थित होते थे। आमोद-प्रमोद में भी अंग-मगध के लोग किसी से कम नहीं थे। चम्पा नदी के तट पर ही, जो इन दोनो जनपदों की सीमा थी, ये लोग एक बड़ा मेला लगाते थे जिसमे नृत्य-गान के अलावा मांस-मछली (मच्छमंसं) और मदिरा का खान-पान भी चलता था।[4] वस्तुतः बुद्ध के जीवन-काल में इन दोनों जनपदों के निवासी दो पृथक् राष्ट्र न होकर एक ही राष्ट्र थे। वे मेल से रहते थे और उनका जीवन सुखी था। अंग जनपद को पालि तिपिटक में सदा एक समृद्ध देश बताया गया है[5] और इस बात में बौद्ध संस्कृत

---

१. देखिये जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २११ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५-२७०।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४-४५५ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

४. देखिये जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २११ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

५. देखिये विशेषतः अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २, २५६।

ग्रन्थ महावस्तु[1] भी उसका समर्थन करता है। अंगराज की विपुल सम्पत्ति का वर्णन तो किया ही गया है, अंग की चम्पा नगरी के निवासी श्रेष्ठि-पुत्र सोण कोटि-विंश (सोण कोलिवीस) के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह बीस करोड़ का धनी था[2] और अस्सी गाड़ी अशर्फी और हाथियों के सात अनीक (एक अनीक बराबर छह हाथी और एक हथिनी) को छोड़कर प्रव्रजित हुआ था।[3] अंग देश के लोग बड़े कुशल व्यापारी थे। विमानवत्थु की अट्ठकथा[4] में कहा गया है कि अनेक धनी व्यापारी अंग देश में रहते थे। वे अपने व्यापारिक संघों को लेकर सिन्धु-सौवीर देश तक व्यापारिक उद्देश्य से यात्रा करते थे।[5] जैसा हम अभी देखेंगे, अंग देश के अन्तर्गत चम्पा के निवासी स्वर्ण-भूमि (सुवण्ण-भूमि) तक व्यापारिक यात्राएँ करते थे।

अंग देश के मुख्य चार नगरों का विवरण पालि तिपिटक मे उपलब्ध होता है, जिनके नाम है, चम्पा, भद्दिय, अस्सपुर और आपण। चम्पा अंग जनपद की राज-धानी थी। समृद्ध, स्फीत, जनाकीर्ण यह नगरी बुद्ध-काल के छह प्रसिद्ध महानगरो (महानगरानि) में गिनी जाती थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त मे उसका इस रूप में उल्लेख है, यह हम पहले निर्दिष्ट कर चुके है।[6] महागोविन्द-सुत्तन्त के आधार पर हम यह भी देख चुके है कि प्राचीन भारतीय चक्रवर्ती राजा रेणु के ब्राह्मण-मंत्री महागोविन्द ने इस नगरी की स्थापना की थी।[7] चम्पा नामक नदी के तट पर चम्पा नगरी बसी हुई थी, गंगा के दक्षिण की ओर। उसकी इसी स्थिति का चीनी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

३. वहीं, पृष्ठ २०४।

४. पृष्ठ ३३७।

५. वहीं, पृष्ठ ३३२।

६. देखिये प्रथम परिच्छेद मे दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

७. देखिये प्रथम परिच्छेद मे दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

यात्रियों ने भी उल्लेख किया है।[1] चम्पा नदी आधुनिक चाँदन नदी है, यह हम पहले देख चुके हैं। चम्पेय्य जातक के अनुसार चम्पेय्य नामक नाग का अधिकार इस नदी पर था। महाजनक जातक में चम्पा नगरी की दूरी मिथिला से ६० योजन बताई गई है और इसके वर्णन से विदित होता है कि ये दोनो नगर बैलगाड़ी के मार्ग से जुड़े हुए थे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा एक अतीव सुन्दर नगरी थी। महाजनक जातक मे उसके कूटागार, प्राकार और विशाल दरवाजों का वर्णन है। कनिंघम ने चंम्पा नगरी की पहचान आधुनिक चम्पापुर और चम्पानगर नामक दो गाँवों से की है, जो भागलपुर से २४ मील पूर्व में स्थित हैं।[2] इतने काल-गत और स्थान-गत परिवर्तनों के बाद चम्पा नगरी कम से कम अपने नाम की स्मृति इन गाँवों के रूप में बनाये हुए है, यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। प्रायः सभी विद्वान् चम्पा नगरी की उपर्युक्त आधुनिक पहचान से सहमत हैं।[3] महा-भारत के अनुसार चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी था, जिसे परिवर्तित कर उसका नाम चम्पा वहाँ के राजा चम्प के समय में रक्खा गया।[4] अनेक पुराणों में भी इसी प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं।

चम्पा नगरी बुद्ध-काल में अपनी रमणीय गग्गरा पुष्करिणी (गग्गरा पोक्ख-

---

१. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४७; वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८१; मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १०७, पद-संकेत ३।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४७।

३. उदाहरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८२, पद-संकेत ५,; रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २५, (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०); मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८५७; लाहा : ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ६; राहुल सांकृत्यायन : बुद्धचर्या, पृष्ठ २२४, पद-संकेत ४; हेमचन्द्र राय-चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १०७।

४. चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा। महाभारत १२।५।१३४।

रणी) के कारण अत्यन्त विख्यात थी। इस पुष्करिणी को रानी गग्गरा ने खुदवाया था।[१] गग्गरा पुष्करिणी के तट पर चम्पक या चम्पा के वृक्षों का एक विशाल उद्यान था जिसकी मधुर गन्ध से चारों ओर का वातावरण सुरभित रहता था। पाँच प्रकार के चम्पा के फूल इस उद्यान में पाये जाते थे जिनमें से सफेद रंग के फूलों की विशेष प्रशंसा आचार्य बुद्धघोष ने की है।[२] मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा का कहना है कि चम्पे के पेड़ों के इस विशाल उद्यान के कारण ही उसके समीप स्थित नगरी का नाम चम्पा पड़ा।[३] यह कुछ आश्चर्यजनक दिखाई न पडेगा कि महाभारत (अनुशासन पर्व) में भी चम्पा नगरी को उस के चम्पा के वृक्षों के विशाल उद्यान के लिये प्रसिद्ध बताया गया है, परन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके है, महाभारत मे इन पुष्प-वृक्षों के कारण नही बल्कि चम्प नामक राजा के नाम पर इस नगर का 'चम्पा' नाम प्राप्त करना दिखाया गया है। गग्गरा पोक्खरणी के तट पर स्थित चम्पक-वन बुद्ध-काल में परिव्राजकों का एक प्रिय स्थान था जहाँ का चतुर्दिक् वातावरण उनके आध्यात्मिक संलापों से गुजायमान रहता था। हम देखते है कि इस प्रकार के परिव्राजकाराम बुद्ध-काल में राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली और कौशाम्बी जैसे अनेक नगरो मे भी विद्यमान थे और वहाँ निरन्तर दार्शनिक गोष्ठियाँ चलती रहती थी। भगवान् बुद्ध कई बार चम्पा के इस स्थान पर गये थे और उनके शिष्यों में सारिपुत्र और वंगीश के भी यहाँ जाने के विवरण प्राप्त है। दीघ-निकाय के सोणदण्ड-सुत्त का उपदेश भगवान् ने चम्पा के गग्गरा पोक्खरणी के तट पर विहार करते हुए ही दिया था।[४] यही चम्पा-निवासी सोणदण्ड ब्राह्मण अन्य ब्राह्मण-महाशालों के साथ भगवान् के दर्शनार्थ आया था। यहीं एक बार सारिपुत्र को साथ लेकर भगवान् बुद्ध गये थे और उनकी उपस्थिति में सारिपुत्र ने भिक्षुओं के समक्ष "दसुत्तर-सुत्त" का उपदेश दिया था।[५] चम्पा

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २७९।

२. वहीं, पृष्ठ २७९-२८०।

३. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६५।

४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४४।

५. वहीं, पृष्ठ ३०३।

में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करते समय ही भगवान् ने मज्झिम-निकाय के कन्दरक-सुत्तन्त का उपदेश दिया था,[१] और अंगुत्तर-निकाय[२] के कई सुत्तों का भी। इसी प्रकार जब भगवान् गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार कर रहे थे तो उनके कवि-शिष्य स्थविर वंगीश (वंगीस) ने एक गाथा के द्वारा भगवान् की स्तुति की थी, जो सयुत्त-निकाय के गग्गरा-सुत्त में आज हमें प्राप्त है।[३] विनय-सम्बन्धी कई नियमों का विधान भी भगवान् ने चम्पा की इसी पुष्करिणी के तीर पर निवास करते हुए किया, जो आज हमारे लिये विनय-पिटक के चम्पेय्यक्खन्धक में सुरक्षित है।[४] विनय-पिटक में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि चम्पा में भगवान् कहाँ से आये और फिर वहाँ से कहाँ चले गये।

भिक्षुओं को एक तल्ले के जूते (चप्पल) पहनने की अनुमति भगवान् ने चम्पा में दी। जब भगवान् चम्पा मे विहार कर रहे थे, उसी समय काशि देश के वासभगाम नामक ग्राम का एक आश्रम-निवासी भिक्षु, जिसका नाम काश्यपगोत्र था और जिसे कुछ नवागन्तुक भिक्षुओं ने उत्क्षेपण का दण्ड दिया था, भगवान् के पास आया और भगवान् ने उसके विरुद्ध किये गये उत्क्षेपण कार्य को अवैध माना और बाद में इस काम को करने वाले भिक्षुओ को बुरा-भला कहा।[५] भगवान् बुद्ध के कुछ प्रमुख शिष्यों की, जैसे कि सोण कोटिविश (सोण कोलिवीस), जम्बुगामक, नन्दक और भरत की, जन्मभूमि चम्पा ही थी और जिन भिक्षुणियों ने यहाँ निवास किया, उनके नाम है थुल्लनन्दा, भद्रा और उनकी सहचारिणी भिक्षुणियाँ। चम्पा-निवासी स्थविर सोण कोटिविश भिक्षु होने से पूर्व अंग

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०५।

२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९, १६८; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १५१, १८९।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १५५।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-३२१; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५१।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-२९९।

देश के एक भूस्वामी (पद्धगु) थे।[१] महाजनक जातक से विदित होता है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा का एक नाम काल-चम्पा भी था।[२] ऐसा वर्णन मिलता है कि हिमालय-वासी कुछ साधु चम्पा में नमक और खटाई लेने आये थे।[३]

जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा एक समृद्ध और व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगरी थी। उसके व्यापारी सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापार के लिये जाते थे।[४] विद्वानों की यह निश्चित मान्यता है कि चम्पा के निवासियों ने ही हिन्द-चीन जाकर अन्नाम के प्राचीन हिन्दु राज्य की स्थापना की थी, जिसका नाम अपने इस नगर के नाम पर उन्होंने चम्पा ही रक्खा।

पाँचवी शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान भारत-भ्रमण करता हुआ चम्पा भी गया था। यहाँ वह पाटलिपुत्र से गंगा के मार्ग से पहुँचा था। उसने चम्पा को पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में गगा के दक्षिण तट पर स्थित देखा था।[५] प्रसिद्ध चीनी यात्री यूआन् चुआङ्ग भी सातवी शताब्दी ईसवी में चम्पा गया था। वह ईरण पर्वत (वीरान पर्वत) अर्थात् वर्तमान मुगेर जिले से यहाँ गंगा के किनारे होते-होते गया था और इन दोनों स्थानों के बीच की दूरी उसने ३०० 'ली' अर्थात् करीब ५० मील बताई है। इसी विवरण के आधार पर जनरल कनिंघम ने चम्पा की पहचान आधुनिक भागलपुर के समीप चम्पापुर और चम्पानगर से की, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। यूआन् चुआङ्ग ने चम्पा का उल्लेख एक प्रदेश और नगर दोनों रूपों मे किया है और चम्पा का चीनी प्रत्यक्षरीकरण "चम्पो" किया है।[६] उसने गग्गरा पुष्करिणी का भी उल्लेख

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६३२; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३२ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी सस्करण)।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २५६ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

४. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६४।

५. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

६. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८१।

किया है और उसे 'क-ग' या 'ग-ग' कहकर पुकारा है।[1] ईरण पर्वत प्रदेश (जिला मुगेर) और चम्पा की ख्याति यूआन् चुआङ के समय में युद्ध में काम आने वाले हाथियों के लिये बहुत थी, ऐसा साक्ष्य इस चीनी यात्री ने दिया है।[2] "बुद्धवंस" के अनुसार भगवान् बुद्ध जिस वस्त्र को पहन कर स्नान करते थे, उस पर एक चैत्य का निर्माण चम्पा में किया गया था।[3]

भद्दिय, जिसे दिव्यावदान[4] में भद्रंकर कहा गया है, अग जनपद का एक अन्य नगर था।[5] जैन साहित्य के भद्दिय या भद्रिका नगर से इसे मिलाया जा सकता है।[6] विनय-पिटक में उल्लेख है कि भगवान् एक बार वाराणसी से यहाँ गये थे और इसके समीप जातियावन (जातिकावन) मे ठहरे थे।[7] एक दूसरी बार भी भगवान् यहाँ वैशाली से गये थे और जातियावन में ही ठहरे।[8] अन्य कई बार भी भगवान् यहाँ गये और प्राय उक्त वन में ही ठहरे।[9] भद्दिय नगर के जातियावन में निवास करते समय ही भगवान् ने भिक्षुओं के लिये खड़ाऊँ पहनने का निषेध किया था।[10] भद्दिय नगर के समीप स्थित "जातियावन" इस नाम से इसलिये

---

१. वहीं, पृष्ठ १८२।

२. वहीं, पृष्ठ १८२।

३. "चम्पायं उदकसाटिका।" बुद्धवंस, पृष्ठ ७५ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

४. पृष्ठ १२३।

५. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४; वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

६. जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् महावीर ने अपने दो वर्षावास भद्दिय में किये।

७. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७।

८. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८।

९. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६ में हम भगवान् को यहाँ विहार करते देखते हैं। "एकं समयं भगवा भद्दिये विहरति जातियावने।" देखिये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

१०. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७-२०८।

पुकारा जाता था, क्योंकि यहाँ जाति (जाति-जातिकोश-जायफर) नामक पुष्पों के पेड़ अधिकता से पाये जाते थे।[१] भद्दजि नामक स्थविर, जो भगवान् बुद्ध के शिष्य थे, भद्दिय नगर के ही रहने वाले थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भद्दिय नगर को वर्तमान मुंगेर से मिलाया है।[२] परन्तु वस्तुतः इसे भदरिया नामक स्थान से ही मिलाना अधिक उचित है, जो भागलपुर से ८ मील दक्षिण में है।[३] 'भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में इस नगर में मेण्डक नामक एक प्रसिद्ध श्रेष्ठी रहता था, जिसके पुत्र धनंजय और पुत्रवधू सुमना की पुत्री विशाखा थी।' जो बाद में महोपासिका बनी। मेण्डक का परिवार अपने सद्गुणों के लिये उस समय अत्यन्त प्रसिद्ध था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि इसके पाँच सदस्य, अर्थात् मेण्डक श्रेष्ठी, उसकी भार्या चन्द्रप्रभा, उसका ज्येष्ठ पुत्र धनंजय और उसकी पत्नी सुमना देवी और मेण्डक श्रेष्ठी का दास पुण्णक (पूर्णक), ये पाँच व्यक्ति उस समय भद्दिय नगर के पाँच महापुण्यात्मा पुरुष माने जाते थे। भगवान् जब वैशाली से भद्दिय नगर में गये थे तो मेण्डक श्रेष्ठी जातियावन में उनके दर्शनार्थ आया था और दूसरे दिन बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से उसने खाद्य-भोज्य से संतृप्त कर भगवान् से प्रार्थना की थी, "जब तक भन्ते! भगवान् भद्दिय में विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ की सदा के लिये भोजन से सेवा करूँगा।"[४] भद्दिय में इच्छानुसार विहार कर भगवान् वहाँ से अंगुत्तराप चले गये थे,[५] जिसके सम्बन्ध में हम अभी देखेंगे।

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २८०।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७, पद-संकेत १; देखिये वहीं, पृष्ठ २४८, पद-संकेत १ तथा पृष्ठ ५६४ भी; बुद्धचर्या, पृष्ठ १४२, पद-संकेत २; देखिये वहीं, पृष्ठ ५५८ भी।

३. देखिये जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १९१४, पृष्ठ ३३७ (नन्दोलाल दे लिखित "नोट्स् ऑन एन्शियन्ट अंग" शीर्षक लेख)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८-२४९,

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९।

अंग देश का एक अन्य प्रसिद्ध कस्बा अस्सपुर (अश्वपुर) था। चेतिय जातक के वर्णनानुसार चेति (चेदि) देश के राजा उपचर के पाँच पुत्रों में से द्वितीय ने इसे बसाया था। अस्सपुर में ही निवास करते समय भगवान् ने मज्झिम-निकाय के महा-अस्सपुर-सुत्तन्त[1] और चूल-अस्सपुर-सुत्तन्त[2] का उपदेश दिया था।

अंग-वासियों का एक अन्य प्रसिद्ध व्यापारिक कस्बा (निगम) आपण था। इसे "अंगानं निगमो" अर्थात् अंग-वासियों का कस्बा कहकर अक्सर पुकारा गया है।[3] मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपञ्चसूदनी) में इस कस्बे का 'आपण' नाम पड़ने का यह कारण बताया गया है कि इसमें २०,००० आपणों (दूकानों या बाजारों) के मुँह विभक्त थे। इस प्रकार आपणों (दूकानों या बाजारो) से भरे रहने के कारण इसका नाम 'आपण' पड़ा था।[4] वैदिक ज्ञान के महापण्डित शैल ब्राह्मण का (जिसने बाद में भिक्षु-संघ में प्रवेश किया) निवास-स्थान यही कस्बा था।[5] एक बार भगवान् बुद्ध ने अपने महाप्रज्ञावान् भिक्षु-शिष्य धर्मसेनापति सारिपुत्र के साथ इस कस्बे में विहार किया था और उनके साथ श्रद्धा पर सलाप किया था, जो संयुत्त-निकाय के आपण-सुत्त मे निहित है।[6] मज्झिम-निकाय के पोतलिय-सुत्तन्त,[7] लकुटिकोपम-सुत्तन्त[8] और सेल-सुत्तन्त[9] (जो सुत्त-निपात[10] में भी आया है)

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १६१-१६४।

२. वहीं, पृष्ठ १६५-१६७।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२६।

४. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

५. सेल-सुत्त (मज्झिम० २।५।२); थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४७; महाकवि अश्वघोष ने भी आपण में शैल ब्राह्मण को दीक्षित किये जाने का उल्लेख किया है। बुद्ध-चरित २१।१२।

६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२६।

७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१४-२१९।

८. वहीं, पृष्ठ २६३-२६६।

९. वहीं, पृष्ठ ३८१-३८५।

१०. सुत्त-निपात (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ११४-१२६।

का उपदेश भगवान् ने आपण कस्बे में विहार करते समय ही दिया था। यहीं पर केणिय जटिल भगवान् से मिलने आया था और उसने १२५० भिक्षुओं के सहित भगवान् को भोजन के लिये निमंत्रित किया था।[1] जैसा हम अभी देखेंगे, भगवान् भद्दिय से अंगुत्तराप प्रदेश में चले गये थे, जहाँ कुछ दिन विचरण करने के बाद वे उसके कस्बे आपण में पहुँचे थे। इससे यह प्रकट होता है कि भद्दिय और आपण सड़क के मार्ग से जुड़े हुए थे, जो अंगुत्तराप प्रदेश में होकर गुजरती थी। भद्दिय से आपण जाते हुए जब भगवान् १२५० भिक्षुओं के सहित अंगुत्तराप प्रदेश में होकर गुजर रहे थे, तभी रास्ते में एक वन में मेण्डक गृहपति ने भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध का धारोष्ण दूध से सत्कार किया था।[2]

ऊपर मज्झिम-निकाय के तीन सुत्तों (पोतलिय-सुत्तन्त, लकुटिकोपम-सुत्तन्त और सेल-सुत्तन्त) का हमने उल्लेख किया है, जिनका उपदेश भगवान् ने आपण में किया था। इन तीनों सुत्तों के आरंभ में यह कहा गया है "एक समयं भगवा अंगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो...येन आपणं नाम अंगुत्तरापानं निगमो तदवसरि। अर्थात्" "एक समय भगवान्... अंगुत्तराप (देश) में चारिका करते हुए, जहाँ अंगुत्तरापों का आपण नामक निगम था, वहाँ पहुँचे।" यह अंगुत्तराप क्या था ? अंगुत्तराप वस्तुतः अंग देश का ही वह भाग था, जो गंगा (महामही-गंगा) नदी के उत्तर में अवस्थित था। इसके "अंगुत्तराप" नाम से भी यह बात स्पष्टतः विदित होती है। 'अंगुत्तराप' नाम की व्याख्या करते हुए सुत्त-निपात की अट्ठकथा में कहा गया है, "अंगा एव सो जनपदो। गंगाय (महामही गंगाय) पन या उत्तरेण आपो, तासं अविदूरत्ता उत्तरापाति वुच्चति"।[3] इसका अर्थ यह है "अंग ही वह जनपद है। गंगा (महामही गंगा) नदी के उत्तर में जो पानी है, उसके अ-दूर उत्तर होने के कारण उत्तराप कहा जाता है"। इससे विदित

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८१; शैल ब्राह्मण के साथ-साथ केणिय के भी आपण में दीक्षित किये जाने का उल्लेख अश्वघोष ने बुद्ध-चरित (२१।१२) में किया है।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८-२५०।

३. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७।

होता है कि अंगुत्तराप अंग के उत्तर मे, गंगा नदी के उस पार का, उसके खादर का प्रदेश था, जो अंग जनपद में ही सम्मिलित माना जाता था। डा० मललसेकर ने भी इसे गंगा नदी के उत्तर में अंग देश का ही एक भाग माना है।[1] अंग के समान अंगुत्तराप भी मगध राज्य के अन्तर्गत था, यह इस बात से विदित होता है कि केणिय जटिल ने १२५० भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध को भोजन के लिये निमंत्रित किया था और जब वह उसकी तैयारी में लगा था तो शैल नामक ब्राह्मण ने उससे पूछा था "क्या आपके यहाँ मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार कल भोजन के लिये निमन्त्रित किये गये है ?"[2] यह निश्चित हो जाने पर कि अंगुत्तराप अंग जनपद का ही गंगा नदी के उत्तर वाला भाग था, उसकी आधुनिक स्थिति का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उसके सम्बन्ध में एक जगह लिखा है "कोसी (नदी) के पश्चिम तथा गंगा के उत्तर में अंगुत्तराप प्रदेश था"[3] और एक दूसरी जगह लिखा है, "अंगुत्तराप मुगेर और भागलपुर जिलों का गंगा के उत्तर वाला भाग था।"[4] दोनों वर्णनों का एक ही अर्थ है और वह यह कि अंग देश का वह भाग जो गगा नदी के उत्तर मे स्थित था, अंगुत्तराप कहलाता था। अंग देश का गंगा के उत्तर वाला भाग अंगुत्तराप कहलाता था और दक्षिण का केवल अंग, यद्यपि अगुत्तराप स्वय अग का ही एक भाग था। डा० मललसेकर ने सुझाव दिया है कि आपण अंगुत्तराप की राजधानी था।[5] अंगुत्तराप को अंग जनपद का ही एक अग मान लेने पर उसकी पृथक् राजधानी की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हाँ, उसे अंगुत्तराप का प्रधान नगर हम मान सकते हैं। आपण की ठीक आधुनिक पहचान करने का प्रयत्न किसी विद्वान् ने अब तक नहीं किया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २२, ७३४।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८२।

३. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ छः (प्राक्कथन)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९, पद-संकेत २; मिलाइये बुद्धचर्या, पृष्ठ १४४, पद-संकेत १; वहीं, पृष्ठ ५४२ भी।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २७७।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आतुमा नामक गाँव या नगर को अंगुत्तराप में बताया है,[१] जो ठीक नहीं जान पड़ता. क्योंकि विनय-पिटक में हम देखते हैं कि भगवान् आतुमा में कुसिनारा से आये थे और कुछ दिन आतुमा में निवास कर श्रावस्ती चले गये थे।[२] इस आधार पर आतुमा को कुसिनारा और सावत्थि के बीच में कोई स्थान मानना ही ठीक होगा।[३] हम उसे मल्ल और कोसल राज्यों में से किसी एक में रख सकते हैं।

अंग देश के उपर्युक्त कस्बों में भगवान् की चारिकाओं की भौगोलिक रूपरेखा विनय-पिटक के अनुसार कुछ इस प्रकार होगी। पहली बार भगवान् वाराणसी से भद्दिय आये[४] और वहाँ कुछ दिन निवास कर श्रावस्ती चले गये।[५] एक दूसरी बार भगवान् वैशाली से भद्दिय आये[६] और वहाँ से अंगुत्तराप चले गये।[७] अंगुत्तराप के वन में कुछ दिन विहार करने के पश्चात् भगवान् उसके कस्बे आपण में पहुँचे।[८] आपण में कुछ दिन विहार करने के पश्चात् हम भगवान् को कुसिनारा की ओर जाते देखते हैं।[९]

बुद्ध-पूर्व काल में मगध अंग की अपेक्षा एक निर्बल राष्ट्र था और दोनों में सत्ता के लिये संघर्ष चला करता था, यह हम पहले देख चुके हैं। मगध राज्य का विवरण देते समय हम यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार मगधराज

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५४।

३. मिलाइये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २४४।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७।

५. वहीं, पृष्ठ २०८।

६. वहीं, पृष्ठ २४८।

७. वहीं, पृष्ठ २४९; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४ भी।

८. वहीं, पृष्ठ २५०; देखिये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

९. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२।

श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा जीत लिये जाने पर बुद्ध के जीवन-काल में अंग मगध राज्य का एक अंग मात्र हो गया और उसकी स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ता समाप्त हो गई। यहाँ हम एक जनपद के रूप मे मगध का, या ठीक कहें तो मगधों का, मगध जनों का, पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर विवरण प्रस्तुत करेंगे।

मगध जनपद का बौद्ध धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः इसी जनपद में धम्म का आविर्भाव हुआ। विनय-पिटक में कहा गया है "मगध में मलिन चित्त वालों से चिन्तित, पहले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ था। अब अमृत के घर को खोलने वाले विमल (पुरुष) द्वारा जाने गये इस धर्म को लोक सुने।"[1] उरुवेला, जहाँ भगवान् ने ज्ञान प्राप्त किया, मगध जनपद का ही एक स्थान था। इस जनपद के अनेक नगरों, निगमों और ग्रामों का, जो भगवान् बुद्ध की स्मृति के कारण अमर हो गये है, हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। भगवान् बुद्ध के अनेक शिष्य मगध-निवासी थे और बुद्ध-धर्म का प्रारम्भिक प्रचार-केन्द्र मगध ही था, यह सब हम पहले निरूपित कर चुके है।

एक जनपद के रूप में मगध का विस्तार आधुनिक बिहार राज्य के गया और पटना जिलों के बराबर समझना चाहिये। उसके उत्तर मे गंगा नदी, पश्चिम में सोण नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी का बढा हुआ भाग और पूर्व में चम्पा नदी थी।

मगध जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण देते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस सम्बन्ध में लोग अनेक प्रकार की किवदन्तियाँ प्रपंचित करते हैं। 'बहुधा पपंचन्ति'। इस प्रकार की एक किंवदन्ती यह है कि जब राजा चेतिय, जिसने प्रथम बार संसार में झूठ बोलना शुरू किया, अपने इस कार्य के कारण धरती में धँसने लगा, तो जो लोग उसके पास खड़े हुए थे उन्होंने उससे कहा 'मा गधं पविस'। इसी से मिलती हुई दूसरी किंवदन्ती यह है कि जब राजा चेतिय धरती में प्रवेश

---

१. पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥
महावग्गो—विनय-पिटकं, पठमो भागो, पृष्ठ ८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कर गया, तो कुछ लोगों ने जो धरती खोद रहे थे उसे देखा और उसने उनसे कहा, "मा गधं करोथ"। इस प्रकार इन शब्दों 'मा गधं' के कारण मगध जनपद का यह नाम पड़ा। इन मनोरंजक अनुश्रुतियों का उल्लेख करने के बाद मगध के वास्तविक नामकरण का कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि मगध (मगधा) नामक क्षत्रिय जाति की निवास-भूमि होने के कारण यह जनपद 'मगध' कहलाया।[1] मगध जनपद के सम्बन्ध में अन्य सब आवश्यक बातों का उल्लेख हम मगध राज्य का विवरण देते समय कर चुके है।

काशी राष्ट्र (कासि रट्ठं) बुद्ध-पूर्व युग का सम्भवतः सबसे अधिक शक्ति-शाली जनपद था। परन्तु बुद्ध के जीवन-काल में उसकी स्थिति राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त नीची गिर गई और उसकी आय कोसल और मगध देश के राजाओं के झगड़े का कारण बन गई और जब तक काशी जनपद अन्तिम रूप से मगध राज्य का अंग न बन गया, यह झगड़ा चलता ही रहा।

काशी जनपद पूर्व में मगध और पश्चिम में वंस (वत्स) जनपद के बीच मे स्थित था। उसके उत्तर में कोसल जनपद था और दक्षिण में उसकी सीमा सम्भवतः सोण (सोन) नदी तक थी, यद्यपि अस्सक जातक में जिस समय की स्थिति का वर्णन है, उसके अनुसार (बुद्ध-पूर्व काल में) काशी राज्य का विस्तार दक्षिण मे गोदावरी के तट तक हो गया था, क्योंकि इस जातक मे अस्सक राज्य की राजधानी पोतलि नगर को काशी राज्य का नगर बताया गया है। धज-विहेठ जातक में काशी राज्य का विस्तार ३०० योजन बताया गया है।

जैसा हम पहले देख चुके है, कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय (छठी शताब्दी ईसवी-पूर्व के मध्य-भाग) में ही काशी जनपद कोसल राज्य का एक अंग हो गया था। हरितमातक जातक और वड्ढकि सूकर जातक के साक्ष्य पर हम देखते हैं कि महाकोसल ने अपनी पुत्री कोसला देवी का विवाह मगधराज बिम्बिसार से कर काशी-ग्राम की आय उसकी स्नान-सामग्री के व्यय के लिये दे दी थी। बाद में अजातशत्रु ने जब अपने पिता बिम्बसार को मार दिया तो कोसला देवी भी दुःखाभिभूत होकर मर गई। इस पर प्रसेनजित् ने अपने

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

भानजे अजातशत्रु से काशी ग्राम छीनना चाहा, जिस पर दोनों में काफी लम्बा संघर्ष चला और प्रसनजित् की तीन बार हार हुई, परन्तु अन्त में प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया और उदार नीति का अनुसरण कर उसे छोड़ दिया।[1] इतना ही नहीं, अपनी पुत्री वजिरा का विवाह उसने अजातशत्रु के साथ कर दिया और काशी ग्राम पूर्ववत् उसके स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये दिया। इसके बाद प्रसेनजित् के सेनापति दीर्घ चारायण (पालि, दीघ कारायन) ने, जिसके मामा बन्धुल मल्ल को (जो प्रसेनजित् का भूतपूर्व सेनापति था) बिना किसी अपराध के प्रसेनजित् ने मरवा दिया था, राजा के विरुद्ध बिडूडभ से अभिसंधि की और जब प्रसेनजित् जिसकी आयु उस समय अस्सी वर्ष की थी, भगवान् बुद्ध से संलाप मे मग्न था (जो मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त मे निहित है) दीघ कारायन उसे छोडकर चल दिया और श्रावस्ती में जाकर विडूडभ को राजा घोषित कर दिया। राजा प्रसेनजित् ने राजगृह में जाकर शरण लेनी चाही। दिन भर का थका हुआ रात मे राजगृह पहुँचा, जब कि उसके दरवाजे बन्द हो चुके थे। बाहर ही धर्मशाला में टिका और थका-माँदा उसी रात ठड लग जाने से मर गया। अजातशत्रु ने उसकी दाह-क्रिया की।• उधर विडूडभ ने शाक्यो का विनाश कर अपनी प्रतिहिंसा की तृप्ति की और मार्ग में लौटते हुए आँधी और बाढ के बीच अचिरवती (रापती) नदी में स-सैन्य मृत्यु प्राप्त की। इस प्रकार काशी के सहित कोसल राज्य, जिसकी अधीनता मे ही शाक्य जनपद था, सब मिलकर मगध राज्य में सम्मिलित हो गये।

ऊपर हम देख चुके हैं कि काशी जनपद के पूर्व मे मगध, उत्तर में कोसल और पश्चिम मे वंस जनपद थे। अत इन तीनो जनपदो के साथ बुद्ध-पूर्व काल में काशी राज्य के अनेक संघर्ष चले, जिनका कुछ उल्लेख करना यहाँ आवश्यक होगा। बुद्ध-पूर्व काल में काशी एक स्वतंत्र और समृद्ध राष्ट्र था। वह सप्त रत्नों से युक्त था।[2] पूर्व काल मे काशी एक समृद्ध राष्ट्र था, इसका साक्ष्य

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७६-७८ (पठम-संगाम-सुत्त तथा दुतिय-संगाम-सुत्त); धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २६६।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६०।

देते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने कहा है, "भूतपुब्बं भिक्खवे ब्रह्मदत्तो नाम कासि-राजा अहोसि अड्ढो महद्धनो महाभोगो महब्बलो, महावाहनो, महाविजितो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो।"[१] अर्थात् 'भूतपूर्व युग में भिक्षुओ! ब्रह्मदत्त नामक काशिराज था, जो आढ्य, महाधनवान्, महाभोगसम्पन्न, महाबली, महान् वाहनों वाला, महान् विजित (राष्ट्र) वाला था और उसके कोष और कोष्ठा-गार (धन और अनाज से) भरे हुए थे।" भद्दसाल जातक और धोनसाख जातक से हमें पता चलता है कि काशी देश के राजा सब राजाओं में अग्रणी राजा (सब्ब-राजुनं अग्गराजा) बनने के लिये लालायित रहते थे और उनका स्वप्न सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के सम्राट् बनने का रहता था। अस्सक जातक में गोदावरी के तट पर स्थित अस्सक राज्य की राजधानी पोतलि नगर को काशी देश का नगर बताया गया है। इससे विदित होता है कि अपनी समृद्धि के दिनों में काशी राज्य ने वहाँ तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। भोजाजानिय जातक से हमें पता चलता है कि काशी राज्य के सम्पूर्ण पड़ोसी राजा इस राज्य की ओर लुब्धक दृष्टि लगाये रहते थे। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के अनुसार बुद्ध-पूर्व काल के प्राचीन राजा रेणु के ब्राह्मण मंत्री महागोविन्द ने सम्पूण जम्बुद्वीप को जिन सात भागों में विभक्त किया था, उनमें एक काशी राज्य भी था और उपर्युक्त ब्राह्मण मंत्री के द्वारा ही उसकी राजधानी वाराणसी को बसाया गया था। इसी सुत्त के अनुसार धृतराष्ट्र (धतरट्ठ) काशी देश का प्रथम राजा था। जातकों में काशी देश के अनेक राजाओं के उल्लेख हैं, जैसे कि अंग, उग्गसेन, उदय, धनंजय, विस्ससेन, कलाबु और संयम आदि। काश्यप बुद्ध के समय में काशी देश का राजा किकि नामक था।[२] बौद्ध संस्कृत ग्रंथों में इस राजा का नाम कृकि बताया गया है।[३] सुमंगलविलासिनी[४] में काशी देश के राम नामक राजा का उल्लेख है जिसे कुष्ट रोग हो गया था

---

१. महावग्गो (विनय-पिटकं), दुतियो भागो, पृष्ठ २६२।

२. घटिकार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।१)।

३. दिव्यावदान, पृष्ठ २२; महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२५।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ २२८-२२९।

और जो कोलिय जाति का आदि पुरुष था, जिसके सम्बन्ध में हम शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति पर विचार करते समय कह चुके है। सत्तुभस्त जातक में काशी देश के जनक नामक राजा का भी उल्लेख है। महावंस और सुत्त-निपात-अट्ठकथा में अन्य अनेक काशि-राजाओं के उल्लेख हैं। काशी देश के राजाओं का कुल-नाम या उपाधि-नाम ब्रह्मदत्त था, इसलिये अनेक ब्रह्मदत्तों का उल्लेख जातक की कथाओं में किया गया है। पुराणों और महाभारत में भी सौ ब्रह्मदत्तों (शतं वै ब्रह्मदत्तानाम्) का उल्लेख है।[1] इसलिये 'ब्रह्मदत्त" नाम जो जातकों में अनेक बार काशी देश के राजाओ के लिये आया है, व्यक्तिवाचक नाम न होकर कुल-नाम है। उदाहरणत गंगमाल जातक में काशिराज उदय को ब्रह्मदत्त कहकर पुकारा गया है। यही बात सुसीम जातक, कुम्मासपिण्ड जातक, अट्ठान जातक और लोमसकस्सप जातक से भी विदित होती है। जातकों में काशी देश के राज-कुल को अक्सर अपुत्रक कहा गया है। 'अपुत्तकं राजकुलं।" चुल्लपलोभन जातक मे कहा गया है कि ब्रह्मदत्त राजा पुत्रहीन होकर मर गया। इसी प्रकार असिलक्खण जातक में भी कहा गया है कि वाराणसी-नरेश के कोई पुत्र नही था। सम्भवत. यही कारण है कि काशी देश के कुछ ब्रह्मदत्त नामक राजा मगध राजवंश के थे, जैसा कि दरीमुख जातक से प्रकट होता है। इसी प्रकार मातिपोसक जातक और सम्बुल जातक मे विदेह राजवंश से सम्बन्धित पुरुषो का भी काशिराज होना सिद्ध होता है। काशी देश का वर्णन प्राचीन वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराणों और प्राचीन जैन साहित्य में भी मिलता है, जिसके विवेचन में हम यहाँ नही जा सकते।

बुद्ध-पूर्व काल में काशी और कोसल के जो अनेक संघर्ष हुए, उनमें पहले विजय काशी को मिलती रही, परन्तु अन्त में उसे कोसल राज्य में मिल जाना पड़ा। विनय-पिटकके महावग्ग (कोसम्बक्खन्धको) में तथा कोसम्बी-जातक में काशि-राज ब्रह्मदत्त द्वारा कोसलराज दीघीति पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। इसी प्रकार कुणाल जातक और ब्रहाछत्त जातक में भी काशि राजाओं के द्वारा

---

१. देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ७६।

कोशल राज्य को विजित करने का उल्लेख है। सोणनन्द जातक के अनुसार तो काशिराज मनोज ने कोसल के साथ-साथ अंग और मगध को भी जीता। परन्तु फिर भाग्य ने पलटा खाया और महासीलव जातक में हम काशिराज महासीलव को कोसलराज के द्वारा पराजित किये जाते देखते हैं। घट जातक और एकराज जातक से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय तक कोसल देश के राजाओं ने काशी राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया था। इसी तथ्य की पुष्टि सेय्य जातक तथा तेसकुन जातक से भी होती है। जैसा हम पहले कह चुके है, प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय में तो काशी राज्य का कोसल राज्य का एक अंग होना पूर्णतः निष्पन्न हो चुका था, क्योंकि ऐसा होने पर ही काशी ग्राम की आय का उसके द्वारा अपनी पुत्री के स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये देना संभव हो सकता था, जिसका उल्लेख हरितमातक जातक और वड्ढकि सूकर जातक में है। उसके बाद के इतिहास का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं और कोसल राज्य का विवेचन करते समय लोहिच्च-सुत्त के आधार पर यह भी दिखा चुके हैं कि राजा प्रसेनजित् काशी और कोसल दोनों देशों की आय का उपभोग करता था। विनय-पिटक की अट्ठकथा से हमें मालूम पड़ता है कि राजा प्रसेनजित् का सगा भाई काशिराज (कासिक राजा) के रूप में बुद्ध-काल में प्रतिष्ठित कर दिया गया था।[1] इसी प्रकार की बात मगधराज बिम्बिसार ने अपने किसी सम्बन्धी को अंग-राज के रूप मे प्रतिष्ठापित कर अंग देश के सम्बन्ध में की थी।[2] अंग और मगध के समान काशी और कोशल का भी प्रयोग द्वन्द्व समास के रूप में अक्सर पालि तिपिटक में किया गया है।[3] यह उनकी घनिष्ठ एकात्मता के साथ-साथ उनके स्वतंत्र अस्तित्वों की स्मृति की भी अनुरक्षा करता है और इस प्रकार दोनों जनपदों के लोगों में मधुरतर सम्बन्धो की सूचना देता है।

---

१. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७४, टिप्पणी १।

२. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।४)।

३. "कासिकोसलेसु"। जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५), "कासी च कोसला"। थेरीगाथा, गाथा ११० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।

काशी जनपद की राजधानी प्रसिद्ध बाराणसी (सं० वाराणसी) नगरी थी। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त में बाराणसी की गणना बुद्धकालीन भारत के छह प्रसिद्ध महानगरों में की गई है। गुत्तिल जातक में बाराणसी को सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ नगर बताया गया है। तण्डुलनालि जातक के अनुसार बाराणसी का परकोटा १२ योजन लम्बा था और उसके अन्दर-बाहर तीन सौ योजन का राष्ट्र था। सम्भव जातक में भी वाराणसी नगर का विस्तार १२ योजन बताया गया है। "द्वादसयोजनिकंसकलवाराणसीनगरं"। सरभमिग जातक, अलीनचित्त जातक, जवनहंस जातक और भूरिदत्त जातक से भी इसी तथ्य की सिद्धि होती है। जातक में वाराणसी के अनेक प्राचीन नामों का उल्लेख हुआ है, जैसे कि, सुरुद्धन,[1] सुदस्सन,[2] ब्रह्मवड्ढन,[3] पुप्फवती,[4] रम्मनगर[5] और मोलिनी।[6] उसके एक भावी नाम केतुमती के सम्बन्ध मे भी भविष्यवाणी की गई है और कहा गया है कि इस नाम से वह एक सम्पन्न और सुभिक्ष नगरी होगी।[7]

बुद्ध-काल में सामान्यतः काशी जनपद और विशेषत. वाराणसी नगरी सुन्दर, बहुमूल्य वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध थी। संयुत्त-निकाय के वत्थ-सुत्त में कहा गया है, "सभी बुने हुए कपडों में काशी का बना कपड़ा अग्र (श्रेष्ठ) होता है।[8]" काशी के (कासिक) तथा वाराणसी के (बाराणसेय्यक) सुन्दर, दोनों ओर से पालिश किये हुए वस्त्र का उल्लेख दीघ-निकाय के संगीति-परियाय-सुत्त, दसुत्तर-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त में है। दीघ-निकाय के

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०४।

२. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १७७।

३. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११९।

४. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १३१।

५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११९।

६. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १५।

७. चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३); मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५ भी।

८. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६४१।

महापदान-सुत्त में एक उपमा का प्रयोग करते हुए भगवान् ने काशी के सुन्दर वस्त्र का उल्लेख किया है, यह हम पहले देख ही चुके हैं।[1] काशी के बने कपास के वस्त्र सुन्दर माने जाते थे। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा में कहा गया है, "यहाँ (वाराणसी में) कपास भी कोमल, सूत कातने वाली तथा जुलाहे भी चतुर और जल भी सु-स्निग्ध है। यहाँ का वस्त्र दोनों ही ओर से चिकना होता है। दोनों ही ओर से वह कोमल, मृदु और स्निग्ध दिखाई देता है।[2]" इसी प्रकार 'थेरीगाथा' में एक धूर्त ने जीवकाम्रवन की ओर जाती हुई शुभा भिक्षुणी को काशी के सूक्ष्म वस्त्रों का लोभ देकर भुलाने की चेष्टा की थी। "कासिकसुखुमेहि वग्गुहि सोभसि वसनेहिनूपमे...कासिक सुखुमानि धारय[3]"। इसी प्रकार चापा ने अपने प्रव्रजित पति को लौटाने की चेष्टा में उससे कहा था, "काशी के उत्तम वस्त्रों को धारण करने वाली मुझ रूपवती को छोड़कर तुम कहाँ जाओगे[4]।" संयुत्त-निकाय के पब्बत-सुत्त में काशी के रेशम का भी उल्लेख है। जातक-कथाओं से पता लगता है कि वाराणसी मे कुसुम्भी रंग के बहुमूल्य वस्त्र बनते थे। वाराणसी का बना (बाराणसेय्यकं) नीलरंग का (नीलवण्ण), दोनों ओर से चिकना (उभतोभाग विमट्ठं) सुन्दर वस्त्र बहुत मूल्यवान् समझा जाता था। 'मिलिन्दपञ्हो' मे सागल नगर का जो वर्णन दिया गया है, उससे विदित होता है कि काशी के वस्त्र यवनराजा मिलिन्द के समय में उसकी राजधानी सागल (स्यालकोट) तक में बिकने जाते थे और वहाँ उनकी बड़ी-बड़ी दूकानें थीं।[5] बहुमूल्य सूक्ष्म वस्त्रों के अलावा काशी जनपद चन्दन के लिये भी प्रसिद्ध था।

---

१. देखिये द्वितीय परिच्छेद में दीघ-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

२. "बाराणसियं किर कप्पासो पि मुदु, सुत्तकन्तिकायो पि तन्तवायो पि छेका। उदकम्पि सुचिसिनिद्धं, तस्मा वत्थं उभतो भागविमट्ठं होति। द्वीसु पस्सेसु मट्ठं मुदुसिनिद्धं खायति"।

३. थेरीगाथा, गाथाएँ ३७४ तथा ३७७।

४. "...कासिकुत्तमधारिनिं...कस्सोहाय गच्छसि।" थेरीगाथा, गाथा २९८।

५. देखिये आगे इसी परिच्छेद में कोटुम्बर और मद्द राष्ट्रों के विवरण।

काशी के चन्दन का उल्लेख संयुत्त-निकाय के वेलुद्वारेय्य-सुत्त में है। जातक[1] और अंगुत्तर-निकाय[2] मे भी 'कासि विलेपन' और 'कासि चन्दन' का उल्लेख है। एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में भी बुद्ध-काल मे वाराणसी की ख्याति थी। धम्म-पदट्ठकथा में उल्लेख है कि तक्षशिला जैसे प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र के संख नामक एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र सुसीम को वाराणसी में अध्ययनार्थ भेजा था।

भगवान बुद्ध के जीवन-काल मे वाराणसी एक समृद्ध व्यापारिक नगरी थी और तत्कालीन व्यापारिक मार्गों का एक प्रकार से केन्द्र स्थान थी। वाराणसी से सीधा तक्षशिला तक व्यापार होता था। व्यापार और शिक्षा दोनों के लिये ही वाराणसी और तक्षशिला के बीच मनुष्यों का आवागमन होता रहता था। वाराणसी और तक्षशिला के बीच की दूरी तेलपत्त-जातक और सुसीम जातक मे दो हजार योजन बताई गई है।[3] वाराणसी के एक व्यापारी को हम प्रत्यन्त देश में जाते और वहाँ लाल चन्दन खरीदते देखते है।[4] उत्तरापथ के घोड़ो का एक बडा बाजार वाराणसी मे लगता था।[5] सैन्धव घोडे भी वाराणसी के बाजार में बिकने आते थे।[6] हाथियों को सिखाने वाले[7] और अन्न के व्यापारी[8] भी वाराणसी मे थे। वाराणसी मे एक दन्तकार-वीथि थी जहाँ विशेषत हाथी-

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५५।

२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३९१।

३. अंग्रेजी अनुवाद के अनुसार, जिसका अनुसरण लाहा, मललसेकर और रायचौधरी जैसे विद्वानों ने किया है। आनन्द जी के हिन्दी अनुवाद में यह दूरी एक सौ बीस योजन बताई गई है। मैं अभी यह निश्चय नहीं कर सका हूँ कि इनमें से किसे ठीक माना जाय।

४. उद्धरण के लिये देखिये पाँचवें प्रकरण में बुद्धकालीन व्यापार का विवरण।

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८७।

६. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३८।

७. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २२९।

८. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।

दाँत का काम करने वाले लोग रहते थे।[1] इसी प्रकार वड्ढकि गाम और नेसाद गाम नामक गाँव भी, जहाँ क्रमशः बढ़इयों और शिकारियों की बस्ती अधिक थी, वाराणसी के समीप बसे हुए थे। हाथियो का एक बड़ा मेला वाराणसी में लगता था, और हस्तिसूत्रं का पाठ होता था।[2] राजगृह, चम्पा और वैशाली के समान वाराणसी में भी एक महोत्सव मनाया जाता था, जिसमें सुरापान भी किया जाता था।[3] सुरापान जातक से तथा वच्छनख जातक से हमें मालूम पड़ता है कि एक बार हिमालय के कुछ तपस्वी वाराणसी में नमकीन और खट्टे पदार्थों का स्वाद लेने आये थे। पुप्फरत्त जातक से विदित होता है कि वाराणसी में कार्तिक मास में एक मेला लगता था, जिसमें धनवान् घरों की स्त्रियाँ कुसुम्भी रंग के वस्त्र पहन कर निकलती थीं। सँपेरों के भी वाराणसी मे होने का उल्लेख है।[4] वाराणसी के ब्राह्मणों के 'लक्खणमन्तं' (लक्षगमन्त्रं—फलित ज्योतिष) में पारंगत होने की बात कही गई है,[5] और इसी प्रकार पालि विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वाराणसी में अस्पृश्यता भी प्रचलित थी।[6] वाराणसी की सन्थागारसाला (संस्थागारशाला—परिषद् भवन) का भी एक जातक-कथा में उल्लेख है। यहाँ धार्मिक वाद-विवाद होते रहते थे।[7]

ऊपर हम वाराणसी से तक्षशिला जाने वाले मार्ग का उल्लेख कर चुके हैं। वस्तुतः यह उस मार्ग का अंश ही था जो राजगृह से तक्षशिला तक वाराणसी में होता हुआ जाता था। अतः स्वाभाविक तौर पर वाराणसी पूर्व मे राजगृह

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९७।

२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८।

३. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११५।

४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।

५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३३५; मिलाइये वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ४५५, जहाँ एक ब्राह्मण यह बताने में कुशल बताया गया है कि कौन-सी तलवार किस योद्धा के लिये शुभ है या अशुभ।

६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २३२।

७. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७४।

से व्यापारिक मार्ग द्वारा जुड़ी हुई थी। वाराणसी से श्रावस्ती को भी एक मार्ग जाता था। वाराणसी से राजगृह और श्रावस्ती जाने वाले मार्गों का अनेक जगह विनय-पिटक में उल्लेख है और भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिकाओं में उनका अनुगमन किया था। अपनी प्रथम यात्रा में उन्हें उरुवेला से गया होते हुए वाराणसी तक आते तो हम देखते ही है,[1] अन्य अवसरों पर हम भगवान् को राजगृह से वाराणसी,[2] वैशाली से वाराणसी[3] तथा वाराणसी से श्रावस्ती[4] आते-जाते देखते है। हम पहले देख ही चुके हैं कि वेरंजा में वर्षावास करने के बाद भगवान् वहाँ से क्रमशः सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग-पतिट्ठान होते हुए वाराणसी चले गये थे। वैशाली से नदी के द्वारा पाटलिपुत्र होते हुए वाराणसी तक आवागमन था। इसी प्रकार वाराणसी से पयाग-पतिट्ठान तक गंगा और फिर यमुना के द्वारा कौशाम्बी तक नावो का आवागमन था और इन दोनों स्थानों की दूरी, जैसी अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[5] में दी हुई बक्कुल स्थविर की जीवनी से स्पष्ट विदित होती है, ३० योजन थी।

वाराणसी में भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में खेमियम्बवन नामक एक सुरम्य आम्रवन था। वहाँ हम एक अवसर पर बुद्ध-शिष्य स्थविर उदयन को, भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद, विहार करते देखते है। घोटमुख ब्राह्मण से यहीं उनका धार्मिक संलाप हुआ था, जिसका वर्णन मज्झिम-निकाय के घोटमुख-सुत्तन्त में है। वाराणसी में "मिगाचीर" नामक एक अन्य उद्यान था, जिसका जातक[6] में उल्लेख हुआ है। डा० मललसेकर का मत है कि यह सम्भवतः इसिपतन मिगदाय का ही प्राचीन नाम था।[7]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९-८०।
२. वहीं, पृष्ठ २०७।
३. वहीं, पृष्ठ २८१।
४. उपर्युक्त के समान।
५. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।
६. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८, ४७६, ५३६।
७. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२६।

भगवान् बुद्ध के धर्म-प्रचार कार्य की दृष्टि से वाराणसी का उनके जीवन-काल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। हम जानते हैं कि बोध-गया में ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपना प्रथम उपदेश वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में ही दिया था, जिसका उल्लेख हम अभी करेंगे। इसिपतन मिगदाय में प्रथम वर्षा-वास करने के बाद लौटते हुए भगवान् ने वाराणसी के प्रसिद्ध श्रेष्ठिपुत्र यश को प्रव्रजित किया था और उसके बाद उसके विमल, सुबाहु, पुण्णजि (पुण्यजित्) और गवम्पति (गवाम्पति) जैसे कई मित्र भी भिक्षु बने थे।[1] जब भिक्षुओं की संख्या ६० हो गई तो धर्म-प्रचार कार्य की रूपरेखा वाराणसी में ही बनी थी और उसके बाद ही भिक्षुओं को चारों दिशाओं में धर्म-प्रचारार्थ घूमने का आदेश देकर भगवान् स्वयं उरुवेला की ओर चले गये थे।[2] उरुवेल काश्यप की जन्म-भूमि वाराणसी ही थी और इसी प्रकार उपासिका सुप्रिया की भी।

संस्कृत परम्परा के आधार पर वरणा या वरुणा और असी नामक नदियों के बीच में स्थित होने के कारण 'वाराणसी' ने यह नाम पाया है।[3] वरणा नदी वाराणसी को उत्तर-पूर्व में तथा असी, जो एक नाला है, दक्षिण में घेरे हुए हैं। इन नदियों का उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नहीं है। परन्तु महावस्तु[4] में वरणा नदी के किनारे वाराणसी के स्थित होने का उल्लेख है और सिगाल जातक और चक्कवाक जातक में वाराणसी के समीप होकर गंगा के बहने का स्पष्ट वर्णन भी है। महाकवि अश्वघोष ने वाराणसी नगरी का उल्लेख काशी नगरी के रूप में किया है और वाराणसी शब्द का प्रयोग संभवतः वरणा नदी के लिये करते हुए उन्होंने कहा है, "तब क्रम से मुनि ने कोश-गृह के भीतरी भाग के सदृश काशी नगरी को देखा जिसे भागीरथी और वाराणसी

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद); पृष्ठ ८४-८६

२. वहीं, पृष्ठ ८८।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५००; मिलाइये रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २५ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०२।

एक साथ मिलकर इस प्रकार आलिंगन कर रही थी, जैसे कि मानो सखी को (आलिंगन कर रही हों)।[1]" आधुनिक वाराणमी गगा नदी के उत्तरी किनारे पर, गंगा और वरणा के सगम पर ही स्थित है। सातवी शताब्दी ईसवी मे यूआन् चुआङ ने वाराणसी की यात्रा की थी। और उससे पूर्व पाँचवी शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने भी। फा-ह्यान ने (पालि परम्परा के समान) काशी का एक जनपद के रूप मे वर्णन किया है। परन्तु यूआन चुआङ ने वाराणसी शब्द का प्रयोग एक जनपद के अर्थ मे किया है और उसकी राजधानी का भी उसने यही नाम बताया है। यूआङ चुआङ कुशीनगर के २०० 'ली' दक्षिण-पश्चिम एक नगर से ५०० 'ली' चलकर वाराणसी पहुँचा था, जिसे उसने "पो-लो-न-से" (वाराणसी) कहकर पुकारा है।[2] यूआन् चुआङ ने वाराणसी देश का विस्तार ४००० 'ली' और उसकी राजधानी का विस्तार लम्बाई मे १८ 'ली' और चौडाई मे ६ 'ली' बताया है। यूआन् चुआङ के समय मे वाराणसी जनपद मे ३० सघाराम थे, जिनमे ३००० से अधिक बौद्ध भिक्षु, जो सब सम्मितिय सम्प्रदाय के थे, निवास करते थे। इस प्रदेश मे १०० देव-मन्दिरो का भी उल्लेख किया गया है, जिनमे से २० केवल राजधानी मे थे। इस समय यहाँ शैव सम्प्रदाय के मानने वालो की सख्या सबसे अधिक थी, ऐसा साक्ष्य यूआन् चुआङ ने दिया है। देव (सभवत शिव) की १०० फुट ऊँची प्रतिमा का उल्लेख भी यूआन् चुआङ ने किया है। सभवत आधुनिक वाराणसी के उत्तर-पश्चिम मे बकरीया कुण्ड नामक स्थान के समीप स्थित भग्नावशेष ही उस देव-मन्दिर की स्थिति को प्रकट करते है, जहाँ १०० फुट ऊँची उपर्युक्त देव-प्रतिमा को यूआन् चुआङ् ने देखा था। वाराणसी नगर से उत्तर पूर्व, वरणा (पो-लो-न) नदी के पश्चिम की ओर, यूआन् चुआङ् ने १०० फुट ऊँचे एक अशोक-स्तम्भ को भी देखा था।[3] वरणा नदी से १० 'ली' उत्तर-पूर्व मे चलकर यूआन् चुआङ् इसिपतन मिगदाय मे पहुँचा था, जिसके सम्बन्ध मे अब हम कहेंगे।

---

१. **बुद्ध-चरित १५।१४।**

२. **वाटर्स : औन यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४६।**

३. **वहीं, पृष्ठ ४६-४८।**

इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) वाराणसी के समीप एक प्रसिद्ध स्थान था। पालि विवरणों मे इसे वाराणसी का ही एक अंग माना गया है। इसीलिये भगवान् जब इसिपतन मिगदाय में विहार करते दिखाये गये हैं, तो प्रायः इस प्रकार कहा गया है, "एकं समय भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये", अर्थात् "एक समय भगवान् वाराणसी मे ऋषिपतन मृगदाव में विहार करते थे।" हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के बाद सर्व प्रथम यहीं धर्मोपदेश करने आये थे। पंचवर्गीय भिक्षु यहीं उस समय वास कर रहे थे, जिन्हें प्रबोधित करने के लिये भगवान् उरुवेला से यहाँ आये थे।[1] संयुत्त-निकाय का धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त, जो भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट प्रथम सुत्त था, यहीं भाषित किया गया था।[2] अनत्तलक्खण-सुत्त, जो भगवान् के दार्शनिक मन्तव्य का आधार है, इसी प्रकार इसिपतन मिगदाय मे ही उपदिष्ट किया गया था। भगवान् ने अपना प्रथम वर्षावास इसिपतन मिगदाय में ही किया था। मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त तथा सच्चविभंग-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने इसिपतन मिगदाय में विहार करते समय ही दिया था। अनेक बार भगवान् यहाँ आये और धर्मोपदेश किया। संयुत्त-निकाय के पास-सुत्त, पंचवग्गिय-सुत्त और धम्मदिन्न सुत्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया। इसी निकाय के नलकलाप-सुत्त, सील-सुत्त, कोट्ठित-सुत्त तथा सारिपुत्त-कोट्ठित सुत्त में हम आयुष्मान् सारिपुत्र तथा महाकोट्ठित को इसिपतन मिगदाय में विहार करते देखते हैं। महाकाश्यप के साथ सारिपुत्र को इसिपतन मिगदाय में विहार करते हम संयुत्त-निकाय के सन्तुट्ठ-सुत्त और परम्मरण-सुत्त में देखते हैं। कई अन्य स्थविरों ने भी यहाँ विहार किया, यह हमें संयुत्त-निकाय के छन्न-सुत्त से पता लगता है।

"इसिपतन मिगदाय" का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस स्थान पर ऋषि (इसि) लोग हिमालय

---

१. **विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९-८३; मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०७-११०।**

२. **संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८०७-८०८।**

से वायु-मार्ग से आते हुए उतरते थे (पतन), इसलिये तो यह "इसिपतन" (ऋषिपतन) कहलाता था,[1] और मिगदाय (मृगदाव) यह इसलिये कहलाता था क्योंकि यहाँ एक सुरम्य उद्यान (दाव) था जहाँ मृगों को अभय दान दिया गया था, उन्हें भोजन प्रदान किया जाता था और वे यहाँ स्वच्छन्द होकर विचरते थे।[2] निग्रोधमिग जातक की कथा के अनुसार जब बोधिसत्व मृगराज होकर उत्पन्न हुए थे तो इसिपतन मिगदाय की उस समय की स्थिति एक मृगया-वन के रूप में थी जहाँ काशी-नरेश अक्सर मृगों का शिकार खेला करते थे। मृगराज बोधिसत्व की प्रेरणा पर एक मृग उनके पास प्रतिदिन भोजन के लिये भेज दिया जाने लगा। एक दिन जब एक गर्भिणी हरिणी की बारी आई तो स्वयं बोधि-सत्व मृगराज उसके स्थान पर अपने शरीर को अर्पित करने के लिये काशिराज के पास पहुँच गये। यह देखकर काशिराज अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने उस वन में मृगया का सर्वथा निषेध कर दिया और वहाँ रहने वाले सब मृगों को अभय दान दिया गया। तभी से इस स्थान का नाम 'मृगदाव' (मिगदाय) अर्थात् मृगो का वन पड गया। जैसा हम वाराणसी के विवरण मे देख चुके है, वहाँ 'मिगाचीर' नामक एक उद्यान था। सम्भवतः यह इसिपतन मिगदाय का ही प्राचीन नाम था। उरुवेला से इसिपतन मिगदाय की दूरी १८ योजन बताई गई है।[3]

इसिपतन मिगदाय मे भगवान् बुद्ध ने अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया, इसलिये चार बौद्ध तीर्थ स्थानों में उसकी गणना की गई है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् बुद्ध ने चार संवेजनीय (वैराग्य प्रद) स्थान (चत्तारि संवेजनीयानि ठानानि)

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८८।

२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६५। 'ललितविस्तर' में भी इससे मिलती-जुलती बात 'इसिपतन मिगदाय' के नाम पड़ने के सम्बन्ध में कही गई है। "अस्मिन् ऋषयः पतिता इति तस्मात्प्रभृति ऋषिपतनसंज्ञोदपादि। अभयदत्ताश्च तस्मिन् मृगाः प्रतिवसन्ति इति तदग्रेण मृगदावस्य, मृगदाव इति संज्ञोदपादि।" पृष्ठ १९।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

बताये हैं, (१) जहाँ तथागत उत्पन्न हुए (लुम्बिनी), (२) जहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की (बोध-गया), (३) जहाँ तथागत ने अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया (इसिपतन मिगदाय) और (४) जहाँ तथागत ने अनुपाधि-शेष-निर्वाण धातु मे प्रवेश किया (कुसिनारा)। इस प्रकार इसिपतन मिगदाय चार महान् बौद्ध तीर्थ स्थानों में है और उसका पावन दर्शन साधकों के चित्त में तथागत की स्मृति द्वारा संवेग को उत्पन्न करने वाला है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो इसिपतन बौद्ध साधकों और धर्म-प्रचारकों का केन्द्र था ही, उसके बाद की शताब्दियों में भी वह अन्धकारग्रस्त लोक के लिये प्रकाश का काम देता रहा। 'महावंस' से हमें पता चलता है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व जब लंका के अनुराधपुर में महास्तूप (महाथूप) का शिलान्यास समारोह मनाया गया तो इसिपतन मिगदाय के भिक्षु-संघ को भी उसमें भाग लेने के लिये आमंत्रित किया गया और इस विहार से १२००० स्थविर लंका में इस अवसर पर गये।[1] चीनी यात्री यूआन् चुआङ् सातवीं शताब्दी ईसवी में वाराणसी की वरणा नदी से १० 'ली' उत्तर-पूर्व में चलकर इसिपतन मिगदाय में पहुँचा था।[2] यूआन् चुआङ ने लिखा है कि इसिपतन मिगदाय विहार का भवन उस समय आठ भागों में विभक्त था जो सब एक परकोटे से घिरे हुए थे। उस समय यहाँ सम्मितिय सम्प्रदाय के १५०० भिक्षु निवास करते थे। यूआन् चुआङ् ने इसिपतन मिगदाय के संघाराम का विस्तृत विवरण दिया है और उसके आसपास कई स्तूपों और स्तम्भो का उल्लेख किया है। उपदेश देती हुई मुद्रा में भगवान् बुद्ध की एक मानवाकार मूर्ति का उल्लेख यूआन् चुआङ् ने किया है और कहा है कि जिस विहार में यह मूर्ति स्थापित थी, उसके उत्तर-पश्चिम में अशोक द्वारा निर्मित एक स्तूप के भग्नावशेष उस समय धरती के १०० फुट ऊपर विद्यमान थे। यही प्रसिद्ध धमेक या धम्मेक स्तूप है। इसके सामने ७० फुट लम्बा एक स्तम्भ था, जो अत्यन्त चमकीला और स्निग्ध

---

१. महावंस २९।३१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८।

था। यह स्तम्भ उस स्थान पर गड़ा हुआ था जहाँ भगवान् बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश किया था। इसके समीप ही एक अन्य स्तूप था जो उस स्थान को सूचित करता था जहाँ पंचवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुनने के बाद ध्यान किया था। इसी के समीप एक अन्य स्तूप का उल्लेख यूआन् चुआङ् ने किया है जो उस स्थान की स्मृति में था जहाँ पूर्वकालीन ५०० प्रत्येक-बुद्धों ने निर्वाण प्राप्त किया था। इसी प्रकार कुछ अन्य स्तूपों का भी उल्लेख इसिपतन मिगदाय के आसपास इस चीनी यात्री ने किया है।[1]

चीनी महासंघिक विनय में वाराणसी से इसिपतन की दूरी आधा योजन बताई गई है। कुछ अन्य विवरणों में उसे वाराणसी से १० 'ली' उत्तर-पश्चिम स्थित बताया गया है।[2] आधुनिक सारनाथ और उसके आसपास के भग्नावशेष जो प्राचीन इसिपतन मिगदाय के भग्नावशेष है आजकल भी पाँच मील की दूरी पर वाराणसी से उत्तर दिशा में स्थित है। बुद्धकालीन मृगदाव की स्थिति को हम उत्तर में धमेक (धम्मेक) स्तूप से लेकर दक्षिण में चौखण्डी टीले तक मान सकते है।[3]

यूआन् चुआङ ने इसिपतन मिगदाय का जो चीनी नाम (सिन्-ज्ञेन-लु-ये-युआन्) दिया है, उसका सस्कृत प्रतिरूप "ऋषिपतन मृगदाव" न होकर 'ऋषिवदन मृगदाव' होता है। 'दिव्यावदान' (पृष्ठ ३०२) मे भी यही रूप है। फा-ह्यान के अनुसार जिस ऋषि के नाम पर इस स्थान का नाम 'ऋषिपतन' पडा, वह एक प्रत्येक-बुद्ध थे। यह जानकर कि भगवान् बुद्ध का आविर्भाव होने वाला है, इस ऋषि ने इस उद्यान में अपने प्राण त्याग दिये थे। 'मृगदाव' (मृगोद्यान) के स्थान पर 'मृगदाय' (मृगों को दिया गया दान) शब्द का जो प्रयोग चीनी परम्परा ने किया है, उसके अन्दर यही भाव है कि यह स्थान मृगों को दान कर

---

१. वहीं, पृष्ठ ४७-४९, ५५-५७।

२. वहीं, पृष्ठ ४८।

३ मिलाइये आर्क्योलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १०७।

दिया गया था, जो पालि परम्परा के मेल में ही है। यूआन् चुआङ ने इस सम्बन्ध में निग्रोधमिग जातक का भी उल्लेख किया है।[1]

सारनाथ की कई बार खुदाई की गई है, जिसके परिणामस्वरूप उसके पुरावृत्त के सम्बन्ध में काफी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है।[2] इन भग्नावशेषों में अशोक के काल से लेकर पाल- वश तक के अथवा उसके भी बाद कन्नौज के गहड़वालों (बारहवी शताब्दी) तक के स्मारक चिन्ह मिले है, जो इस स्थान के प्रभूत ऐतिहासिक महत्व के साक्षी है। हमारी दृष्टि से चौखण्डी स्तूप, जो सारनाथ के मुख्य क्षेत्र से लगभग आधा मील दक्षिण की ओर वाराणसी से सारनाथ को आने वाली सडक के बाँई ओर स्थित है, महत्वपूर्ण है। ८४ फुट ऊँचा ईटों का यह एक टूटा-फूटा स्तूप है जो एक प्राचीन स्तूप का अवशेष है। इसके ऊपर का भाग अकबर के द्वारा सन् १५८८ ई० मे अपने पिता हुमायूँ के यहाँ शरण लेने की स्मृति मे बनवाया गया था। मूल स्तूप का निर्माण-काल सम्भवतः दूसरी या तीसरी शताब्दी ईसवी है। यही वह स्थान है जहाँ प्रथम बार भगवान् बुद्ध से पंचवर्गीय भिक्षुओं की भेंट हुई थी। धमेक या धम्मेक स्तूप, जिसकी ऊँचाई १०४ फुट तथा घेरा ९३ फुट है, सम्भवत. उस स्थान को सूचित करता है जहाँ भगवान् बुद्ध ने मैत्रेय बुद्ध के भावी आविर्भाव के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की थी। कुछ विद्वान् इसे धर्मचक्र प्रवर्तन का स्थान भी मानते है। इस स्तूप का आरम्भ शायद अशोक ने किया और कुषाण-काल तथा गुप्त-काल में इसका परिवर्द्धन किया गया, जब से यह इसी रूप में चला आ रहा है। चौदहवी शताब्दी विक्रमी के प्रसिद्ध जैन आचार्य जिनप्रभ सूरि ने सम्भवतः धमेक स्तूप को ही धर्मेक्षा कहकर पुकारा है

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४९, ५४-५६।

२. जिसके परिचय के लिये देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, १९०४-०५, पृष्ठ ५९; १९०६-०७, पृष्ठ ६८; १९०७-०८, पृष्ठ ४३; १९१४-१५; पृष्ठ ९७; १९१९-२०, पृष्ठ २६; १९२१-२२, पृष्ठ ४२; १९२७-२८, पृष्ठ ९५।

और उसे वाराणसी से तीन कोस दूर बताया है।[1] अशोक-स्तम्भ, जो अपने मूल स्थान पर आज भी विद्यमान है, इस समय ७ फुट ९ इंच ऊँचा है, परन्तु यह उसका निचला भाग ही है। पूरा स्तूप, जैसा यूआन् चुआङ् के पूर्वोद्धृत विवरण से विदित होता है, ७० फुट ऊँचा था। धर्मराजिक स्तूप, जो अशोक-स्तम्भ के दक्षिण की ओर स्थित है, और जिसकी अब नींव भर ही बची है, सम्भवतः अशोक के काल में बनवाया गया था। ऊपर यूआन् चुआङ् के द्वारा वर्णित इसिपतन मिगदाय के संघाराम का जो विवरण हम दे चुके है, उससे जान पड़ता है कि इस यात्री के मतानुसार सम्भवतः अशोक-स्तम्भ ही वह स्थान था जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। परन्तु स्वयं इस स्तम्भ पर ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वान् धर्मराजिक स्तूप को भी धर्मचक्र-प्रवर्तन का स्थान मानते हैं और कुछ धमेक स्तूप को भी। हमें यूआन् चुआङ् की मान्यता में सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

मच्छिकासण्ड काशी जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था। विनय-पिटक में एक जगह कहा गया है, "आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन . . . काशी (देश) में चारिका करते, जहाँ मच्छिकासण्ड था, वहाँ पहुँचे।[2] इससे स्पष्टतः प्रकट होता है कि मच्छिकासण्ड काशी जनपद में था।[3] चित्र गृहपति यहीं का निवासी था, जो सदा भिक्षुओं की सेवा में तत्पर रहता था। सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन, महाकात्यायन, राहुल आदि कई प्रसिद्ध भिक्षु यहाँ गये थे।[4]

---

१. अस्याः क्रोशत्रितये धर्मेक्षानामसंनिवेशो यत्र बोधिसत्वस्योच्चैस्तर-शिखरचुम्बितगगनमायतनम्। विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ ७४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३।

३. परन्तु त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने उसे वज्जी जनपद में बताया है। (बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १२)। इसे ठीक नहीं माना जा सकता। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने (विनय-पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५६४ में) मच्छिकासण्ड को ठीक ही काशी देश में माना है, परन्तु बुद्धचर्या, पृष्ठ ४३९ में उन्होंने उसे मगध में दिखा दिया है, जो भी ठीक नहीं कहा जा सकता।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३-३५५; संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७०-५७६।

निगण्ठों का भी मच्छिकासण्ड एक केन्द्र था। मण्डली-सहित निगण्ठ नाटपुत्त को और अचेल काश्यप को हम यहाँ जाते देखते हैं।[१] मच्छिकासण्ड के समीप ही अम्बाटक वन था, जहाँ चित्र गृहपति ने एक विहार के रूप में आगन्तुक भिक्षुओं के निवास आदि की व्यवस्था कर रक्खी थी। सम्भवतः इस विहार का नाम ही 'अम्बाटकाराम' था, जहाँ से आगे वन-प्रदेश में हम स्थविर लकुण्टक भद्दिय को ध्यान करते देखते हैं। "अम्बाटकाराम से आगे वन-प्रदेश में भाग्यशाली भद्दिय समूल तृष्णा का नाश कर ध्यान में बैठा है।[२]" मच्छिकासण्ड नगर के समीप ही मिगपथक नामक गाँव था। धम्मपदट्ठकथा[३] के अनुसार मच्छिकासण्ड श्रावस्ती से ३० योजन दूर था। मच्छिकासण्ड की आधुनिक पहचान करते हुए महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उसे जौनपुर जिले का मछलीशहर कस्बा बताया है।[४]

कीटागिरि काशियों का एक प्रसिद्ध ग्राम या निगम था, जो काशी जनपद से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग के बीच में स्थित था। यहाँ एक बार भगवान् श्रावस्ती से आये थे और फिर यहाँ से आलवी चले गये थे।[५] आचार्य बुद्धघोष ने कीटागिरि को एक जनपद कहा है।[६] विनय-विपरीत आचरण करने वाले अश्वजित् और पुनर्वसु नामक भिक्षु कीटागिरि में रहते थे, जिनके विरुद्ध प्रव्राजनीय कर्म किया गया था।[७] मज्झिम-निकाय के कीटागिरि-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कीटागिरि में विहार करते समय ही दिया था। विनय-पिटक की अट्ठकथा में कहा गया है कि कीटागिरि पर दोनों मेघों की कृपा रहती थी और यहाँ बहुत अच्छे शस्य

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७७-५७९।
२. थेरगाथा, पृष्ठ १३४ (हिन्दी अनुवाद)।
३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३, पद-संकेत ३।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४७१-४७२।
६. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१३।
७. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४९-३५२।

उत्पन्न होते थे।[१] महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने कीटागिरि को आधुनिक केराकत (जिला जौनपुर) बताने का प्रस्ताव किया है।[२]

मिगपथक (मृगपथक) गाम मच्छिकासण्ड के समीप अम्बाटक वन के पीछे था। मच्छिकासण्डवासी चित्त गहपति का यह अपना गाँव था जहाँ वह अपने काम से अक्सर आया-जाया करता था, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के सञ्ञोजन-सुत्त से पता लगता है।[३]

काशी जनपद का एक गाँव वासभ गाम नामक था। यहाँ काश्यपगोत्र नामक एक भिक्षु आश्रम बनाकर रहता था जो आगन्तुक भिक्षुओं की सेवा में तत्पर रहता था। एक बार कुछ आगन्तुक भिक्षुओं ने इस भिक्षु को उत्क्षेपण दण्ड दिया। इस पर यह भिक्षु भगवान् बुद्ध से यह बात कहने चम्पा गया और भगवान् ने उसके विरुद्ध किये गये उत्क्षेपण दण्ड को अनुचित बताया।[४] मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में इस गाँव का नाम 'वासव ग्रामक' दिया हुआ है, जो पालि के 'वासभ गाम' का संस्कृत रूपान्तर ही है। इस ग्रन्थ की परम्परा के अनुसार इस गाँव में सेनांजय नामक एक भिक्षु रहता था।[५]

वासभ गाम और वाराणसी के बीच मे तथा वाराणसी के समीप चुन्दत्थिय या चुन्दट्ठिल नामक गाँव था, जो काशी जनपद मे ही था।[६]

---

१. वहीं, पृष्ठ १५ (टिप्पणी)।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७५, पद-संकेत २।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७०; मिलाइये सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९३।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-३००।

५. "काशिषु वासवग्रामके सेनांजयो नाम भिक्षुः प्रतिवसति।" गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ १९९।

६. मिलाइये, "चुन्दत्थियं गमिस्सामि पेतो सो इति भाससि। अन्तरे वासभगामं बाराणसिया सन्तिके।" पेतवत्थु, पृष्ठ २९ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)

महाधम्मपाल जातक में काशी राष्ट्र के धम्मपाल गाम का उल्लेख है।[१] डा० विमलाचरण लाहा ने बिना स्रोत का उल्लेख किये काशी के धनपाल गाम का उल्लेख किया है।[२] सम्भवतः इसे धम्मपाल गाम ही होना चाहिये।

एक जनपद के रूप में कोसल देश का विस्तार प्रायः रापती और सरयू के बीच के प्रदेश तक सीमित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में उसका विस्तार एक राज्य के रूप में कितना हो गया था और किस प्रकार विड्डभ की मृत्यु के बाद मगध राज्य में उसके सम्मिलित होने की भूमिका बनी, यह सब हम पहले देख चुके है। कोसल जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने एक मनोरंजक अनुश्रुति का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है। प्राचीन काल में महापनाद नामक एक राजकुमार था जो किसी प्रकार हँसता नहीं था। अनेक लोगों ने उसे हँसाने का प्रयत्न किया, परन्तु किसी को सफलता नहीं मिली। बड़ी-बड़ी दूर से लोग राज-प्रासाद में इस कुमार को हँसाने आये, परन्तु कोई उसे हँसा न सका। अन्त में देवेन्द्र शक्र (सक्क) ने एक स्वर्गीय नट को भेजा जिसने कुमार को हँसा दिया। लोग जब इस दृश्य को देखकर अपने-अपने घर जाने लगे तो मार्ग में उनसे दूसरे लोगों ने पूछा, "कहो कुशल तो है?" (कच्चि भो कुसलं)। जिस स्थान पर यह "कुसल", "कुसल" पूछा गया, उसका नाम बाद में इसी कारण 'कोसल', प्रदेश पड़ गया।[३] कोसल जनपद के सम्बन्ध में अन्य सब ज्ञातव्य बातों का समावेश पूर्व विवेचित कोसल राज्य के विवरण में हो गया है।

वज्जि जनपद बुद्ध-काल में एक प्रभावशाली गणतंत्र था जिसकी मगध राज्य के साथ प्रतिद्वन्द्विता बुद्धकालीन राजनैतिक इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। वज्जि संघ में आठ गणतंत्र राज्य सम्मिलित माने जाते थे, जो 'अट्ठकुलिक' कहलाते थे।वज्जियों के इन आठ कुलों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो स्वय वज्जि, लिच्छवि और विदेह ही थे। चौथे गणतंत्र का नाम सम्भवतः 'ञातिक' या 'ज्ञात्रिक'

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५० (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); जातक, चतुर्थखण्ड, पृष्ठ २५० (हिन्दी अनुवाद)।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४२; ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११४।

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३२६।

था जिसकी नगरी नादिका मानी गई है। वज्जि-संघ के शेष चार गणतंत्रों के सम्बन्ध में पालि स्रोतों के आधार पर तो कुछ निश्चयतः नहीं कहा जा सकता, परन्तु हेम-चन्द्र रायचौधरी ने माना है कि वे सम्भवतः उग्र (वैशाली या हत्थिगाम के), भोग (भोगनगर के), कौरव (कुरु देश के ब्राह्मण, जो बुद्ध-पूर्व काल में विदेह में आकर बस गये थे) और ऐक्ष्वाकु (वैशाली के) थे।[1] जहाँ तक पालि साहित्य के आधार पर बुद्ध के जीवनकालीन राजनैतिक भूगोल का सम्बन्ध है, हम केवल विदेह, लिच्छवि और वज्जि गणतंत्रों को महत्वपूर्ण मान सकते हैं। इनमें से विदेह का विवेचन हम बुद्धकालीन गणतंत्रों के प्रसंग में कर चुके हैं। अतः यहाँ केवल लिच्छवि और वज्जि गणतंत्रों को ही लेंगे। वस्तुतः लिच्छवियों और वज्जियों में भेद करना कठिन, है क्योंकि वज्जि न केवल एक अलग जाति थे, बल्कि लिच्छवि आदि गणतंत्रों को मिलाकर भी उनका सामान्य अभिधान वज्जि (सं० वृजि) था और इसी प्रकार वैशाली न केवल वज्जि संघ की ही राजधानी थी, बल्कि वज्जियों, लिच्छ-वियों तथा अन्य सदस्य गणतंत्रों की सामान्य राजधानी भी थी। एक अलग जाति के रूप में वज्जियों का उल्लेख पाणिनि ने किया है और कौटिल्य ने भी उन्हें लिच्छ-वियों से पृथक् बताया है। यूआन् चुआङ् ने भी वज्जि (फु-लि-चिह्) देश और वैशाली (फ़ी-शे-ली) के बीच भेद किया है।[2] परन्तु पालि तिपिटक के आधार पर ऐसा विभेद करना संभव नहीं है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् कहते हैं कि जब तक वज्जि लोग सात अपरिहाणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनका पतन नहीं होगा, परन्तु संयुत्त-निकाय के कलिंगर-सुत्त में वे कहते हैं कि जब तक लिच्छवि लोग लकड़ी के बने तख्तों पर सोयेंगे और उद्योगी बने रहेंगे तब तक अजातशत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इससे प्रकट होता है कि भगवान् वज्जि और लिच्छवि शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची अर्थ में ही करते थे। इसी प्रकार विनय-पिटक के प्रथम पाराजिक में पहले तो वज्जि-प्रदेश में दुर्भिक्ष पड़ने की बात कही गई है (पाराजिक पालि, पृष्ठ १९, श्री नालन्दा संस्करण)

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११८-१२०।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८१।

और आगे चलकर वहीं (पृष्ठ २२ में) एक पुत्र-हीन व्यक्ति को यह चिन्ता करते दिखाया गया है कि कहीं लिच्छवि उसके धन को न ले लें। इससे भी वज्जियों और लिच्छवियों की अभिन्नता प्रतीत होती है। वज्जियों के अंग स्वरूप लिच्छवियों की उत्पत्ति के विषय को लेकर कई विद्वानों ने, विशेषतः पाश्चात्य विद्वानों ने, उन्हें अनार्य जाति के माना है (एस० बील ने उन्हें यू-ची जाति के माना था), जिसके विस्तार में जाना हमारे विषय के स्वरूप को देखते हुए ठीक न होगा। इसी प्रकार मनुस्मृति (१०।२२) में जो उन्हें "व्रात्य' क्षत्रिय कहा गया है, उसका विवेचन करना भी इस भौगोलिक प्रबन्ध के उपयुक्त न होगा। इतना कह देना मात्र पर्याप्त होगा कि जहाँ तक पालि तिपिटक के साक्ष्य का सम्बन्ध है, लिच्छवि क्षत्रिय थे। महापरिनिब्बाण-सुत्त में हम उन्हें भगवान् बुद्ध की धातुओं के एक अंश पर अपने हक को स्थापित करते हुए इस प्रकार कहते सुनते हैं, "भगवा पि खत्तियो। मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं," अर्थात् "भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। हम भी उनके धातुओं के एक भाग के अधिकारी हैं।" हम जानते हैं कि उनका यह अधिकार मान लिया गया था और उन्हें भगवान् की धातुओं का एक अंश मिला था। बौद्ध संस्कृत ग्रंथों मे भी लिच्छवियों को 'वाशिष्ठ' गोत्र के क्षत्रिय बताया गया है।[1] जैन साहित्य का भी साक्ष्य यही है कि 'लेच्छई' (लिच्छवि) उच्च कुलीन क्षत्रिय थे। तिब्बती परम्परा के अनुसार शाक्य और लिच्छवि एक ही जाति की विभिन्न शाखायें थीं।[2]

वज्जि गणतंत्र की स्थापना, डा० हेमचन्द्र रायचौधरी के मतानुसार, विदेह के राज-तंत्र के पतन के समय हुई थी।[3] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में हम उसे उन्नति के चरम उत्कर्ष पर देखते हैं और उनके महापरिनिर्वाण के बाद उसके छिन्न-भिन्न होने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

वज्जि-संघ का प्रदेश गंगा के उत्तर में नेपाल की तराई तक फैला हुआ था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार उसमें आधुनिक बिहार राज्य

---

१. देखिये विशेषतः महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ २८३।

२. देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ २०३, टिप्पणी।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२१।

के मुजफ्फरपुर और चम्पारन के जिले तथा दरभंगा और सारन के कुछ भाग सम्मिलित थे।[1] उसके पूर्व में सम्भवतः बाहुमती (बागमती) नदी बहती थी और पश्चिम में मही (गण्डक)। इस प्रकार उसकी सीमा मल्ल गणतंत्र और मगध राज्य से मिलती थी। मल्लों के वह पूर्व या पूर्व-दक्षिण मे था और मगध राज्य के उत्तर में। जैसा हम मगध राज्य का विवेचन करते समय देख चुके हैं, गंगा नदी मगध राज्य और वज्जियों की सीमा पर थी और पाटलिपुत्र के समीप जो बहुमूल्य माल उतरता था उसकी चुगी के सम्बन्ध में दोनों राज्यों में मनमुटाव चल रहा था और अजातशत्रु और उसके मंत्री सुनीध और वस्सकार वज्जियों को उखाड़ फेंकने की योजना बनाते हुए पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध की दृष्टि इस सब घटना-चक्र की ओर बड़ी निष्पक्ष, संतुलित और तटस्थ थी। वे निःसन्देह गणतंत्र शासन-प्रणाली के प्रशंसक थे और उसकी सफलता चाहते थे। इसलिये उन्होंने एक बार वज्जियों को उनके वैशाली-स्थित सारन्दद चैत्य में सात अपरिहाणीय धर्मों के रूप में इस सम्बन्ध में उचित मर्यादाओं का पालन करने का उपदेश दिया था।[2] बाद में यही बात उन्होंने स्वयं वस्सकार महामात्य के सामने दुहराई थी और उसके मुख पर ही कहा था कि जब तक वज्जी लोग सात अपरिहाणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनकी हानि नही होने की। संयुत्त-निकाय में भी हम भगवान् बुद्ध को लिच्छवियों के कठोर संयम-पूर्ण जीवन, उद्योग-शीलता और जागरूकता की प्रशंसा करते देखते है और इस बात के आश्वासन के साथ कि जब तक लिच्छवि इस प्रकार जीवन यापन करते रहेंगे, राजा अजातशत्रु उनका कुछ बिगाड़ नही सकेगा। परन्तु साथ ही हम भगवान् की इस आशंका को भी देखते है कि लिच्छवि विलासप्रिय होते जा रहे हैं और उनका पतन निकट है।[3] और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। भगवान् के परिनिर्वाण

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३८०, पद-संकेत ५।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ११८-११९।

३. "भिक्षुओ! लिच्छवि लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपने कर्त्तव्य को पूरा करते हैं। मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु उनके विरुद्ध कोई दाँव-पेंच नहीं पा रहा है। भिक्षुओ! भविष्य में लिच्छवि लोग बड़े

के बाद ही अजातशत्रु लिच्छवियों की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो गया और लिच्छवियों को केवल अपने आन्तरिक मामलों के अतिरिक्त अन्य बातों में मगध की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु यहाँ हम बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्ध रखकर वज्जियों की शक्ति के उत्कर्ष स्वरूप उनके कुछ निर्माण-कार्यों का उल्लेख करेंगे, जिन्होंने बुद्धकालीन राजनैतिक भूगोल को उसका विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

लिच्छवियों या वज्जियों का सबसे प्रधान निर्माण-कार्य था वैशाली। "वेसालि नाम नगरत्थि वज्जीनं"। "वैशाली नामक वज्जियों का नगर है", इस प्रकार वैशाली की स्मृति पेतवत्थु[1] में की गई है। जैसा हम अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) के साक्ष्य पर पहले देख चुके हैं, वैशाली नगरी 'विशाला' ('विसाला') भी कहलाती थी। वैशाली लिच्छवियों की राजधानी थी और उसमें वज्जि गणतंत्र अपनी सफलता और शक्ति की अभिव्यक्ति देखता था। वैशाली के सम्बन्ध में विनय-पिटक के महावग्ग में कहा गया है, "उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुत जनों से आकीर्ण, अन्नपान-सम्पन्न थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार, ७७०७ आराम और ७७०७ पुष्करिणियाँ थी।"[2] समन्त-पासादिका[3] में कहा गया है कि वैशाली नगरी की चहारदीवारी उसकी जन-संख्या को निरन्तर वृद्धि के कारण तीन बार विशाल की गई थी, इसलिये उसका नाम

---

सुकुमार और कोमल हाथ-पैर वाले हो जायेंगे। वे गद्देदार बिछावन पर गुलगुले तकिये लगा कर दिन चढ़ जाने तक सोये रहेंगे। तब मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु को उनके विरुद्ध दाँव-पेंच मिल जायेगा।" संयुत्त-निकाय, (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३०८।

१. पृष्ठ ४० (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण।)

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६६। (ठीक संख्या वस्तुतः ७७०७ (सत्तसहस्सानि सत्तसतानि सत्त च) ही है, ७७७७ नहीं, जो प्रेस की गलती के कारण रह गई जान पड़ती है। देखये जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ५०४ भी)।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

"वैशाली" पड़ा था। "विसालीभूतत्ता वेसालीति वुच्चति।" यही बात आचार्य बुद्धघोष ने उदानट्ठकथा[१] तथा पपंचसूदनी[२] में भी कही है। मनोरथपूरणी[३] (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) मे इसी कारण वैशाली को 'विशाला' (विसाला) कहकर पुकारा गया है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार वैशाली का प्रत्येक प्राकार एक-दूसरे से एक-एक गावुत की दूरी पर (गावुतन्तरेन गावुतन्तरेन) स्थित था। जातक[४] के वर्णनानुसार भी इसी प्रकार वैशाली नगर तीन विशाल प्राकारों से वेष्टित था, जो एक-दूसरे से एक-एक गावुत के फासले पर स्थित थे और जिन पर शिखर सुशोभित थे। "वेसालिनगरं गावुतगावुतन्तरे तीहि पाकारेहि परिक्खित्तं।" मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में भी वैशाली के तीन 'स्कन्धों' का उल्लेख है।[५] जैन ग्रंथ "उवासगदसाओ" मे (वैशाली के) दो उपनगरों का उल्लेख है, वाणिय गाम और कोल्लाग। "वाणिय गाम बाहर उत्तर-पूर्व दिशा मे कोल्लाग नामक उपनगर था।"[६] यह बहुत सम्भव है कि वैशाली, वाणिय गाम और कोल्लाग, वैशाली के तीन प्राकारों को ही सूचित करते हों। ललितविस्तर (पृष्ठ २१) मे वैशाली का काव्यमय वर्णन करते हुए उसे

---

१. पृष्ठ १८४ "तिक्खत्तुं विसालभूतत्ता।"

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २५९।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ४७।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ५०४। तिब्बती दुल्व (विनय-पिटक) के अनुसार भी वैशाली तीन भागों में विभक्त थी। पहले भाग मे ७,००० घर थे, जिनके शिखर सोने के थे। दूसरे भाग मे चाँदी के शिखर वाले १४,००० घर थे। तीसरे भाग में २१,००० घर थे, जिनके शिखर ताँबे के थे। इनमें क्रमशः उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों के लोग रहते थे। देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ ६२।

५. देखिये गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ६ "तेन खलु समयेन वैशाली त्रिभिः स्कन्धैः प्रतिवसति"।

६. "तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसी भाये एत्थ णं कोल्लाये नामं संनिवेसे होत्था।" उवासगदसाओ, पृष्ठ २।

"वनराजिसंकुसुमिता पुष्पवाटिका" के समान या सुप्रकाशित अमरपुरी के समान (अमरभवनपुरप्राकाश्या) बताया गया है।

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपनी पाँचवीं वर्षा वैशाली में बिताई थी। उससे पूर्व भी वे एक बार राजगृह से वैशाली गये थे, जब वहाँ भयंकर बीमारी पड़ रही थी। उनकी इस यात्रा का उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं। इसके अलावा भी भगवान् दो अन्य अवसरों पर राजगृह से वैशाली गये।[१] एक अन्य अवसर पर हम उन्हें कपिलवस्तु से वैशाली जाते देखते हैं।[२] हम पहले (द्वितीय परिच्छेद में) देख चुके हैं कि महापजावती गोतमी की प्रव्रज्या वैशाली में ही हुई थी और वहीं प्रथम बार भिक्षुणी-संघ की स्थापना हुई थी।[३] भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जो उन्होंने राजगृह से कुसिनारा तक की, वैशाली में कुछ समय तक निवास किया था और उसके समीप वेलुव गामक नामक एक छोटे से गाँव में तो उन्होंने अपना अन्तिम वर्षावास ही किया था। वैशाली से जब भगवान् अपनी यात्रा में आगे बढ़ने लगे तो उन्होंने इस नगरी के पश्चिम द्वार से निकल कर हाथी के समान अपने सारे शरीर को मोड़कर (नागापलोकितं अपलोकेत्वा) वैशाली की ओर देखा था और आनन्द से कहा था, "आनन्द ! यह तथागत का अन्तिम वैशाली दर्शन होगा।" "इदं पच्छिमकं आनन्द ! तथागतस्स वेसालिदस्सनं भविस्सति"। जिस नगरी के सम्बन्ध में भगवान् तथागत ऐसा कह सके, वह सचमुच धन्य थी। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनकी धातुओं का जो अंश लिच्छवियों को मिला, उस पर उन्होंने वैशाली नगर में ही स्तूप रचना की थी। "एको वेसालिया पुरे"।[४] बुद्ध-परिनिर्वाण के एक शताब्दी बाद भी वैशाली ने बौद्ध धर्म को एक विशेष मोड़ देने में सहायता दी। द्वितीय

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७९, ४६२।

२. वहीं, पृष्ठ ५१९।

३. वहीं, पृष्ठ ५१९-५२१।

४. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

संगीति की कार्यवाही वैशाली में ही वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक भिक्षओं के विनय-विपरीत आचरण के परिणाम-स्वरूप हुई थी।[1]

वैशाली के लिच्छवियों की शासन-पद्धति और उनके न्याय-सम्बन्धी आदर्शों में यद्यपि हम इस समय नहीं जा सकते, परन्तु यह कहना आवश्यक है कि लिच्छवियों का विशाल संस्थागार (परिषद्-भवन) जो वैशाली में था, उनका एक विशेष अलंकार और गौरवपूर्ण निर्माण-कार्य था। यह संस्थागार, सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार नगर के मध्य में स्थित था। "नगर-मज्झे संथागारं।" लिच्छवि परिषद् का प्रत्येक मुख्य सदस्य 'राजा' कहलाता था।[2] ७७०७ लिच्छवि गणराजा उसमें भाग लेते थे और उनकी कार्यवाही प्राचीन भारतीय गणतंत्रीय शासन-पद्धति पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है, जिसमें हम यहाँ नहीं जा सकते। उनकी बैठकें अक्सर हुआ करती थी और वे आपस में मिलकर काम किया करते थे। निश्चित वज्जि-धर्म बने हुए थे। (कुरु लोगों के भी कुरु-धर्म और सिवि लोगों के सिवि-धर्म थे, जिनका वर्णन हम इन जनपदों के विवरण-प्रसंग में करेंगे।) इनका उल्लंघन लिच्छवि लोग नहीं करते थे। वे अपनी मर्यादाओं का पालन करते थे। स्त्रियों और वृद्धों और सभी सन्त-महात्माओं का वे आदर करते थे।[3] लिच्छवियों को सुन्दर वस्त्र पहनने का भी शौक था और वे आत्मगौरव-सम्पन्न क्षत्रिय थे। प्रारम्भ में वे संयमी और कठोर अनुशासनमय जीवन बिताने वाले थे। उनके लकड़ी के तख्तों पर सोने और साव-धान और जागरूक रहने की प्रशंसा स्वयं भगवान् ने संयुत्त-निकाय के कलिंगर-सुत्त में की है। यही दिन लिच्छवियों के चरम उत्कर्ष के थे। जब लिच्छवि लोग भगवान् को भोजन के लिये निमंत्रित करने गये तो दूर से ही उन्हें देखकर भगवान् ने भिक्षुओं से कहा था, "भिक्षुओ! अवलोकन करो लिच्छवियों की इस परिषद् को। भिक्षुओ! लिच्छवि-परिषद् त्रायस्त्रिंश देव-परिषद् के समान ज्ञात पड़ती है"।[4]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४८।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २१२।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ११८ (महापरिनिब्बाण-सुत्त)।

४. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कई विहार और चैत्य वैशाली में विद्यमान थे। भगवान् बुद्ध ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में वैशाली के इन स्थानों में अपने पूर्व विचरण की बात कही है, जैसे कि उदयन-चैत्य, गोतमक-चैत्य, सप्ताम्र (सत्तम्ब) चैत्य, बहुपुत्रक (या बहुपुत्र) चैत्य, सारन्दद चैत्य और महावन-कूटागारशाला।[१] इन सब स्थानों को यहाँ रमणीय बताया गया है और इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के चेतिय-सुत्त में भी। वैशाली के चापाल चैत्य और उससे पहले अम्बपाली के आम्रवन में तो इस सुत्त में भगवान् को उस समय कुछ काल तक निवास करते दिखाया ही गया है। दीघ-निकाय के पाथिक सुत्त में हमें यह महत्वपूर्ण सूचना मिलती है कि वैशाली के पूर्व-द्वार के समीप उदयन चैत्य, दक्षिण-द्वार के समीप गोतमक चैत्य, पश्चिम-द्वार के समीप सप्ताम्रक (सत्तम्बक) चैत्य और उत्तर-द्वार के समीप बहुपुत्रक-चैत्य अवस्थित थे।[२]

राजगृह और नालन्दा के बीच तथा राजगृह से पौन योजन दूर बहुपुत्तक निग्रोध (बहुपुत्रक न्यग्रोध) के समीप बहुपुत्र या बहुपुत्रक चैत्य का उल्लेख हम कर चुके हैं, जहाँ पिप्पलि माणवक (बाद में महाकाश्यप) ने प्रथम बार भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे और जिसके समीप ही भगवान् ने अपने इस शिष्य के साथ चीवर-परिवर्तन किया था। वैशाली के इस बहुपुत्रक या बहुपुत्र चैत्य को-उस स्थान से भिन्न समझना चाहिये।[३] आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि वैशाली का यह बहुपुत्रक चैत्य भी बहुपुत्रक नामक न्यग्रोध (बरगद) के पेड़ के समीप स्थित था। यहाँ बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के लिये स्त्रियाँ अक्सर मनौती करने के लिये आया करती थीं, इसीलिये इसका यह नाम (बहुपुत्रक चैत्य) पड़ा था।[४]

वैशाली के सारन्दद चैत्य में भगवान् ने लिच्छवियों को सात अपरिहाणीय

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

२. वहीं, पृष्ठ २१८।

३. डॉ० लाहा ने इन दोनों को मिलाकर एक में वर्णन कर दिया है, जो ऊपर से ही गलत और अर्थहीन सा लगता है। देखिये उनकी ज्योग्रेफी ऑब अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ ७६।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२८; उदानट्ठकथा, पृष्ठ ३२३।

धर्मों का उपदेश दिया था।[१] एक बार पाँच सौ लिच्छवियों को भी हम वहाँ इकट्ठे होते देखते है।[२]

चापाल चैत्य में आनन्द के साथ संलाप करते हम भगवान् को उनकी वैशाली की अन्तिम यात्रा के समय देखते है, जबकि वे वेलुव गामक में वर्षावास के बाद वैशाली में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुए थे। इस चापाल चैत्य मे भगवान् ने आनन्द से कहा था कि तीन मास बाद वे परिनिर्वाण मे प्रवेश करेंगे।[३] दिव्यावदान[४] मे भी चापाल चैत्य का उल्लेख है।

वैशाली के सब स्थानों में हमारी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण महावन की कूटागारशाला थी। कपिलवस्तु के विवरण में हम देख चुके है कि महावन वह प्राकृतिक (सयंजात-स्वयंजात) वन था जो कपिलवस्तु से हिमालय के समानान्तर वैशाली तक फैला हुआ था। चूँकि यह एक विशाल (महा) क्षेत्र में फैला हुआ था, इसलिये 'महावन' कहलाता था।[५] वैशाली के समीप इसी महावन में एक शाला बनी हुई थी, जो विशाल स्तम्भों पर एक प्रासाद के रूप में निर्मित थी और जिसके ऊपर एक कूट या शिखर था। इसीलिये यह "महावन-कूटागारशाला" या महावन मे स्थित कूटागारशाला कहलाती थी। इसका आकार एक देव विमान (देवताओं के आवास) के रूप में था।[६] वैशाली की यह महावन कूटागारशाला भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के धर्म-प्रचार कार्य से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक सुत्तन्त, महा-सच्चक-सुत्तन्त तथा सुनक्खत्त-सुत्तन्त का उपदेश यही दिया गया था। आनन्द के महावन कूटागारशाला में विहार करने का उल्लेख इसी निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्त मे है। वैशाली की महावन कूटागारशाला में ही विहार करते

---

१. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।
२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६७।
३. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।
४. पृष्ठ २०७।
५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०९।
६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०९।

समय एक बार हम भगवान् को भिक्षुओं से यह कहते देखते हैं, "भिक्षुओ! मैं आधा महीना एकान्तवास करना चाहता हूँ। भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ मेरे पास कोई न आने पावे।"[1] हम पहले देख चुके हैं कि इसी प्रकार तीन महीने का एकान्तवास भगवान् ने कोसल देश के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में किया था। संयुत्त-निकाय के पज्जुन्नधीतु-सुत्त, चुल्ल-पज्जुन्नधीतु-सुत्त, आयतन-सुत्त, ततियवत-सुत्त, कलिंगर-सुत्त, विसाख-सुत्त, महालि-सुत्त, अनुराध-सुत्त, पठम-गेलञ्ञ-सुत्त, दुतिय-गेलञ्ञ-सुत्त, चेतिय-सुत्त, लिच्छवि-सुत्त और पठम-छिग्गल-सुत्त का उपदेश भगवान् ने वैशाली की कूटागारशाला में विहार करते समय ही दिया था। यहीं पर महाप्रजावती गौतमी को भिक्षुणी बनने की अनुमति मिली थी और भिक्षुणी-संघ की स्थापना का मार्ग खुला था।[2] भगवान् ने तित्तिर जातक का उपदेश महावन की कूटागारशाला मे ही दिया था।

वैशाली की गणिका अम्बपाली का आम्रवन वैशाली के समीप, उसकी दक्षिण दिशा में, अवस्थित था। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में जब वैशाली गये तो सर्वप्रथम इसी आम्रवन में ठहरे और इस गणिका के भोजन को स्वीकार किया। यह आम्रवन, जो इसकी स्वामिनी के नाम पर अम्बपालि वन कहलाता था, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को इसी अवसर पर दान कर दिया गया था। संयुत्त-निकाय के सब्ब-सुत्त में हम स्थविर अनुरुद्ध और धर्मसेनापति सारिपुत्र को अम्बपालि के आम्रवन में विहार करते देखते हैं।

वालुकाराम (वालिकाराम भी पाठान्तर) नामक एक अन्य विहार वैशाली में था। द्वितीय धर्म-संगीति की कार्यवाही यही हुई थी।[3]

अनेक बौद्ध विहारों और आरामों के अलावा वैशाली में एक "एकपुंडरीक" नामक परिव्राजकाराम भी था जहाँ वच्छगोत्त परिव्राजक रहता था। एक बार भगवान् बुद्ध स्वयं इस परिव्राजकाराम में गये थे और वच्छगोत्त परिव्राजक से

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७६५।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५१९-५२१।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५६; महावंस ४।६३ (हिन्दी अनुवाद); दीपवंस ५।२९ के अनुसार यह सभा महावन की कूटागारशाला में हुई।

उनका संलाप हुआ था, जो मज्झिम-निकाय के तेविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त में निहित है।

दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त में वैशाली के "तिन्दुकखाणु" नामक परिव्राजकाराम का उल्लेख है, जहाँ हम अचेल पाथिकपुत्र को जाते देखते है।

वैशाली निगण्ठों का भी एक प्रमुख-केन्द्र स्थान था। भगवान् महावीर का जन्म वैशाली के 'कुण्डपुर' नामक एक उपनगर में हुआ था। इसीलिये जैन शास्त्रो में उन्हें "वेसालिय" (वैशालिक) कहकर पुकारा गया है। जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् महावीर ने वैशाली में अपने बारह वर्षावास किये थे। जहाँ तक पालि साहित्य का सम्बन्ध है, हम निगण्ठ नाटपुत्त को अधिकतर नालन्दा में ही निवास करते देखते है। हाँ, सच्चक निगण्ठपुत्त को हम अवश्य वैशाली में निवास करते देखते हैं। उसका भगवान् से कई बार संलाप भी हुआ था। मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक-सुत्तन्त और महासच्चक-सुत्तन्त में उन्हे देखा जा सकता है।

अचेल कोरखत्तिय और अचेल पाथिकपुत्त भी, जैसा हमे दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त से विदित होता है, वैशाली मे ही निवास करते थे। महालि, अभय, साल्ह जैसे कई प्रभावशाली भिक्षु बुद्ध-धर्म के प्रभाव मे आये थे और सीहा, जेन्ती, वासेट्ठी और अम्बपाली जैसी कई वैशालिक महिलाओं ने भिक्षुणी-सघ में प्रवेश किया था।

वैशाली नगर के अन्दर, उसके पश्चिम द्वार के समीप, लिच्छवियो की प्रसिद्ध अभिषेक मंगलपुष्करिणी थी, जिसमें उनकी परिषद् के सदस्यो का अभिषेक कराया जाता था। इस पुष्करिणी पर पहरा रहता था, ऐसा भद्दसाल जातक और धम्मपदट्ठकथा में वर्णित बन्धुल मल्ल की कथा से स्पष्ट विदित होता है।

महाकवि अश्वघोष के वर्णनानुसार भगवान् बुद्ध ने वैशाली के जलाशय में मांस-भक्षक मर्कट नामक राक्षस को दीक्षित किया था।[१] दिव्यावदान[२] में भी भगवान् बुद्ध के वैशाली के मर्कट ह्रद में जाने का उल्लेख है। महाकवि अश्वघोष ने कहा है कि वेणुमती गाँव (पालि का वेलुव गामक) में वर्षावास करने के पश्चात्

---

१. बुद्ध-चरित २१।१६।

२. पृष्ठ १३६, २००।

भगवान् मकट जलाशय के किनारे बैठ गये।[१] (पालि परम्परा के अनुसार भगवान् वलुव गाम में वर्षा ऋतु बिताकर वैशाली के चापाल चैत्य मे आनन्द के साथ ध्यान के लिये बैठे थे[२]।) दिव्यावदान[३] तथा अवदान-शतक[४] के प्रमाण के आधार पर मर्कट ह्रद के किनारे पर ही (मर्कट ह्रदतीरे) महावन कटागारशाला स्थित थी।

वैशाली के समीप अवरपुर वन-सण्ड नामक एक वन-खण्ड था। मज्झिम-निकाय के महासीहनाद-सुत्तन्त में भगवान् के यहाँ एक बार विचरने का उल्लेख है।

पाँचवी शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री फा-ह्यान ने वैशाली नगर के उत्तर में एक वन का उल्लेख किया है जिसमें उसने एक दो-मंजिले विहार को देखा था।[५] यह वन महावन था और विहार वहाँ की कूटागारशाला ही थी। यूआन् चुआङ ने, जो सातवी शताब्दी ईसवी में भारत आया, इस दो मंजिले विहार और उसकी पुरानी बुनियादों पर खड़े एक स्तूप का उल्लेख किया है।[६] यह वर्णन फा-ह्यान द्वारा निर्दिष्ट महावन कूटागारशाला का ही है। यह स्थान आजकल कोल्हुआ कहलाता है और बसाढ से करीब ३ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। उस समय की तरह आज भी एक अशोक-स्तम्भ यहाँ खड़ा है। यूआन् चुआङ द्वारा निर्दिष्ट महायानी परम्परा के अनुसार यहाँ भगवान् बुद्ध ने समन्त-मोक्ष-धरणी-सूत्र का उपदेश दिया था।[७] वैशाली के उत्तर-पश्चिम में यूआन्

---

१. बुद्ध-चरित २३।६३।

२. देखिये पीछे द्वितीय परिच्छेद मे भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण।

३. पृष्ठ १३६ "एकस्मिन् समये भगवान्····वैशाल्यां विहरति स्म मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम्।"

४. पृष्ठ ८ "बुद्धो भगवान्····वैशालीमुपनिश्रित्य विहरति मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम्।"

५. लेज्जे : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ७२; मिलाइये गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१।

६. वाटर्स : ओन् यूआन् चुआङ स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१।

७. उपर्युक्त के समान।

चुआङ्ग ने उस स्थान को भी देखा था जहाँ खड़े होकर तथागत ने अन्तिम बार वैशाली का अवलोकन किया था।[1] फा-ह्यान ने भी इस स्थान पर निर्मित एक स्तूप का उल्लेख किया है।[2] इस स्थान के दक्षिण में कुछ दूर चलकर यूआन् चुआङ्ग ने एक अन्य स्तूप को देखा था, जो आम्रपालि वन की स्थिति को अंकित करता था।[3] फा-ह्यान ने आम्रपालि (जिसे उसने अम्रदारिका कहकर पुकारा है) के इस वन को नगर के ३ 'ली' दक्षिण में देखा था।[4] अतः इन दोनो यात्रियों के वर्णनानुसार आम्रपालि का वन वैशाली के दक्षिण में ही था, जैसा कि पालि विवरणों से भी उसकी स्थिति के सम्बन्ध में ज्ञात होता है। आम्रपालि-वन के समीप ही वह स्थान एक स्तूप के द्वारा अंकित था, जहाँ तथागत ने कहा था कि तीन मास बाद वे परिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। फा-ह्यान और यूआन् चुआङ्ग दोनों ने इस स्तूप को देखा था।[5] महापरिनिब्बाण-सुत्त में हम देखते हैं कि भगवान् ने यह भविष्य-वाणी चापाल चैत्य मे की थी। अतः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ्ग द्वारा निर्दिष्ट यह स्थान चापाल चैत्य ही होना चाहिये। इस स्थान के समीप ही यूआन् चुआङ्ग ने एक अन्य स्तूप का उल्लेख किया है और १००० पुत्रों की कहानी कही है।[6] फा-ह्यान ने भी इसी प्रकार १००० पुत्रों और उनसे सम्बद्ध स्तूप का उल्लेख किया है।[7] इन चीनी यात्रियों द्वारा निर्दिष्ट यह स्तूप सम्भवतः बहुपुत्रक चैत्य स्थिति को सूचित करता था। हम पहले देख ही चुके है कि बहुपुत्रक चैत्य वैशाली के उत्तर द्वार के समीप स्थित था। फा-ह्यान ने उस स्थान को भी एक स्तूप के

---

१. वही, पृष्ठ ६८।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१-४२।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६९।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१।

५. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४३; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१।

६. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७०।

७. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२-४३।

द्वारा अंकित देखा था जहाँ द्वितीय बौद्ध संगीति बुद्ध-परिनिर्वाण के करीब १०० वर्ष बाद वैशाली में हुई थी।[१]

वैशाली की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में आज कोई सन्देह नहीं रह गया है। कनिघम ने उसे आधुनिक बसाढ़ गाँव से मिलाया था, जो बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिले मे है।[२] सन् १९०३-०४ में बसाढ़ के समीप उसकी उत्तर दिशा में 'राजा विशाल का गढ़" नामक स्थान की जो खुदाई हुई उसमें कुछ मिट्टी की मुद्राएँ मिलीं जो विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। इनमे से कुछ पर स्पष्टतः अंकित है "वेसालि अनु-ट-कारे सयानक" (वैशाली का दौरा करने वाला पदाधिकारी), जिससे आधुनिक बसाढ़ के इस स्थान के प्राचीन वैशाली होने के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह गया है।

वैशाली के विभिन्न स्थानों का परिचय हम पालि स्रोतों के आधार पर पहले दे चुके हैं। चीनी यात्रियों के विवरणों से उन पर जो अधिक प्रकाश पड़ता है, उसका भी उल्लेख कर चुके है। अब बसाढ़ की पुरातत्व सम्बन्धी खोजों और उसके परिपार्श्व के साथ उन दोनों का मिलान करने पर वैशाली के विभिन्न बुद्धकालीन स्थानों की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध मे जो बातें हमारे सामने आती हैं, उनका कुछ उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक होगा। जैसा हम पहले देख चुके हैं, उदयन-चैत्य वैशाली के पूर्व द्वार के समीप स्थित था। आज इस स्थान की स्थिति पर बसाढ़ के पूर्व में कामन छपरा के चौमुखी महादेव विराजमान हैं। वैशाली के उत्तर में पालि विवरण के अनुसार जहाँ बहुपुत्रक चैत्य था, वहाँ आज बनिया गाँव के बाहर चौमुखी महादेव की स्थिति है। भगवान् बुद्ध ने जहाँ वैशाली का नागावलोकन किया था, वह स्थान, जैसा हम यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर देख चुके हैं, वैशाली के उत्तर-पश्चिम में था। फा-ह्यान के विवरण के अनुसार भी बुद्ध वैशाली के पश्चिमी द्वार से बाहर निकले थे और वहीं उन्होंने नागावलोकन किया था।[३] अतः पालि विवरण के सप्ताम्रक चैत्य के आसपास

---

१. वही, पृष्ठ ४३-४४।

२. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द सोलहवीं, पृष्ठ ६।

३. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१-४२।

ही इस स्थान को होना चाहिये, क्योंकि यह चैत्य जैसा हम पहले देख चुके हैं, वैशाली के पश्चिम द्वार के समीप ही स्थित था। अतः नागावलोकन के स्थान को, बसाढ़ के समीप इसी दिशा में स्थित बोधा नामक स्थान के आसपास कहीं होना चाहिये। चापाल चैत्य, जहाँ पालि विवरण के अनुसार भगवान् बुद्ध ने यह भविष्यवाणी की थी कि वे तीन मास बाद महापरिनिब्बाण में प्रवेश करेंगे और जिसका उल्लेख यूआन् चुआङ ने भी किया है, जिसका निर्देश हम कर चुके हैं, आधुनिक 'भीमसेन का पल्ला' नामक स्थान के आसपास होना चाहिये, जो अशोक-स्तम्भ से एक मील उत्तर-पश्चिम में है। गोतमक चैत्य के लिये, जो पालि विवरण के अनुसार वैशाली के दक्षिण द्वार के समीप स्थित था, आधुनिक परमानन्दपुर से कोसा के गुप्त महादेव तक की स्थिति को निश्चित कर देना ठीक होगा।[1] सारन्दद चैत्य के लिये आज यह बताना कठिन है कि इसकी ठीक स्थिति क्या थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कोल्हुआ ही, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है, बुद्धकालीन महावन कूटागारशाला थी। यदि पूर्वोक्त बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण को हम ठीक मानें तो इसके समीप ही मर्कटह्रद को होना चाहिये। इस प्रकार कोल्हुआ से कुछ दूर आज जो 'रामकुण्ड' नामक पोखर है, उसे आसानी से बुद्धकालीन 'मर्कटह्रद' माना जा सकता है। अम्बपालि-वन वैशाली से कुछ दूर दक्षिण दिशा में था ही। इधर दक्षिण दिशा में ही वालुकाराम विहार रहा होगा। सम्भवतः आधुनिक भगवानपुर रत्ती को उसकी स्थिति पर माना जा सकता है। जैसा हम पहले देख चुके है, वैशाली की 'मंगल पुष्करिणी' नगर के भीतर और उसके पश्चिमी द्वार के समीप स्थित थी। इसे वर्तमान 'राजा विशाल के गढ़' के पश्चिम में स्थित 'बावन पोखर' से मिलाया जा सकता है।

अभी हाल में (सन् १९५८ ई०) स्वर्गीय डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर के निर्देशन में वैशाली की खुदाई हुई है, जिससे लिच्छवियों द्वारा निर्मित स्तूप की प्राप्ति की सम्भावना हुई है। यह स्तूप राजा विशाल के गढ़ और अशोक-स्तम्भ के बीच की स्थिति में प्राप्त हुआ है। आगे खोज जारी है।

---

१. ये स्थितियाँ महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा सुझाई गई हैं। देखिये उनकी 'साहित्य-निबन्धावली', पृष्ठ १८४।

वज्जियों की इस महानगरी और उसके कुछ स्थानों के संक्षिप्त परिचय के बाद अब हम उनके कुछ अन्य निगमों और ग्रामों के विवरण पर आते हैं। कोटि-गाम (कोटिग्राम) वज्जि जनपद में था। भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जिसका वर्णन दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में है, पाटलिपुत्र पर गंगा को पार कर वज्जि जनपद के इस गाँव में विश्राम किया था। जैसा हम पहले देख चुके हैं, गंगा नदी मगध राज्य और वज्जि गणतंत्र की सीमा थी। सयुत्त-निकाय के कोटिगाम-वग्ग के दस सुत्तों का उपदेश भगवान् ने कोटिगाम में निवास करते समय ही दिया था।[1] महाकवि अश्वघोष ने बुद्ध-चरित (२२।१३) में कोटिग्राम को 'कुटी' कहकर पुकारा है।

नादिक, नादिका, नातिका या ञातिका गाँव वज्जि जनपद में था। महाकवि अश्वघोष ने इसे 'नादीक' कहकर पुकारा है।[2] महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार यह कोटिग्राम और वैशाली के बीच में स्थित था[3]। यह ञातिक लोगों का गाँव था, जो वज्जी संघ के ही एक अंग थे। ञातिगाम होने के कारण ही यह ञातिक या ञातिका कहलाता था। इसी अर्थ को ज्ञापित करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है "ञातिकेति द्विन्नं ञातकानं गामे।"[4] ञातिका गाँव नादिका नामक एक तड़ाग (तलाक) के समीप स्थित था। इसलिये इस तड़ाग के नाम पर (नादिका ति एतं तलाकं निस्साय) इस गाँव का नाम नादिका भी पड़ गया था।[5] इस प्रकार हम देखते है कि 'ञातिक' लोगों के नाम पर इस गाँव का नाम 'ञातिक' पड़ा था और 'नादिका' नामक तड़ाग के समीप होने के कारण यही गाँव 'नादिका' कह-लाता था। ञातिक (सं० ज्ञातृक) जौति को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने वर्तमान जथरिया या जैथरिया से मिलाया है और नादिका की आधुनिक स्थिति

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८११-८१३।

२. बुद्ध-चरित २२।१३।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२६-१२७।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६।

५. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२४; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५४३।

की खोज करते हुए उसे वर्तमान रत्ती परगना, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार, से मिलाया है,[१] और एक दूसरी जगह उसे वर्तमान जेथरडीह, मसरख, जिला सारन, बताया है।[२] यूआन् चुआङ् ने वैशाली और पटना के बीच गंगा के किनारे 'नातक' नामक स्थान का उल्लेख किया है।[३] वुडवर्ड का विचार है कि यही बुद्ध-कालीन नादिका था।[४] हम नादिका की इसी स्थिति को अधिक ठीक समझते हैं। नादिका में एक गिंजकावसथ या ईटों का बना आवास था, जहाँ भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में ठहरे थे और उसके पहले भी कई बार यहाँ गये थे। पहली बार जब भगवान् नादिका में गये तो वहाँ के निवासियों ने उनके आवास के लिये इस विश्राम-गृह को बनवाया था जो बाद में एक महाविहार के रूप में विकसित हो गया।[५] जनवसभ-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[६] एक अन्य अवसर पर भी भगवान् यहाँ गये थे और संयुत्त-निकाय के उपस्सुति-सुत्त का उपदेश दिया था।[७] संयुत्त-निकाय के सभिय-सुत्त में हम आयुष्मान् सभिय कात्यायन को ञातिका (नादिका) के गिंजकावसथ में विहार करते देखते हैं। स्थविर अनुरुद्ध, किम्बिल और नन्दिय ने भी भगवान् के साथ कुछ समय तक यहाँ निवास किया था। संयुत्त-निकाय के पठम, दुतिय और ततिय गिंजकावसथ सुत्तों में हम आनन्द के साथ भगवान् को नादिका के गिंजकावसथ मे विहार करते देखते हैं। इन्हीं सुत्तों से हमें यह सूचना मिलती है कि अशोक, कालिंग, निकत, कटिस्सह, तुट्ठ, सन्तुट्ठ, भद्र और सुभद्र नामक उपासक इस गाँव में रहते थे, जिनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे आनन्द ने तथागत से निवेदन किया था। मज्झिम-निकाय के चूल-गोसिंग-सुत्तन्त का उपदेश

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४९३, पद-संकेत २।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७, पद-संकेत १; पृष्ठ ६११।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८६।

४. बुक ऑव ग्रेजुअल सेइंग्स, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१७, पद-संकेत ४।

५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२४।

६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १६०-१६६।

७. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४८९।

भगवान् ने यहीं दिया था। इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय[1] के अनेक सुत्तों का उपदेश नादिका में दिया गया।

नादिका के समीप ही "गोसिंग सालवन" (गोशृंग शालवन) नामक एक सुरम्य शाल-वन था, जहाँ भगवान् बुद्ध के कुछ भिक्षु-शिष्यों ने विहार किया था।[2] इस शाल-वन का नाम "गोसिंग सालवन' इसलिये पड़ा क्योंकि इसके बीच मे एक बड़ा शाल-वृक्ष था जिसकी शाखाएँ गाय (गो) के सींगों (सिंग) की तरह उसके तने से निकली हुई थी।[3]

उक्काचेल (या उक्काचेला) वज्जि जनपद का एक प्रसिद्ध गाँव था, जो गंगा नदी के किनारे राजगृह से वैशाली जाने वाले मार्ग पर स्थित था और वैशाली के अधिक समीप था।[4] मज्झिम-निकाय के चूल-गोपालक-सुत्तन्त[5] और संयुत्त-निकाय के चेल-सुत्त[6] का उपदेश भगवान् ने उक्काचेल गाँव में ही दिया था। धर्मसेनापति सारिपुत्र भी एक बार उक्काचेल गये थे और यहाँ उन्होंने निब्बान-सुत्त का उपदेश सामण्डक नामक परिव्राजक को दिया था।[7] बाद में इस गाँव में गंगा नदी की रेती में विहार करते हुए भगवान् ने कहा था कि बिना सारिपुत्र और मौद्‌गल्यायन के भिक्षु-मंडली सूनी सी लगती है। निश्चयतः संयुत्त-निकाय के इस चेल-सुत्त में वर्णित भगवान् की यह उक्काचेल की यात्रा युगल अग्र-श्रावकों के परि-निर्वाण के बाद ही हुई थी। इसके बाद भगवान् के भी आयु-संस्कार समाप्त होने में अधिक दिन नही थे। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने सुझाव दिया है कि उक्काचेल सम्भवतः बिहार राज्य के आधुनिक सोनपुर या हाजीपुर के आसपास कहीं था।[8]

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३, ३०६; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१६, ३२०।
२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७-१३२।
३. परंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३५।
४. उदान-अट्ठकथा, पृष्ठ ३२२।
५. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३६-१३७।
६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६९३-६९४।
७. वहीं, पृष्ठ ५६३।
८. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३६, पद-संकेत १; पृष्ठ ६१५।